卐 ॐ अर्हम् 卐

समता
पर्यूषण पर्वाराधना

लेखक-
सज्जनसिंह मेहता 'साथी'

प्रकाशक-
समता प्रचार संघ
(अन्तर्गत- अ. भा. साधुमार्गी जैन संघ, बीकानेर)

पुस्तक का नाम - **समता पर्युषण पर्वाराधना**

लेखक - **सज्जनसिंह मेहता 'साथी'**
एम ए हिन्दी, राजनीतिशास्त्र
जैन सिद्धान्त शास्त्री
सेवानिवृत्त विकास अधिकारी
झाला मन्ना चौराहा, बडीसादडी-३१२४०३
सयोजक- समता प्रचार सघ

प्रकाशक - **समता प्रचार संघ**
(अन्तर्गत- अ भा साधुमार्गी जैन सघ, बीकानेर)

मूल्य - 45/-
सन् - 1997

अक्षराङ्कन - **श्रीराजेन्द्र कम्प्यूटर्स**
आयड, उदयपुर-313 001

मुद्रण - **पारदर्शी प्रिन्टर्स**
261, ताम्बावती मार्ग,
उदयपुर-313 001
☎ (0294) 411029

लेखक की कलम से...

आजकल जनमानस का आकर्षण भौतिक साधनो की ओर है । आध्यात्म के प्रति आकर्षण, धर्म के प्रति रूचि शनैः शनैः मन्द होती चली जा रही है । आज हमने भौतिक विकास मे ही सुख की उपलब्धि समझ ली है, धन-वैभव को ही सुख का साधन मान लिया है, रात-दिन उसी के उपार्जन मे लगे रहते है, फिर भी सुख नही मिलता । आज हमारी स्थिति मृग मरीचिका की तरह हो रही है । सुख के लिए रात-दिन एक कर देते है, फिर भी सुख के स्थान पर दुःख, असन्तोष और विषाद ही मिलता है । कवि ने ठीक ही कहा है-

गौ धन गजधन वाजिधन, और रतन धन खान ।
जब आवे सन्तोष धन, सब धन धूलि समान ॥

ऐसी विषम परिस्थिति मे, ऐसे घोर अन्धकार मे, महापुरुषो की अमूल्य वाणी प्रकाश पुन्ज के समान है, जीवन मे सुखदायी है । वर्तमान मे भगवान महावीर के अनुयायी आचार्य प्रवर श्री नानालालजी म सा एव उनका समता सिद्धान्त दिग्-भ्रान्त व्यक्तियो के लिए प्रकाश स्तम्भ रूप है । विषमता के वातावरण मे समता का संचार करने वाला है ।

विश्व के आध्यात्मिक विकास मे जैन धर्म का अपना विशिष्ट स्थान है । जैन धर्म की श्वेताम्बर सम्प्रदाय के अष्ट दिवसीय पर्युषण पर्व को लोकात्तर पर्व के रूप मे मनाने की परम्परा है । यह पर्व धार्मिक उत्साह का पर्व है । जहॉ सन्त-मुनिराज अथवा महासतियॉजी म सा विराजते है वहॉ तो पर्युषण पर्व के अवसर पर पूर्ण उत्साह पाया जाना स्वाभाविक है, लेकिन जैन समाज देश के कोने-कोने मे व्याप्त है । जैन श्रमण-श्रमणि

संख्या बहुत कम है तथा कई क्षेत्रो मे उनका पहुँच पाना संभव नहीं है, ऐसी स्थिति मे जैन धर्म के प्रचार-प्रसार हेतु तथा पर्युषण पर्व मे धार्मिक आराधना हेतु स्वाध्याय सघो की स्थापना की गई । नि:संदेह ये स्वाध्याय संघ बहुत बडा कार्य कर रहे है । इनकी सफलता इस बात से ही स्पष्ट है कि स्वाध्यायी सदस्यो की माग प्रतिवर्ष बढती जा रही है । प्रति वर्ष नये-नये क्षेत्रो मे स्वाध्यायी सदस्य अपनी सेवाएँ देने जा रहे हैं । देश के विभिन्न भागो मे नये-नये स्वाध्याय संघों की स्थापना हो रही है । विदेशो मे भी स्वाध्यायी सदस्यो की सेवाएँ उपलब्ध होने लगी है । समता प्रचार संघ योग्य स्वाध्यायियो को भेजकर प्रतिवर्ष देश के विभिन्न भागों मे पर्युषण पर्व मनाने में अपना योगदान दे रहा है । वर्ष में तीन चार शिविर आयोजित कर स्वाध्यायी सदस्यो को पर्युषण पर्व के लिये समुचित प्रशिक्षण देने का प्रयत्न कर रहा है ।

पर्युषण पर्व में सेवा देने वाले स्वाध्यायी सदस्यों के मार्गदर्शन हेतु प्रवचन की पुस्तकें विभिन्न संस्थाओ द्वारा प्रकाशित की गई है । वे स्वाध्यायियो के लिए बहुत उपयोगी है । फिर भी पर्युषण पर्व के साहित्य का अभाव चल रहा है। कुछ पुस्तके तो उपलब्ध भी नही हो रही है । सामान्यतया स्वाध्यायी बन्धओं की यह शिकायत रही है कि उनके पास पर्युषण पर्व प्रवचन सामग्री का अभाव है । फिर ऐसी कोई पुस्तक उपलब्ध नही है कि जिसमे प्रवचन के साथ-साथ अन्य उपयोगी सामग्री एक ही पुस्तक मे मिल सके । सरल भाषा शैली में व्याख्यानों का अभाव भी अनुभव किया जा रहा है । अत: मैने विचार किया कि ऐसी एक पुस्तक तैयार की जाय, जिसमें आठ दिनो के लिए सरल भाषा मे व्याख्यान हों तथा व्याख्यान सम्बन्धी अन्य सामग्री भी हो । समता प्रचार सघ के पूर्व सयोजक श्रीमान् गणेशलालजी सा बया की इच्छा थी कि पुस्तक मे व्याख्यान आठ ही न हो वरन् 10 या 12 हो ताकि स्वाध्यायी सदस्य अपनी योग्यता एवं रूचि के अनुसार

व्याख्यान की तैयारी कर सके । साथ ही उन्हे जैन सिद्धान्त के मूल विषयो की अच्छी जानकारी हो सके ।

श्रमण संस्कृति के अडिग रक्षक आचार्य प्रवर 1008 श्री नानालालजी म सा , युवाचार्य श्री रामलालजी म सा एवं अन्य महापुरुषो के प्रवचनों के आधार पर पर्युषण पर्व के लिए उपयोगी प्रवचनो की यह पुस्तक तैयार की गई है । इस पुस्तक में ग्यारह विषयों पर अत्यन्त सरल भाषा में व्याख्यान की सामग्री दी गई है । विभिन्न विषयो पर विचार लेखबद्ध करने के बाद कुछ परिशिष्ट जोडे गये हैं । इसमें में स्वाध्यायी सदस्यों के लिए व्याख्यान के पूर्व अथवा अन्त में बोलने वाली उपयोगी प्रार्थनाएँ, पर्युषण पर्व सम्बन्धी कुछ स्तवन, प्रत्याख्यान सूत्र, श्रावक के तीन मनोरथ, चौदह नियम तथा अन्य सामग्री है । व्याख्यान को अधिक प्रभावशाली बनाने के लिए गाथाएँ, श्लोक, अंग्रेजी वाक्य आदि का प्रयोग श्रेयस्कर हो सकता है । परिशिष्ट मे प्राकृत की गाथाएँ, संस्कृत श्लोक, मंगलपाठ तथा अंग्रेजी के वाक्य संकलित किये गये हैं । इस प्रकार मैंने इस पुस्तक को स्वाध्यायियों के लिए अधिकतम उपयोगी बनाने का प्रयास किया है । इस पुस्तक के लिए परम श्रद्धेय आचार्य प्रवर के सुशिष्य युवाचार्य प्रवर 1008 विद्वद्वर्य श्री रामलालजी म सा की प्रेरणा अत्यधिक रही । परम श्रद्धेय आचार्य प्रवर एवं युवाचार्य प्रवर की असीम अनुकम्पा से ही यह पुस्तक लिखी जा सकी है । अत: मै परम श्रद्धेय समता विभूति आचार्य प्रवर 1008 श्री नानालालजी म सा , युवाचार्य प्रवर 1008 श्री रामलालजी म सा एवं स्थविर प्रमुख श्री ज्ञानमुनिजी म सा का अत्यन्त आभारी हूँ ।

मैं श्री अ0 भा0 साधुमार्गी जैन संघ, वीकानेर के वर्तमान अध्यक्ष सुश्रावक श्रीमान् गुमानमलजी सा चोरडिया का भी वहुत आभारी हूँ ।

मै अन्य सभी उन महानुभावो का भी आभारी हूँ जिन्होने प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप मे सहयोग प्रदान किया है ।

इसकी उपयोगिता पाठको पर निर्भर है । पाठको से निवेदन है कि वे आवश्यक एव उपयोगी सुझाव भिजवाये ।

अन्त मे यही निवेदन है कि पुस्तक की अच्छाईयॉ एव विशेषताएँ परम श्रद्धेय आचार्य प्रवर की कृपा से है एव पुस्तक मे दोष या त्रुटि के लिए मै स्वय उत्तरदायी हूँ । विद्वान पाठक यदि कोई सूत्र विरुद्ध बात पाएँ तो उसका कारण मेरी अल्पज्ञता ही समझे । यदि वीतराग वाणी की किसी प्रकार से आशातना हुई हो तो मै स्वय क्षमाप्रार्थी हूँ । पुस्तक मे जैन सिद्धान्त के प्रमुख तत्त्वो को प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है जिससे तत्त्व जिज्ञासुओ के लिए एव स्वाध्याय प्रेमियो के लिए उपयोगी हो सके ।

सज्जसिंह मेहता 'साथी'
झाला मन्ना चौराहा,
बडीसादडी

समर्पण

परम श्रद्धेय, समता विभूति,
समीक्षण ध्यान योगी, धर्मपाल प्रतिबोधक
आचार्य प्रवर 1008
श्री नानालालजी म. सा. एवं
तरुण तपस्वी शास्त्रज्ञ, प्रशान्तमना
युवाचार्य प्रवर 1008
श्री रामलालजी म. सा.
के पावन चरणों में
हृदय की असीम श्रद्धा के साथ
पर्युषण पर्व के व्याख्यानों की
यह पुस्तक समर्पित है।

अनुक्रमणिका

धर्म का मर्म

धर्म के अभाव में मानव भी बिना सींग-पूँछ का पशु है । खाना-पीना, भोग-संभोग आदि क्रियाएँ मानव की तरह पशु भी करता है । लेकिन वह मानव की तरह स्वाध्याय, सामायिक, तप-संयम, प्रभु भक्ति, ध्यान आराधना आदि धार्मिक अनुष्ठानों को दैनिक जीवन में नहीं अपना पाता है । यही तो प्रमुख अन्तर है पशु और मानव में । देवों में भी दुर्लभ यह मानवभव है, जिसके द्वारा मुक्ति के मार्ग पर कदम बढाये जा सकते हैं ।

एकमात्र धर्म ही संसार [illegible] से तिराने वाला है । धर्म वह [illegible] है जिसका शब्दों में वर्णन संभव नहीं है [illegible] पर्व का यह पावन [illegible] की प्रेरणा देता है। [illegible] दुर्लभ मानव भव को [illegible] है ।

पद्म प्रभु पावन नाम तिहारो,
पतित उद्धारन हारो । पद्म प्रभु पावन....
जदपि धीवर भील कसाई, अति पापिष्ट जमारो ।
तदपि जीव हिंसा तज प्रभु भज, पावे भव निधि पारो।
पद्म प्रभु पावन नाम तिहारो ॥

यह छठे तीर्थङ्कर पद्मप्रभु की प्रार्थना है । कवि ने प्रार्थना की कडियो में प्रभु का नाम 'पावन' कहा है । भगवान का नाम पतितो का उद्धार करने वाला है । कवि कहता है कि धीवर, भील, कसाई आदि व्यक्ति जो पापयुक्त व्यापार करते है, वे यदि हिसाजनक कार्यो का त्याग कर प्रभु के नाम का स्मरण करे तो उनका उद्धार हो सकता है । प्रभु के नाम मे अनन्त शक्ति है, परन्तु चाहिये आत्मा की शुद्धता । हमे भी अपना उद्धार करना है। आत्मोत्थान के लिए ही पर्वाधिराज पावन पर्युषण पर्व प्रतिवर्ष आते है और भव्य प्राणी अपने आप को धर्म मे प्रवृत्त कर उत्थान के मार्ग पर अग्रसर होते है । ये पर्युषण पर्व धर्माराधना की प्रेरणा करते है । हमे अपनी आत्मा को दान, शील, तप और उत्तम शुद्ध भावना मे लगाकर सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन, सम्यगचारित्र एवं सम्यग् तप की आराधना करनी है । भव्य प्राणी भगवान् पद्म प्रभु की प्रार्थना कर पापो से निवृत्त होवे तथा अपनी आत्मा को स्वच्छ बनावे । दशवैकालिक सूत्र मे कहा गया है-

"धम्मो सुद्धस्स चिट्ठई"

जैसे सिहनी का दूध स्वर्ण के पात्र मे ही ठहर सकता है, उसी प्रकार धर्म भी पावन शुद्ध आत्मा मे ही टिक सकता है । मानव इस प्रसग पर अपनी आत्मा का शुद्धिकरण करे, जिससे यह अनमोल धर्म उसके जीवन का अग वन सके । आज पर्युषण पर्व का पहला दिवस है जिसकी प्रतीक्षा भव्यजन कई दिंनो से कर रहे थे। यह अष्ट दिवसीय पवित्र पर्व जन-जन को जगाने आया है । श्रमण सस्कृति का यह विशिष्ट पर्व है ।

पर्व का अर्थ-

पर्व के कई अर्थ होते है, परन्तु वर्तमान परिप्रेक्ष्य मे पर्व का अर्थ है- पवित्र पावन दिवस । हमारे देश मे अनेक पर्व मनाये जाते है । ये पर्व दो प्रकार के होते है- (1) लौकिक और (2) लोकोत्तर

लौकिक पर्व- ये पर्व आमोद-प्रमोद, हर्ष-उल्लास, भोग-उपभोग के लिए होते हैं । इन पर्वो का सम्बन्ध शारीरिक पोषण व मनोरजन से होता है, आत्म-साधना से नही । दीपावली, दशहरा, रक्षाबन्धन, होली आदि लौकिक पर्व है । राष्ट्रीय पर्व इसी श्रेणी मे आते हैं । इन पर्वो के मूल मे कुछ भी कारण रहा हो लेकिन आज ये पर्व लौकिक पर्व की सीमा मे आबद्ध है ।

लोकोत्तर पर्व- दूसरी श्रेणी के पर्व, शरीर की सीमा से उपर उठकर आत्म-साधना और आत्मोत्थान की प्रेरणा देते है, इसीलिये वे लोकोत्तर पर्व कहलाते है । इन पर्वो के प्रसग से उपरी तौर पर भले ही शरीर का शोषण लगता है, परन्तु इनसे आत्मा का पोषण होता है । इन पर्वो को धार्मिक या आध्यात्मिक पर्व भी कहते है । सभी धर्मो मे लोकोत्तर पर्व मनाए जाते है, जैसे बौद्ध धर्म मे वैशाखी, हिन्दु धर्म मे जन्माष्टमी, रामनवमी, निर्जला एकादशी आदि । इस्लाम धर्म मे रमजान, इसाई धर्म मे क्रिसमस, जैन धर्म में पर्युषण पर्व, महावीर जयन्ती आदि । जैन धर्म मे पर्युषण पर्व विशेष आत्म-शुद्धि का पर्व है । इस पावन प्रसग पर भव्य जनशरीर से ऊपर उठकर आत्म-शुद्धि एवं आत्म-दर्शन का प्रयत्न करें जिससे परमात्म-दर्शन का मार्ग प्रशस्त हो सके । जिस प्रकार दीपावली के अवसर पर सभी लोग मकानो का कूडा कचरा निकाल कर स्वच्छ करते है, वाह्य शुद्धि करते है, उसी प्रकार पर्युषण पर्व के इस पवित्र-पावन प्रसग पर मानव अपनी आत्मा के निवास ...
रूपी शरीर से राग-द्वेष, कषाय, मिथ्यात्व रूपी कचरा नि...
उसे शुद्ध-स्वच्छ वनाने का प्रयत्न करे । आत्मा को दान,
और शुद्ध भाव मे लगावें । कवि ने कहा है-

यह पर्व पर्युषण आया, सब जग में आनंद छाया रे । यह.
यह विषय कषाय घटाने, यह आत्म गुण विकसाने ।
जिनवाणी का बल लाया रे ॥ यह पर्व......
तुम छोड़ प्रमाद मनाओ, नित धर्म ध्यानरम जाओ ।
लो भव-भव दुःख मिटाया रे ॥यह पर्व......
तप-जप से कर्म खपाओ, दे दान पुण्य फल पाओ ।
ममता त्यागो, सुख पावो रे ॥ यह पर्व......
समता से मन को जोड़ो, ममता का बन्धन तोड़ो ।
है सार ज्ञान का पाया रे ॥ यह पर्व...

यह स्तवन तो बड़ा है लेकिन यहाँ पर कुछ कडियों को ही लिया गया है । कवि भी आत्म-साधना की प्रेरणा देते हैं ।

पर्युषण शब्द का सामान्य अर्थ है- आत्मा के समीप रहना, आत्मा के घर में स्थित होना । विभिन्न विद्वानों ने पर्युषण शब्द के विभिन्न अर्थ किये हैं । मैं आपको इस समय उन विभिन्न परिभाषाओं या शाब्दिक अर्थों में नहीं उलझाना चाहता हूँ, केवल स्थूल रूप में उनका अर्थ समझ लें । 'परि' अर्थात् पूर्ण रूप से, एवं 'वस' अर्थात् रहना । यानि पूर्ण रूप से आत्मा के निकट रहना । दूसरे शब्दों में 'परिउषण' अर्थात् कर्म रूपी मैल तथा कषायों को सम्पूर्ण रूप से जलाना। कुछ भी हो, संसारी आत्मा अपने मूल स्वरूप को भूलकर परपदार्थ- राग-द्वेष, कषाय आदि जो आत्मा के शत्रु हैं उनको ही अपना स्वरूप समझ रहा है, अनादि काल से मोह, कषाय, मिथ्यात्व आदि के जाल में फँसा हुआ है, स्वस्थान से च्युत है, इसलिए यह पवित्र पर्व अपनी आत्मा में स्थित होने का संदेश देता है । इस अवसर पर अपना अन्तरावलोकन करे, अपने आपको देखें । अपनी आत्मा से दुर्गणों को निकाले एव सद्गुणो को स्थान दे ।

बुद्धि की परीक्षा-

किसी नगर मे एक धनाढ्य सेठ रहता था । उसके दो पुत्र थे । सेठ वृद्धावस्था को पहुँच चुका था, इसलिए इस बात से

चिन्तित था कि दोनों पुत्रो मे से किसे घर का अधिकारी बनाया जाये । उसने स्फटिक संगमरमर का एक सुन्दर, विशाल महल बनाया, जिसके दो विभाग थे । उसमे एक-दूसरे के विपरीत दिशा में दो द्वार थे । सेठ को एक युक्ति सूझी । इस रिक्त महल को दोनों पुत्रों को अलग-अलग सौंप दिया तथा प्रत्येक को सौ-सौ रुपये देकर अपने-अपने महल को भरने का आदेश दिया। उसी दिन सूर्यास्त के बाद महल का निरीक्षण करने को कहा । बडे पुत्र ने सोचा कि पिताजी अब वृद्ध हो गये है, 'साठी बुध नाठी' के अनुसार अब इनकी बुद्धि काम नहीं करती है । इन्हें इतना भी भान नही कि सौ रुपये में इतना विशाल महल कैसे भरा जा सकता है ? सौ रुपये में क्या सामान आ सकता है ? वह ऐसा सोच ही रहा था कि उसकी नजर नगरपालिका की कचरा गाडी पर जा टिकी । वह प्रसन्न हो गया, सोचा अपना कार्य हो गया । गाडीवान को पुकारा और उसे कहा कि इस गाडी को मेरे महल में खाली कर दो, तुम्हे सौ रुपये दूँगा । गाडीवान हैरान था कि ये अपने महल मे गन्दगी से भरी गाडी क्यों खाली करवाना चाहते हैं ? लेकिन सेठ पुत्र का आदेश था । गन्दगी से भरी गाडी बडे पुत्र के महल के प्रत्येक कमरे में खाली कर दी गई । उधर छोटे पुत्र ने सोचा कि पिताजी बुद्धिमान एवं अनुभवी हैं । उन्होंने बहुत सोच समझकर यह कार्य सौंपा है । उसने भी चिन्तन किया कि किस प्रकार केवल सौ रुपयों मे उसका महल भरा जा सकता है । उसने सोचा कि महल खाली है तथा सन्ध्या के बाद पिताजी महल को भरा हुआ देखना चाहते है । अतः मैं उसे प्रकाश से भर दूँ । ऐसा विचार कर बाजार से सौ रुपयों की मोमबत्तियाँ एवं अगरबत्तियाँ खरीद लाया । सन्ध्या होने पर प्रत्येक कमरे में मोमबत्तियाँ एवं अगरबत्तियाँ जला दी गयी । संगरमरमर का वह महल रात्रि में प्रकाश के कारण कई गुना सुन्दर लगने लगा । अगरबत्तियों की महक से वह महल सुगन्धित हो गया । सूर्यास्त के बाद सेठ महल का निरीक्षण करने निकला । पहले वह बडे पुत्र के महल में गया । पुत्र द्वार पर ही

प्रतीक्षा कर रहा था । महल मे प्रवेश करते ही सेठ को भयकर दुर्गन्ध का सामना पडा । उसे विवश होकर नाक पर रूमाल लगा लेना पडा । सारे महल में अन्धकार एवं दुर्घन्ध व्याप्त थी । सेठ ने पाया कि सभी कमरे गन्दगी से भरे है । एक क्षण भी वहॉ ठहरने की इच्छा न हुई । सेठ शीघ्र ही बाहर निकल आया । पुत्र से पूछा कि उसने यह क्या किया ? बडे पुत्र ने कहा कि पिताजी आप ही बताऍ कि सौ रुपयो मे और क्या आ सकता था ? सेठ को अत्यन्त दु:ख हुआ । इतने सुन्दर महल की यह दुर्दशा हुई । पुत्र की नासमझी पर खेद करता हुआ वह दूसरे पुत्र के महल की ओर चल दिया । छोटा पुत्र भी द्वार पर अपने पिता की प्रतीक्षा कर रहा था । पिता के आने पर उसने उनका स्वागत किया एव महल मे ले गया । रात्रि के अन्धकार मे भी महल प्रकाश से जगमगा रहा था एव सौरभ से परिपूर्ण था । पिता का हृदय गद्गद् हो गया । उसने सन्तोष की सॉस ली तथा छोटे पुत्र की पीठ थपथपाई । बडा पुत्र भी यहॉ तक पहुँच चुका था । उसका मस्तक शर्म से झुक गया । पिता ने सोचा कि छोटा पुत्र ही घर का वास्तविक उत्तराधिकारी है ।'

बन्धुओ ! यह तो एक प्रसग है लेकिन अपने आत्मा रूपी महल को ज्ञान रूपी प्रकाश एव सद्चरित्र-सदाचार रूपी सौरभ से भरने का सन्देश यह पर्वराज पर्युषण सम्यग् दर्शन-ज्ञान-चारित्र को प्राप्त करने के लिये दे रहा है । तत्वार्थ सूत्र का प्रथम सूत्र भी मोक्ष मार्ग का सकेत करता है-

'सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्राणि मोक्ष मार्ग:'

मोक्ष मार्ग की साधना के लिए यह शुभ अवसर मिला है । कर्म भी आठ है और मद भी आठ है । इन्हे नष्ट करना है । आठ प्रवचन माता की आराधना करनी है, सिद्धो के आठ गुणो को प्रगट करना है और पर्युषण पर्व के भी आठ ही दिवस हैं । आज से ही पूर्ण तैयारी के साथ आत्म-साधना मे लग जाना है । प्रत्येक कार्य का शुभारम्भ अच्छा होना चाहिये । अग्रेजी मे कहावत है-

Well begin is half done.

'अच्छा आरम्भ आधी सफलता है'

आज प्रथम दिवस के पावन अवसर पर हमे अन्तर मन को जागृत करना है, यदि प्रारम्भ अच्छा है, तो कार्य मे अवश्य सफलता मिलेगी ।

क्या करें-

इन आठ दिवसो मे हमे अपना जीवन संयमित एव धार्मिक विचारो से परिपूर्ण बनाने का प्रयत्न करना है, साधना के पथ पर आगे बढना है । आठों दिवस तक चारो स्कन्धो का पालन आवश्यक है । जो व्यक्ति वर्ष भर अपना जीवन त्याग मार्ग पर नही लगा पाते है उन्हे कम से कम इन आठ दिनो तक तो अवश्य त्यागमय जीवन व्यतीत करना चाहिये ।

चार स्कन्ध इस प्रकार है-

1. रात्रि भोजन का सर्वथा त्याग अर्थात् चौविहार (चारो आहार) का त्याग करना चाहिये ।

2 वनस्पति का पूर्ण त्याग- हरे फलो व सब्जियो का उपयोग नही करे ।

3 सचित्त वस्तु का त्याग- किसी भी प्रकार की सचित्त वस्तु जैसे- कच्चा पानी आदि का उपयोग नही करे ।

4. ब्रह्मचर्य का पालन- आठो दिवस पूर्ण ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करे ।

उपरोक्त त्यागो के साथ इन दिनों में कषायों को शान्त करने का प्रयत्न करे, स्वाध्याय करें, चिन्तन-मनन करे, तप करे, अठारह प्रकार के पापो से वंचित होने का प्रयास करें, पूर्व के की आलोचना एव यदि किसी से वैमनस्य हुआ हो तो

करें, दान-शील-तप और शुभ भावना में रमण करते हुए आत्म शुद्धि करें।

कहने को अनेक बातें हो सकती हैं परन्तु अभी उसका अवसर नही है। प्रत्येक भव्य का लक्ष्य यह हो कि अपनी आत्मा को धर्म मार्ग पर प्रवृत्त करें और धर्म हमारे जीवन का अग बने।

देवा वि तं नमं संति, जस्स धम्मे सयामणों।

(दशवैकालिक अ 1)

अर्थात् जिसका मन धर्म मे लगा रहता है उसे देवता भी नमस्कार करते हैं।

धर्म क्या है ?

धर्म की अनेक परिभाषाएँ की गई है। यहाँ उनका उल्लेख न सम्भव है, न अपेक्षित ही। अति सक्षेप में यह कह सकते है- **'वत्थु सहावो धम्मो'** अर्थात् वस्तु का स्वभाव ही धर्म है। जिस वस्तु का जो स्वभाव है, वही उसका धर्म है। पानी का स्वभाव शीतलता है और अग्नि का स्वभाव उष्णता है। यह उनका धर्म है। मानव का स्वभाव है - मानवीयता, सहिष्णुता, दया, प्रेम, सदाचरण, स्नेह, कर्त्तव्य परायणता, मैत्री भाव, सत्य भाषण आदि यह मानव धर्म है। आचार्य अमितगति के अनुसार-

सत्वेषु मैत्री, गुणिषु प्रमोदं, क्लिष्टेषु जीवेषु कृपा परत्वं।
माध्यस्थ भावं विपरीत वृत्तौ, सदा ममात्मा विद्धातु देवं॥

अर्थात् सभी प्राणियो के प्रति मैत्री भाव, गुणी जनो के प्रति प्रमोदभाव, दु:खियो के प्रति करूणाभाव एव विपरीत वृत्ति वालो के प्रति माध्यस्थ भावे हो।

धर्म आत्मा की वस्तु है। वह बाह्य आडम्बर मे नही है।

अहिंसा धर्म का प्रमुख अग है । तुलसीदासजी ने रामचरित मानस मे लिखा है-

परमधर्म श्रुति विदित अहिंसा ।
पर निन्दा सम अध न गिरिसा ॥

अहिसा को परमधर्म तथा निन्दा को महान पाप कहा है ।

तुलसीदासजी ने लिखा है-

दया धर्म का मूल है, पाप मूल अभिमान ।
तुलसी दया न छोड़िये, जब लग घट में प्रान ॥

धर्म में अहिसा तथा दया का सर्वश्रेष्ठ स्थान है । अहिसा के अभाव में धर्म सभव नही है । दशवैकालिक सूत्र मे तो प्रथम गाथा में ही लिखा है-

'धम्मो मंगल मुक्किट्ठं, अहिंसा संजमो तवो ।

अर्थात् अहिसा, सयम और तप रूप धर्म उत्कृष्ट मगल हैं । किसी अपेक्षा से विनय को भी धर्म का मूल कहा है- 'धम्मस्स विणओ मूल' । विनय तो जीवन मे अत्यन्त आवश्यक तत्त्व है । तुलसीदासजी ने सेवा को भी धर्म में उच्च स्थान दिया है-

परहित सरिस धरम नहीं भाई ।
पर पीड़ा सम नहीं अधमाई ॥

इस प्रकार दया, अहिसा, प्रेम, विनय, सत्य, श्रद्धा, तप-संयम आदि धर्म के प्रमुख अंग है । महाभारत की एक आख्यायिका से धर्म का स्वरूप अधिक स्पष्ट हो सकेगा ।

धर्म का स्वरूप-

एक बार पॉचो पाण्डव वन भ्रमण को गये । वे बहुत दूर जगल मे निकल गये । उन्हे प्यास का अनुभव हुआ । सहदेव पानी की खोज मे निकल पडे । बहुत दूर,

एक सुन्दर जलाशय पर पहुँचे, जहॉ पर स्वच्छ-निर्मल जल भरा था। दोनो भ्राताओ ने विचार किया कि अपनी प्यास शान्त कर पात्र में पानी ले चलें । इसी विचार से पानी की ओर हाथ बढाया ही था कि एक महाकाय यक्ष ने उन्हे ललकारा । यक्ष ने कहा कि उसके चार प्रश्नों का उत्तर देकर ही इस जलाशय के जल का स्पर्श किया जा सकता है । नकुल और सहदेव ने यक्ष के प्रश्नो को जानना चाहा, क्योकि सभी अत्यन्त तीव्र प्यास का अनुभव कर रहे थे । यक्ष ने कहा कि तुम धर्मराज युधिष्ठर के भ्राता हो मेरे प्रश्नो के उत्तर दो-

1. धर्म का जन्म कहॉ होता है ?
2. धर्म का विकास कैसे होता है ?
3 धर्म कहॉ सुरक्षित रहता है ?
4 धर्म का विनाश कैसे होता है ?

नकुल और सहदेव ने चिन्तन किया, लेकिन इन प्रश्नो के उत्तर नही दे सके । इसलिए यक्ष ने उन्हे मूर्छित कर दिया । जब काफी समय तक दोनो भ्राता लौटकर नहीं आये तो धर्मराज को चिन्ता हुई और उन्होने अर्जुन को उनकी खोज मे भेजा । खोजते-खोजते अर्जुन भी उसी जलाशय पर जा पहुॅचा । दोनो लघु भ्राताओ को मूर्छित पाकर अर्जुन भी विस्मित हुआ । आस-पास कोई व्यक्ति दिखाई नही दिया । अर्जुन स्वय प्यास से व्याकुल था-विचार किया कि जलाशय के जल को छिडककर भ्राताओ की मूर्छा दूर करूँ । लेकिन ज्योहि जल की ओर हाथ बढाया कि यक्ष ने ठहाका लगाया और तत्काल वे ही चार प्रश्न अर्जुन के समक्ष रखे । उत्तर नही दे सकने पर यक्ष ने अर्जुन को भी मूर्छित कर दिया । धर्मराज ने भीम को खोज के लिए भेजा । भीम भी जलाशय पर पहुॅच कर अपने पूर्व भ्राताओ की तरह मूर्छित हो गया । जब चारो भ्राताओ मे से कोई लौटकर नही आया तो युधिष्ठर स्वय चल पडे । प्यास के मारे कण्ठ अवरूद्ध हो रहा था। धर्मराज थकान एवं प्यास से

आकुल-व्याकुल हो चुके थे, परन्तु क्या करते ? साहस करके धीरे-धीरे उसी मार्ग पर चल कर कठिनाई से उसी जलाशय पर पहुॅच गये । धर्मराज युधिष्ठर चारो भाईयो को मूर्छित पडे देखकर अत्यन्त आश्चर्य चकित हुए और गहन विचार मे पड गये । यक्ष प्रस्तुत हुआ और घटना सुनाते हुए चारो प्रश्न युधिष्ठर से पूछे और कहा कि यदि उत्तर न मिलेगा तो तुम्हारी भी यही स्थिति होगी जो इन चारो की हुई । धर्मराज ने चिन्तन कर विनम्र शब्दो मे यक्ष के प्रश्नो का उत्तर दिया-

1 धर्म सत्य से उत्पन्न होता है । 2 दया और दान से विकसित होता है । 3 क्षमा द्वारा सुरक्षित रहता है । तथा 4. क्रोध करने से धर्म का नाश होता है ।

युधिष्ठर के चारो उत्तर सुनकर यक्ष प्रसन्न हुआ और जलाशय से जल पीने की अनुमति प्रदान की । युधिष्ठर ने चारो भ्राताओं को सचेत करने की प्रार्थना की । यक्ष ने तत्काल वैसा ही किया और पॉचो ने अपनी प्यास बुझाई ।

धर्मराज युधिष्ठर पर यक्ष प्रसन्न था इसलिए [illegible] निवेदन किया कि इस जलाशय के जल को जनसा[illegible] के लिए स्वतन्त्र कर दिया जावे । यक्ष को [illegible] समझाया । यक्ष ने जलाशय के जल का [illegible] स्वतन्त्र कर दिया ।

इस उदाहरण से धर्म का [illegible] । सत्य, अहिंसा, दया-दान, क्षमा आदि [illegible] । कषाय धर्म को नष्ट करता है । [illegible]

चत्तारि धम्म [illegible], आर्जवे, मद्दवे

अर्थात् [illegible], विनय, [illegible] मृदुता ।

[illegible]

[illegible]

समझे और धार्मिक प्रवृत्तियों को अपनाएँ, पापो से बचें और मोक्ष मार्ग का अनुसरण करे । धर्म ही मानव जीवन का सार है । नीति में कहा है-

आहार, निद्रा, भय मैथुनस्य,
सामान्य मेतद् पशुभिः नराणाम् ।
धर्मोहितेषामधिको विशेषो,
धर्मेणहीनाः पशुभिः समाना ॥

धर्म के अभाव मे मानव भी सीग, पूँछ का पशु है । खाना-पीना, भोग-सभोग आदि सभी क्रियाएँ मानव की तरह पशु भी करता है, लेकिन मानव की तरह स्वाध्याय, सामायिक, तप-सयम, प्रभु-भक्ति दान आदि धार्मिक अनुष्ठानो को पशु अपने दैनिक जीवन मे नहीं अपना पाता । यही तो प्रमुख अन्तर है मानव और पशु मे । कई पशुओ को तो भोजन और आवास की सुविधाएँ सामान्य मानवो की अपेक्षा अधिक उपलब्ध है । आज भी विश्व मे अनेक ऐसे मानव है जिन्हें भोजन भी पर्याप्त मात्रा मे नही मिल पाता, वे अत्यन्त कष्टमय जीवन व्यतीत करते हैं । दूसरी ओर ऐसे कई पशु हैं जिन्हे उत्तम प्रकार की सुख-सुविधाएँ उपलब्ध है । कई लोग कुत्ते पालते है, जिन्हे खाने को दूध-मलाई एव उत्तम व्यञ्जन दिये जाते है, रहने को सुविधायुक्त भवन होते है तथा कार मे यात्रा करते है । परन्तु मानव जिस प्रकार धर्म क्रियाएँ कर सकता है, उस प्रकार पशु करने मे सक्षम नही है । देवो से दुर्लभ यह मानव भव मिला है, जिसके द्वारा भव्य जन मुक्ति के मार्ग पर अग्रसर हो सकते है । शास्त्रो मे दस बातो की उपलब्धि दुर्लभ कही है, जिसमे चार बाते तो अत्यन्त दुर्लभ है- 1. मानवभव 2 धर्म श्रवण 3 धर्म पर श्रद्धा एव 4 धर्म का आचरण । भव्य प्राणियो को सभी प्रकार का सुयोग प्राप्त है । यदि प्राप्त दुर्लभ वस्तुओ का सदुपयोग नही किया और सुअवसर को खो दिया तो अन्त मे पछताना पडेगा । जैसा कि एक ब्राह्मणी को पछताना पडा । यथा-

समय की पहिचान

किसी नगर मे ज्योतिष विद्या के एक महान पंडित रहते थे । उन पर सरस्वती की कृपा थी परन्तु लक्ष्मी की अकृपा । दीन अवस्था और घर में पण्डिताइन चिडचिडे और उग्र स्वभाव की थी । गरीबी से तग आकर उसका स्वभाव और अधिक असतुलित हो गया था । जबकि पडितजी का अपना अधिकाश समय पाण्डित्य और पठन-पाठन मे व्यतीत होता । आय के स्रोत नही थे । इसलिए ब्राह्मणी का असन्तुष्ट रहना एवं ज्योतिष के प्रति अविश्वास होना स्वाभाविक था ।

एक समय पण्डितजी ज्योतिष शास्त्र की पुस्तक पढते-पढते अचानक प्रसन्नता से उछल पडे और कहने लगे- पण्डिताईन ! बस मिल गया, गुप्त खजाना मिल गया, दरिद्रता दूर हो जायेगी, अब हम मालामाल हो जावेगे । पत्नी ने व्यंग्य कसा- कोई गुप्त खजाना मिल गया या इस पोथी मे स्वर्ण मुद्राएँ, रत्न या कही का साम्राज्य मिल गया, सो हमारी निर्धनता दूर हो जावेगी । आखिर क्या नई बात हो गई ? पण्डितजी ने समझाया कि कल ऐसा नक्षत्र आने वाला है कि यदि तू मेरे कहे अनुसार कार्य करे तो मै मन्त्र विद्या से ज्वार को सच्चे मोतियो मे बदल सकता हूँ । ब्राह्मणी ने पहले तो पडितजी की खूब हँसी उडाई, फिर समझाने पर मान गई । पण्डित ने कहा- मै मन्त्रो का उच्चारण करूँगा, तू चूल्हा जलाकर किसी बडे बर्तन में पानी गर्म करना । कुछ ज्वार को किसी बर्तन मे तैयार रखना । ठीक मध्यान्ह के समय मै मन्त्रोच्चारण सम्पूर्ण कर 'हूँ' शब्द का उच्चारण करूँगा और तू तत्काल ज्वार के दानो को गर्म पानी मे डालकर ढक्कन ढक देना । थोडी ही देर मे ज्वार के दाने सच्चे मोतियो मे बदल जायेगे । पूरी सावधानी रखना, ठीक समय पर ज्वार पानी मे डालना आवश्यक है ।

यह सारी वार्ता पण्डितजी के पास की पडोसिन महिला ने ध्यान से सुन ली । महिला चतुर विनयवान, निष्ठावान एव बुद्धिमान

थी । उसने विचार किया कि कल मुझे वैसा ही करना है जैसा कि पंडितजी ब्राह्मणी को बता रहे थे । दोनों पडोस अत्यन्त निकट थे । जिससे वार्तालाप आसानी से सुना जा सकता था । पण्डितजी की बात पर पडोसिन को पूरा विश्वास हो गया, लेकिन ब्राह्मणीको विश्वास नही हुआ फिर भी वैसा करने को तैयार हो गई, परन्तु घर मे ज्वार के दाने नही थे, इसलिए वह पडौसिन से सेर-सवा सेर ज्वार उधार माग लाई । दूसरे दिन पण्डित के घर मे तैयारी प्रारम्भ हुई । उधर पडोसिन ने भी चुपके से सारी प्रक्रिया करने की तैयारी कर ली । पण्डितजी ने ठीक समय (मुहूर्त) मे मन्त्रोच्चारण शुरू किया । दोनों घरो मे सारी क्रियाएँ एक ही समान चल रही थी । ठीक मध्यान्ह मे मन्त्रोच्चारण समाप्त होते ही पण्डितजी ने 'हूँ' शब्द का उच्चारण जोरदार आवाज मे किया । पण्डिताईन पण्डितजी का मुँह ताक रही थी और पण्डितजी से प्रश्नोत्तर करने लगी- क्या ज्वार सभी एक साथ डाल दूँ या थोडी-थोडी डालूँ ? क्या मन्त्र पूरे हो गये ? क्या समय हो गया? आदि आदि । समय किसी की प्रतीक्षा नही करता, समय निकल चुका था । उधर पडौसिन ने ठीक समय पर अपना कार्य कर लिया और ब्राह्मणी ज्वार समय पर पानी मे नहीं डाल सकी । पण्डितजी माथा ठोक कर बैठ गये । अपने दुर्भाग्य को कोसते हुए ब्राह्मणी से कहने लगे- मूर्ख अब भी शीघ्रता कर ज्वार डालकर ढक्कन लगा दे । ब्राह्मणी ने ज्वार बर्तन मे डालकर ढक्कन लगा दिया । थोडी देर बाद जब दोनो परिवारो मे गर्म पानी के बर्तनो के ढक्कनों को हटाया गया तो ब्राह्मणी के बर्तन मे ज्वार थी और पडोसिन के बर्तन मे चमचमाते सच्चे मोती थे । ब्राह्मणी ने पण्डितजी को खूब कोसा और उपालम्भ दिया- 'तुम सदैव मुझे मूर्ख बनाते हो । भला क्या कभी ज्वार के भी मोती बन सकते है? क्यो झूँठ-मूठ बाते बनाते हो ? पण्डितजी का मुखमण्डल उदास था । वे विचार मग्न थे ।

उधर पडोसिन ने सोचा कि पण्डितजी की कृपा से मुझे इतने ढेर सारे सच्चे बहुमूल्य मोती प्राप्त हुए है अत: थोडे मोती

इनके घर पर भी पहुँचा दूँ। ऐसा विचार कर पडोसिन एक बडे कटोरे मे मोती भर कर पण्डितजी के घर पहुँची। पडोसिन को कटोरा लिए आते देखकर पण्डिताइन ने सोचा कि कोई मिठाई लेकर आई होगी, अतः उसका स्वागत करते हुए कहा- 'आप क्यो कष्ट करते है, हमारे यहॉ तो आज ज्वार की गुगली बनाई है।' लेकिन पडोसिन ने मोतियों का कटोरा ब्राह्मणी के थाल में खाली करते हुए कहा कि पण्डितजी की कृपा से आज मेरे घर में ढेर सारे सच्चे मोती बन गये है। पडोसिन ने संक्षेप मे सारी घटना सुना दी। ब्राह्मणी को अब अपनी असावधानी का पश्चाताप हुआ। उसने पण्डितजी को कल फिर इस क्रिया को दोहराने के लिए कहा। पण्डितजी ने कहा- 'ऐसे अवसार बार-बार नही आते। हजारों वर्षो मे कभी एक बार ऐसा सुअवसर मिलता है।' कहा भी है-

'अब पछताये होत क्या, जब चिड़िया चुग गई खेत'

ज्ञानियो ने यह प्रसग भूले भटके प्राणियो को समझाने के लिए बताया है। दृष्टान्त के मूल तत्व को ग्रहण करे।

वास्तव मे यह मानव जीवन दुर्लभता से प्राप्त हुआ है। इस जीवन मे हम मोक्ष मार्ग की आराधना कर सिद्ध-बुद्ध और मुक्त हो सकते है। यदि यह अवसर चूक गये तो फिर पछताना पडेगा।

यह महापर्व पर्युषण एक सुनहरा अवसर है। यही ज्वार को सच्चे मोती बनाने का समय है। हम अपने जीवन को निखारे। अवसर को हाथ से न जाने दे अन्यथा ब्राह्मणी के समान पछताना पडेगा। गोस्वामी तुलसीदासजी ने कहा है-

बडे भाग मानुष तन पावा,
सुर दुर्लभ सब ग्रन्थहिं गावा।

भव्य प्राणी अपने जीवन को उन्नत बनाकर समता पथ पर लाये, धर्म रूपी नैया मे बैठकर संसार सागर को पार करे। आगमो मे कहा है-

'एक्को हु धम्मो ताणं' (उत्तराध्ययन सूत्र 14 गा 40)

अर्थात् केवल धर्म ही संसार सागर से तिराने वाला है। मानव भव, जिन धर्म, शास्त्र श्रवण, पर्युषण पर्व आदि का सुयोग प्राप्त हुआ है उसे व्यर्थ यूँ ही नही खोना है। आज के मानव का जीवन ज्वार की तरह असंस्कृत है, अल्प विकसित है, अपूर्ण है। पर्युषण पर्व के पावन प्रसग पर धर्म आराधना द्वारा इसे सुसंस्कृत बना सकते हैं, मोक्ष मार्ग पर अग्रसर कर सकते हैं, उज्ज्वल मोती स्वरूप बना सकते हैं। धर्म का महत्व बताते हुए किसी अंग्रेज कवि ने लिखा है-

Religion what treasures untold,
Reside in that heavenly world,
More previus than silver and gold,
Or all this earth can afford.

अर्थात् धर्म वह बहुमूल्य कोष है जिसका शब्दो मे वर्णन नही किया जा सकता। धर्म विश्व की बहुमूल्य वस्तुओ से भी अधिकाधिक बहुमूल्य है।

वास्तव मे धर्म की तुलना सासारिक पदार्थो से नही की जा सकती। धर्म तो अलौकिक है, अद्वितीय है, लेकिन हमारी दृष्टि में धर्म की अपेक्षा धन का महत्व अधिक है। जिन्हें धर्म का सच्चा रसास्वादन हो गया; जिन्होने धर्म के महत्व को समझ लिया, उनके लिए तो धन तुच्छ, निकृष्टतम एव महत्वहीन वस्तु है।

धर्म का स्वाद-

एक बार एक श्रेष्ठी पुत्र अपने ससुराल जा रहा था। पैदल ही चल रहा था क्योकि आजकल जैसे साधन उपलब्ध नही थे। सोचता जा रहा था कि क्या ही अच्छा हो कोई बैलगाडी अथवा घोडा मिल जाय तो थकान नही आयेगी, ससुराल मे सम्मान बना

रहेगा और कहेगे कि दामाद वाहन से आये है- ठोकरे खाते घूमते-घामते नही आये ।

संयोगवश गॉव से थोडी ही दूर एक गाडी मिल गई, जो उसी गॉव की ओर जा रही थी । गाडी खाली थी । गाडीवान से श्रेष्ठीपुत्र ने कहा- मुझे भी ले चलो । गाडीवान को श्रेष्ठीपुत्र का ससुराल जाना अच्छा लगा क्योंकि उसने सुन रखा था कि जमाई ससुराल आता है तो श्रेष्ठियों के वहॉ अच्छे-अच्छे मिष्ठान बनते हैं। उसने इस शर्त के साथ श्रेष्ठीपुत्र को गाडी मे बिठा लिया कि मुझे भी अपने साथ भोजन कराओगे । गाडीवान निर्धन कृषक था, उसने अपने जीवन में मिष्ठान के नाम पर एक दो-बार 'गुडराब' खायी थी, जिसका स्मरण करते ही उसके मुॅह मे पानी भर आया । अन्य कोई मिष्ठान खाने का प्रसंग ही नहीं आया इसलिए उसकी दृष्टि मे ससार मे सर्वोत्तम स्वादिष्ट व्यंजन 'गुडराब' ही था । उसने श्रेष्ठीपुत्र से 'गुडराब' खिलाने का वायदा करवा लिया । बात पक्की हो गई । सध्या होते-होते निर्धारित स्थान पर वे पहुॅच गये ।

ससुराल मे अच्छे से अच्छे व्यजन बनाने की तैयारियॉ की जा रही थी । श्रेष्ठीपुत्र ने सोचा यहॉ अनेक प्रकार की मिठाईयॉ बन रही है, ऐसे वक्त 'गुडराब' जैसी तुच्छ वस्तु के लिए कहता तो अपमानजनक बात होगी । वह चुप रहकर सोचने लगा कि गाडीवान अच्छी मिठाईयॉ खावेगा तो गुडराब का स्वाद अपने आप भूल जायेगा । इसी विश्वास से गाडीवान को ढाढस दिया कि आतुर मत हो, तुझे गुडराब मिल जावेगी ।

थोडी देर बाद ही भोजन परोसा गया, थालियो मे अनेक व्यजन एव मिठाईयॉ थी । गाडीवान सामने ही कुछ दूरी पर बैठा था । सभी कटोरियो मे ढूॅढने लगा, अंगुली लगा-लगाकर चखने लगा, लेकिन गुडराब नही होने से बैचेन होकर श्रेष्ठीपुत्र को इशारे से गुडराब के लिए पूछने लगा । श्रेष्ठीपुत्र ने गुलाबजामुन दिखाते हुए इशारे से कहा- इसे खाओ । गाडीवान ने सिर हिलाते हुए ना

कर दी और धीरे से कहा- ये ऊँट के मीगने नहीं खाऊँगा, मुझे तो गुडराब ही चाहिये । श्रेष्ठीपुत्र ने समझाया कि अच्छा भाई गुडराब कल खिला दूँगा ।

'नही' आज ही, अभी खाऊँगा गुडराब' गाडीवान ने जोर से कहा । बात बिगडती देख मौका पाकर श्रेष्टीपुत्र ने जबरदस्ती एक गुलाब जामुन गाडीवान के मुँह मे डाल दिया तो उसने थू-थू करके थूँक दिया और कहा- ऊँट के मीगने मै नहीं खाऊँगा । इसके साथ ही दूसरा गुलाब जामुन उसके मुँह मे और दे दिया गया, इस बार थुकने के साथ ही, अच्छा स्वाद उसे आ गया तो तीसरा उसने स्वय मुँह मे रख लिया । उसके आश्चर्य का पारावार न रहा । अरे ! यह तो 'गुडराब' से भी ज्यादा स्वादिष्ट और मीठे है ।

ठीक इसी प्रकार आज के व्यक्तियो को अभी तक धर्म का स्वाद नही आया, इसलिए वे धन को ही सब कुछ समझते है । जब गाडीवान की तरह मिष्ठान के स्वाद को चख लेगे, यानि धर्म के सम्यग् स्वरूप को समझ लेगे तो उनकी दृष्टि भी बदल जावेगी ।

श्रमण भगवान् महावीर ने धर्म को दो प्रकार का कहा है-

'दुविहे धम्मे पन्नते,
सुयधम्मे चेव चरित्त धम्मे चेव ।'

(ठाणाग सूत्र 2रा ठाणा)

अर्थात् 1. श्रुत धर्म और 2 चारित्र धर्म । जिनदेव तीर्थङ्कर, गणधर आदि द्वारा प्ररूपित ज्ञान एव सम्यग् श्रद्धान-यह श्रुत धर्म है तथा उनके अनुरूप श्रावक और साधुओ द्वारा आचरण किया जाने वाला व्रतानुष्ठान एव तपानुष्ठान चारित्र धर्म है ।

चारित्र धर्म के दो भेद है-

1 आगार धर्म और 2 अणगार धर्म ।

आगार धर्म के अनुसार गृहस्थ जीवन में रहता हुआ श्रावक बारह अणुव्रतों का पालन करता है तथा जो भव्य प्राणी ससार का त्याग कर पॉच महाव्रत, आठ प्रवचन माता का पूर्ण रूपेण पालन करते है वे अणगार धर्म को जीवन में अपनाते हैं । आगार धर्म अणगार धर्म की अपेक्षा सरल एवं आसान है । अणगार धर्म अत्यन्त दुष्कर, कठिन एव तलवार की धार पर चलने से भी अधिक कठिन है ।

इस प्रकार पर्युषण पर्व के प्रथम दिवस पर यह चिन्तन-मनन करे कि धर्म व्यक्ति के जीवन का एक महत्वपूर्ण अंग बने । धर्म के द्वारा ही इहलोक और परलोक सुधारा जा सकता है । प्रभु-प्रार्थना भी धर्म क्रिया का आवश्यक अंग है । प्रार्थना की कडियों में कवि ने भी यही कहा है कि यह प्रार्थना संसार सागर से तिराने वाली है ।

इस पावन अवसर पर हम धर्म के महत्व को समझे, अपनी शक्ति एव सामर्थ्य के अनुसार जीवन मे उतारे, प्रभु की शरण ग्रहण करे तथा मोक्ष मार्ग पर अग्रसर हो । ज्ञानियो का कथन है- धर्म मे प्रवृत्ति करो, प्रतिक्षण प्रभु को स्मरण करो । किसी कवि ने भी कहा है-

साँस साँस पर हरि भजो, वृथा साँस मत खोय ।
ना जाने या सॉस को, आवत होय न होय ।

यदि आप वर्ष भर धार्मिक अनुष्ठान न करे सके तो कम से कम इन आठ दिवस मे तो धर्म का पुरुषार्थ करे । पद्म प्रभु की पावन प्रार्थना के माध्यम से ससार परित करने का प्रयत्न करे ।

ॐ नमोऽर्हन्तो ऋषभो वा, ॐ ऋषभ पवित्रम् ।

भावार्थ- अरिहन्त (अर्हन्त) ऋषभदेव को नमस्कार है, वे पवित्र है ।

(यजुर्वेद अ-25 मन्त्र 16)

ज्ञान-एक विवेचन

ज्ञान स्व-पर प्रकाशक है । ज्ञान, अज्ञान रूपी अन्धकार को दूर कर आत्मा को सम्यग् मार्ग दिखाता है । ज्ञान का प्रकाश भौतिक प्रकाश से अत्यधिक प्रकाशमान है । ज्ञान आत्मा की महान शक्ति है, निर्मल ज्योति है, अखण्ड प्रकाश पुंज है । ज्ञान जीवन है एवं अज्ञान मृत्यु है, ज्ञान ज्योति है और अज्ञान अन्धकार है । ज्ञान मानव जीवन का सार है।

श्री आदीश्वर स्वामी हो,
प्रणमुं सिरनामी तुम भणी ।
प्रभु अन्तरयामी आप,
मो पर म्हेर करीजे हो,
मेटीजे चिन्ता मन तणी ।
म्हारा काटो पुरा कृत पाप,
श्री आदीश्वर स्वामी हो ।

प्रथम तीर्थङ्कर भगवान् ऋषभदेव की यह प्रार्थना अध्यात्म योगी श्री विनयचंदजी ने की है । कवि कहता है कि प्रभु मेरे पूर्व कृत पापो को नष्ट कर मेरी चिन्ता दूर करो । आप अन्तर्यामी हैं । मुझ पर कृपा करो । मैं आपके पवित्र पावन चरणों में अपना मस्तक नमाता हूँ । प्रभु की प्रार्थना करना जीवन का महत्वपूर्ण अंग है । प्रार्थना के माध्यम से जीवन का वेग सही दिशा की ओर प्रवाहित होता है । प्रार्थना से जीवन में आध्यात्मिक शक्ति का संचार होता है । प्रार्थना दैनिक जीवन का आवश्यक अंग होना चाहिए ।

अपने स्वरूप को पहचानो–

आज पर्युषण पर्व का दूसरा दिन है । कल पर्युषण पर्व के महत्व का [illegible] धर्म की आवश्यकता [illegible] । पावन पर्व के ये आठ दिन [illegible] देते हैं । [illegible] पर्व के [illegible] अवसर [illegible] लाभ [illegible] परमात्म [illegible] से [illegible] है । [illegible] अनन्त [illegible]

[illegible]

स्वरूप को भूल चुका है । यह पर्व उसे याद दिलाने, सोये हुए सिंहत्व को जगाने तथा आत्मज्योति को आलोकित करने आया है ।

सिंहत्व को जगाओ-

एक बार किसी वन मे सिंहनी ने दो बच्चो को जन्म दिया । बच्चो को जन्म देन के तुरन्त बाद सिहनी भोजन की तलाश मे निकल गई । संयोगवश उधर से कुछ कृषक निकले । उन्होने एक बच्चे को उठा लिया और अपने साथ नगर में ले आये। इस बच्चे को बकरियो का दूध पिलाकर बडा किया गया । यह बच्चा भेडों और बकरियों के बीच रहता था, उन्ही के साथ जगल मे जाता उन्हीं की तरह सारा जीवन क्रम चल रहा था । बच्चा अपने आपको इन भेडो और बकरियो के समान ही समझता था । बकरियों को भी इस बच्चे से कोई भय नहीं था । धीरे-धीरे बच्चा जब बडा हो गया तब एक दिन सयोग से जगल मे, पर्वत की तलहटी मे एक भयंकर आवाज सुनी । आवाज ह्रदय दहलाने वाली थी । सभी बकरियॉ भाग खडी हुई । उन्होने नगर का रास्ता लिया । यह बच्चा भी बकरियो को भागते देखकर उनके साथ भागने लगा । लेकिन भागते-भागते इसने मुड कर देखा एवं यह जानना चाहा कि किस आकस्मिक भय के कारण सभी भयभीत हुए हैं । बच्चे ने देखा कि पर्वत शिखर पर एक विशालकाय सुनहरे रग का एक विचित्र पशु है जिसकी लम्बी पूँछ मस्तक को छू रही है, बडी-बडी मूँछे है । मुँह मे नुकीले दॉत है । इसी पशु की आवाज से सारा वन गूँज उठा है । इस विचित्र प्राणी को बकरियों के बीच रहने वाले शेर ने ठीक से देखा और पुनः बकरियो मे जा मिला । यह विचित्र प्राणी और कोई नही इसी बच्चे का दूसरा भ्राता जगल का राजा था । वास्तव मे दोनो समान थे परन्तु दोनो मे केवल संस्कारो का अन्तर था । एक बकरियो के साथ रह रहा था तो दूसरा वन मे स्वतन्त्रता पूर्वक विचरता था । बकरियो के साथ भागता हुआ वह शेर जंगल से दूर नगर के समीप आ पहुँचा । मार्ग मे एक नाले पर सभी बकरियो ने

पानी पीया । उस बच्चे ने भी पानी पीया । नाले के स्वच्छ पानी मे उसने अपना प्रतिबिम्ब देखा । उसे पर्वत शिखर पर देखे उस प्राणी की स्मृति हो आई । उसने अनुभव किया कि आकृति रूप-रंग व सम्पूर्ण शारीरिक रचना में वो दोनो समान है । प्रयत्न करने पर वह भी वैसा ही सिहनाद करने मे सफल हो गया । सिहनाद सुनकर बकरियॉ पुनः भाग खडी हुई । आज जीवन में पहली बार इस शेर ने अनुभव किया कि मैं उन बकरियो से भिन्न हूँ । उसका सिंहत्व जागृत हो गया । अब उसने भी वन का मार्ग ग्रहण किया एवं स्वतन्त्र हो गया । स्व स्वरूप मे स्थित हो गया ।

यह तो दृष्टान्त है । इससे यह समझना है कि प्रत्येक आत्मा मे अनन्त शक्ति है, यदि उस शक्ति को जगायें तो जीवन बदल सकता है । भव्य आत्मा सिद्ध, बुद्ध मुक्त बन सकती है । ज्ञानियो ने कहा है-

सिद्धा जैसो जीव है, जीव सोहि सिद्ध होय ।
पराक्रर्म मेल का आन्तरा, समझे बिरला कोय ॥

दूसरे शब्दो मे यो भी कहा जा सकता है-

सिद्ध समान यह जीव है, करे कर्म चकचूर ।
प्राक्रम फोड़े अन्तर का, तो मुक्ति कितनी दूर ॥

वास्तव मे हमारी आत्मा और सिद्धो की आत्मा मे अष्ट कर्मो का ही तो अन्तर है । हमारी आत्मा अष्ट कर्मो से युक्त है और सिद्ध आत्मा कर्म रहित है । जिन आत्माओ ने अपने सोये हुए सिंहत्व को जागृत किया है वे सिद्ध-मुक्त हो गये है । कवि ने भी कविता के माध्यम से कितने उत्तम भाव व्यक्त किये है -

नर नारायण बन जाएगा,
जो आतम ज्योति जगायेगा । नर...

पापों के बन्धन टूटेंगे, विषयों के नाते छूटेंगे ।
जो सोया सिंह जगायेगा, नर नारायण... ॥१॥

घट-घट में बैठा एक ईश्वर है, जाने माने ज्ञानेश्वर है ।
सब जनम मरण मिट जावेगा, नर नारायण... ॥२॥
बादल के पीछे दिनकर है, कर्मों के पीछे ईश्वर है ।
जो सर्व ही ज्योति जगाएगा, नर नारायण.... ॥३॥

बन्धुओ ! यह पावन पर्युषण पर्व नर से नारायण बनने का, आत्मा से परमात्मा बनने का संदेश दे रहा है, आत्म-ज्योति को विकसित करने की प्रेरणा दे रहा है ।

ज्ञान का महत्व-

आज सम्यग् ज्ञान के विषय मे विचार करना है । ज्ञान का महत्व सभी धर्मशास्त्रो में स्वीकार किया गया है । ज्ञान विकास की प्रथम सीढी है । ज्ञान सर्व प्रकाशक है । ज्ञान से ही तो वास्तविक बोध सम्भव है । शास्त्रों में ज्ञान की महिमा बताते हुए कहा है-

नाणं सम्पन्नाए जीवे,
सव्व भावाहिगमं जणयई ।

(उत्तराध्ययन 29 गा 59)

ज्ञान सम्पन्नता एव इसकी वृद्धि करने से आत्मा विश्व व्यापी छः द्रव्यो और उनकी पर्यायो को तथा उनके गुण धर्मो को जान सकता है । ज्ञान और दर्शन का घनिष्ठ सम्बन्ध है। एक के अभाव मे दूसरा सम्भव नही है ।

ज्ञान स्व-पर प्रकाशक-

ज्ञान, अज्ञान रूपी अन्धकार को दूर कर आत्मा को सच्चा मार्ग दिखाता है । ज्ञान का प्रकाश बिजली, चन्द्र एव सूर्य के प्रकाश से भी अधिक प्रकाशमान, अधिक उपयोगी, अधिक महत्वपूर्ण है । ज्ञान रूपी प्रकाश के अभाव मे बिजली, चन्द्र या सूर्य का प्रकाश भी सार्थक नही होता । ये भौतिक प्रकाश केवल परिमित क्षेत्र एव काल मे ही प्रकाशित होते है, लेकिन ज्ञान रूपी प्रकाश

सदाकाल एवं सर्वत्र प्रकाशित होता है। दीपक बाहर में प्रकाश करता है, परन्तु स्वयं के तले में अन्धकार रखता है लेकिन ज्ञान स्व-पर प्रकाशक है। ज्ञान आत्मा की महान शक्ति है, निर्मल ज्योति है, अखण्ड प्रकाश पुन्ज है। अन्धकार से प्रकाश की ओर अग्रसर होने के लिए नीति में भी कहा है-

असतो मो सद्गमय।
तमसो मा ज्योतिर्गमय।
मृत्योर्मा अमृतगमय।

यह अन्धकार क्या है ? अज्ञान ही अन्धकार है। ज्ञान प्रकाश है। ज्ञान की महिमा बताते हुए कहा है-

तमो धुनीते कुरुते प्रकाशं, शामं विधिते विनिहंति कोयं।
तनोति धर्म विधुनेति पापं, ज्ञानं न किं किं कुरुते नराणम्॥

अर्थात् ज्ञान मनुष्य का क्या-क्या कार्य नहीं करता ? अन्धकार नष्ट करता है, शक्ति देता है, क्रोध नष्ट करता है, धर्म का विकास कर पाप को नष्ट करता है। इस प्रकार सभी कार्य करता है।

आचार्य श्री कुन्दकुंन्द ने दर्शन पाहुड में लिखा है-
'णाणं णरस्य सारो'
अर्थात् ज्ञान मानव जीवन का सार है।

क्रिया से पूर्व ज्ञान आवश्यक है-

दशवैकालिक सूत्र में ज्ञान का महत्व बताते हुए कहा गया है-

पढमं नाणं तओ दया, एवं चिट्ठइ सव्व संजए।
अन्नाणी किं काही, किं वा नाही सेय पावगं॥

अज्ञानी क्या कर सकता है ? किस प्रकार
सकता है ? इसलिए क्रिया से पूर्व ज्ञान आवश्यक

जीव-अजीव, आत्मा-पुद्‌गल, स्व-पर का ज्ञान ही नही होगा तो जीवों पर दया कैसे की जा सकती है, उनकी रक्षा कैसे की जा सकती है, मोक्ष मार्ग पर कैसे आगे वढा जा सकता है ? इसलिए चरित्र से पूर्व ज्ञान होना आवश्यक है ।

धर्म-धर्म सब ही करे, धर्म न जाने कोय ।
जाति न जाने जीव की, धर्म किस विध होय ॥

ज्ञान के अभाव में धर्म कैसे सम्भव है, दया कैसे सम्भव है ? यही तो कारण है कि संसार के कुछ दर्शन, कुछ धर्म, वास्तविक तत्व को न समझने के कारण अधार्मिक क्रियाओ में भी धर्म मान लेते हैं । वे जीवों के विभिन्न स्वरूपो को न समझने के कारण उनकी हिसा से बच नहीं पाते है । जैन धर्म की अहिसा अत्यन्त सूक्ष्म है । जैन दर्शन पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि एवं वनस्पति मे भी जीव मानता है लेकिन जीव का ऐसा सूक्ष्म विवेचन अन्य दर्शनों में नहीं मिलता । इनकी जानकारी ज्ञान द्वारा ही सम्भव है । ज्ञान द्वारा ही हिंसा से बच सकेगे । यदि ज्ञान नही हो तो चरित्र भी नही हो सकता । यथा-

नाणेण विना न हुंति चरण गुणा (उत्तरा 28)

किसी संस्कृत के विद्वान ने तो ज्ञान को समस्त सासारिक वस्तुओ से बढकर बताया है-

न ज्ञान तुल्य किल कल्प वृक्षो,
न ज्ञान तुल्या किल कामधेनुः ।
न ज्ञान तुल्या किल काम कुम्भो,
ज्ञानेन चिन्तामणि रप्प तुल्यः ॥

अर्थात् कल्पवृक्ष, कामधेनु, कामकुम्भ और चिन्तामणि रत्न से भी बढकर ज्ञान का महत्व है । ये ज्ञान के समक्ष तुच्छ है ।

वास्तव मे ज्ञान का जीवन मे बहुत महत्व है । ज्ञान से भय का भी नाश होता है । ज्ञान के समान कोई और दीपक नही है ।

नास्ति ज्ञान समं [illegible] सर्वं अन्धकार [illegible] ।

[illegible]

कोटि जन्म तप तपै, ज्ञान बिन कर्म झरे जे ।
ज्ञानी के छिन में त्रिगुप्ति तें सहज टरे ते ॥

अर्थात् अज्ञानी व्यक्ति करोड़ों जन्मों तक कठोर तप भी करे लेकिन वह लाभदायक नहीं होता और ज्ञानी का अल्प तप भी मुक्ति में सहायक होता है।

इसलिए ज्ञान महाप्रकाश है, अज्ञान महान् अन्धकार है, ज्ञान मुक्ति का साधन है, अज्ञान परिभ्रमण का कारण है। हिताहित का बोध कराने वाला ज्ञान ही है। दशवैकालिक सूत्र के चौथे अध्याय में कहा है-

सोच्चा जाणइ कल्लाणं, सोच्चा जाणइ पावगं ।
उभयं पि जाणइ सोच्चा, जं सेयं तं समायरे ॥

अर्थात् पाप और कल्याण को सुनने से जाना जा सकता है, अतः जो श्रेष्ठ हो उसी में प्रवृत्ति करनी चाहिये।

इसी सूत्र में आगे कहा गया है-

जो जीवे वि न याणई, अजीवे वि न याणेई ।
जीवाजीवे अयाणंतो, कहं सो नाहीइ संजमं ॥

अर्थात् जीव और अजीव का ज्ञान किये बिना संयम का पालन कैसे हो सकता है। अंग्रेजी में कहावत है

Knowledge is Power.

'ज्ञान शक्ति है।'

अतः कवि प्रभु से प्रार्थना करता है

Oh God ! thee I Pray

Increase My knowledge
Day by day.

हे प्रभु मैं तुझसे प्रार्थना करता हूँ
कि मेरा ज्ञान प्रतिदिन विकसित हो ।

ज्ञान सम्यग् हो-

यहाँ ज्ञान के महत्व को संक्षेप में स्पष्ट करने का प्रयत्न किया गया है । लेकिन ज्ञान कैसा हो ? इस बारे में जब हम चिन्तन करते हैं तो पाते है कि आधुनिक युग में ज्ञान का विपुल विकास हुआ है । मानव चन्द्रलोक में पहुँचने की चर्चा करता है, पक्षियो की तरह स्वतन्त्र रूप से आकाश मे द्रुत गति से उडता है, घर बैठे-बैठे दूर समुद्र पार व्यक्तियो की चर्चाएँ सुनता है, टेलिविजन पर उन्हें देखता भी है और यहाँ तक कि कुछ क्षणों में विश्व की सम्पूर्ण सृष्टि को नष्ट करने का भी दम्भ भरता है । पर क्या आप इसे ज्ञान का विकास कहेगे ? जहाँ विनाश की योजनाएँ बनती है वह तो अज्ञान है, मिथ्याज्ञान है । केवल पोथियो का ज्ञान जिससे आप धन कमाना, दूसरो पर अधिकार करना, छल-कपट करना, शोषण करना सीख सकते हैं, पर ज्ञान का यह स्वरूप नहीं है । ऐसे ज्ञान से आत्मा को कोई लाभ होने वाला नही है । यह तो आत्मा के पतन का कारण है, गहरे गर्त मे डालने वाला तथा भव भ्रमण मे वृद्धि करने वाला है । मै जिस ज्ञान की चर्चा करना चाहता हूँ वह इससे सर्वथा भिन्न है । वह तो आत्मा को उज्ज्वल बनाने वाला है, कल्याणकारी है, आत्मोत्थान का कारण है, आत्मा को तिराने वाला है । वह ज्ञान है- सम्यग् ज्ञान अर्थात् सच्चा ज्ञान ।

सच्चा ज्ञान वही हो सकता है जो आत्मा को भव भ्रमण से बचावे और मोक्ष मार्ग पर अग्रसर करे । कहा भी है-

सा विद्या या विमुक्तिये ।

विद्या वही है जो मुक्ति का कारण हो । ज्ञान वन्धान से मुक्त

करता है, बन्धन काटता है, नौका की तरह संसार सागर से तिरने मे सहायक होता है । एक पुरानी कथा प्रचलित है-

सच्चे ज्ञान की पहचान

एक बार पुस्तकीय ज्ञान के अभिमानी किसी पण्डित को नौका द्वारा नदी पार करने का अवसर प्राप्त हुआ । नाविक और पण्डितजी दोनो को लेकर नाव नदी में अपनी गति से चल रही थी । मार्ग में पण्डितजी ने नाविक से पूछा- 'क्या तुम ज्योतिष विद्या के जानकार हो ?' सहज भाव से नाविक ने उत्तर दिया- 'महाशयजी ! मैं ज्योतिष विद्या नहीं जानता ।'

पण्डित ने गर्व से कहा- 'नाविक यदि तुम ज्योतिष विद्या नही जानते तो तुम्हारी चौथाई जिन्दगी पानी में गई ।

नाविक मौन था । पण्डितजी ने पुनः पूछा- 'तुम ज्योतिष नही जानते तो भाषा विज्ञान और व्याकरण आदि का अध्ययन तो किया होगा ?'

नाविक ने 'भाषा विज्ञान' 'व्याकरण' आदि शव्द जीवन में पहली बार सुने थे । अतः सिर हिलाते हुए कहा- 'नहीं श्रीमान् मैं कुछ नही जानता । पण्डितजी ने दम्भ की मुद्र में कहा- तेरी आधी जिन्दगी पानी में डूब गई । नाविक फिर भी मौन था और दोनो हाथो से पतवार चला कर नाव को आगे बढा रहा था

पण्डितजी ने अगला प्रश्न पूछा- 'अच्छा, तूने दर्शन शास्त्र तो पढा ही होगा ?'

नाविक ने उत्तर दिया- 'मैने आपको पहले ही कहा है मै कुछ भी नही जानता । मै तो नाव द्वारा यात्रियो को नदी पार कराना जानता हूँ, नाव चलाना जानता हूँ और कुछ नही जानता ।

पण्डितजी ने मुँह बनाते हुए कहा- 'अरे नाविक ! तुने मानव तन पाकर जीवन व्यर्थ मे खो दिया । तु ज्योतिष

जानता, भाषा विज्ञान नही जानता, दर्शन शास्त्र नही जानता तो तेरी पौन जिन्दगी तो पानी में गई ।'

नाविक फिर भी मौन था । नाव अपनी गति से आगे बढ रही थी कि अचानक नदी मे पानी बढने लगा, बाढ आ गई । नाविक ने नाव सम्भालने का भरसक प्रयत्न किया परन्तु सब व्यर्थ गया, नाव विचलित हो गई । पण्डितजी भी घबरा गये । जब नाव नाविक के नियन्त्रण से बाहर होने लगी तो उसने पण्डितजी से कहा- 'क्या आप तैरना जानते हैं ?'

पण्डिजी का उत्तर नकारात्मक था । पण्डितजी ने अन्य विद्याएँ तो सीख ली थी परन्तु तैरने की कला नही सीखी ।

नाविक ने कहा- 'अब नाव मेरे नियन्त्रण के बाहर है, यदि आप तैरना नहीं जानते तो आपकी पूरी जिन्दगी पानी मे जाने वाली है । बाढ के कारण मैं तो नाव छोडकर पानी मे कूद कर तैरते हुए अपना जीवन बचा लूँगा, लेकिन आप क्या करेगे ? आप अन्य विद्याएँ तो खूब जानते हैं परन्तु तैरने की कला नही जानते अतः आपकी सम्पूर्ण जिन्दगी अब पानी में है ।' नाविक ने तैर कर नदी पार कर ली । पण्डितजी के बचाओ ! बचाओ !! की आवाज करने पर नाविक को दया आ गई, उसने अपनी जान जोखिम मे डाल कर पण्डितजी को बचा लिया । तब पण्डितजी का मस्तक शर्म से झुक गया । वे कहने लगे- 'मै अपने ज्ञान के मद मे था मुझे आपका उपहास नहीं करना चाहिये था ।

इस कथानक से मेरा यह आशय नही है कि हम दर्शन शास्त्र, भाषा विज्ञान, ज्योतिष आदि व्यावहारिक शिक्षा ग्रहण न करे । मैं व्यावहारिक शिक्षण के विरोध मे नही हूँ । लेकिन मैं बताना यह चाहता हूँ कि केवल पुस्तकीय ज्ञान पर्याप्त नही है । हम ससारी है, अतः उपरोक्त वर्णित विद्याएँ हमारे लिये आवश्यक हो सकती है, परन्तु इतने ज्ञान मात्र से कार्य नही चलेगा । जीवन को उच्च

बनाने, आत्मा को निर्मल बनाने, सवर-निर्जरा की अभिवृद्धि में जो सहायक ज्ञान है वही सच्चा ज्ञान है- सम्यग्ज्ञान है । भौतिक विकास ही वास्तविक विकास नहीं है । वास्तविक विकास तो आध यात्मिक विकास है । मैं यह नहीं कहता कि पुस्तकीय ज्ञान न किया जावे, लेकिन भौतिक ज्ञान में, पुस्तकीय ज्ञान में, बाह्य ज्ञान में ज्ञान की इतिश्री न समझे । इनसे ऊपर उठकर स्व-पर, आत्मा-परमात्मा, हित-अहित, तत्व एवं द्रव्य को समझें तथा अपना जीवन उन्नत बनावें । सम्यग् ज्ञान ही स्व-पर प्रकाश है, कल्याणकारी है, मुक्ति में सहायक है । पर्युषण पर्व के ये पावन दिवस यही दिव्य सन्देश देते हैं ।

शान्ति का अमोघ अस्त्र-सम्यग्ज्ञान-

सम्यग्ज्ञान के अभाव के कारण ही मानव की दृष्टि आज बाह्य जगत पर लग रही है । आज विश्व मे भौतिक प्रगति की दौड और होड लग रही है । इस दौड और होड में मानव अपने आपको भूल चुका है । मानवता से दूर हटता जा रहा है, इस दौड ने विश्व को विनाश के कगार पर ला खडा किया है । आज सम्पूर्ण विश्व मे युद्ध का भय प्रति क्षण बना हुआ है । क्या यही मानव जीवन का लक्ष्य है ? कदापि नहीं । भौतिक विकास चाहे कितना भी हो जावे उससे शान्ति मिलने वाली नहीं । वास्तविक शान्ति के लिए आवश्यकता है आध्यात्मिक ज्ञान की यानि सम्यग्ज्ञान की । सम्यग्ज्ञान के विकास से विश्व में फैली हुई विषमताएँ दूर हो कर शान्ति सम्भव हो सकती है ।

स्वयं को पहचानो-

आध्यात्म योगी आनन्दघनजी ने कहा है-

आतम ज्ञानी श्रमण कहावे, बीजा तो द्रव्य लिंगी रे ।
वस्तु गते जो वस्तु प्रकाशे, 'आनन्दघन' मति

वास्तव में आत्मज्ञान श्रेष्ठ है । जो आत्मज्ञानी है, वही सच्चा साधक है । आत्मज्ञानी वस्तु के स्वरूप को समझ लेता है, स्व-पर का भेदज्ञान कर लेता है । पर्युषण पर्व का यह पावन प्रसंग भी यही सन्देश देता है कि अपने आपको पहचानो, स्वय को परखो । जिसने स्वयं को पहचान लिया, आत्मतत्व को समझ लिया उसने सब कुछ जान लिया । आचारांग सूत्र में स्पष्ट लिखा है-

जे एगं जाणइ से सव्वं जाणइ,
जे सव्वं जाणइ से एगं जाणइ ।

जो एक आत्मा को जानता है वह संसार के स्वरूप को जानता है और जो सम्पूर्ण संसार के स्वरूप को जानता है वह आत्मा के स्वरूप को जानता है । सम्यग् ज्ञान के द्वारा ही ऐसा सम्भव है ।

ज्ञान के भेद-

ज्ञान के महत्व को समझने के बाद अब ज्ञान के भेद को समझ लेना आवश्यक है । तत्वार्थ सूत्र मे ज्ञान के पॉच भेद बताए है-

मति श्रुतावधि मनः पर्याय केवलानि ज्ञानम् ।

अर्थात् मति, श्रुत, अवधि, मनः पर्याय और केवल - ये पॉच ज्ञान है । नंदी सूत्र मे भी इन्हीं पॉच ज्ञानो का उल्लेख है । मूल मे तो ज्ञान एक है लेकिन आवरण, क्षय-उपशम आदि की अपेक्षा से ज्ञान के पॉच भेद कहे है ।

(1) मतिज्ञान-

पॉच इन्द्रियो एव मन के द्वारा होने वाले ज्ञान को मतिज्ञान कहते है । ऑख, कान, नाक, रसना एव त्वचा इन पॉच इन्द्रियो तथा मन की सहायता से आत्मा को जो ज्ञान होता है वह मतिज्ञान है । यह परोक्ष ज्ञान है । मतिज्ञान के चार भेद है- 1 अवग्रह 2

ईहा 3 अवाय और 4. धारणा । (जिज्ञासु पाठकों को इनका विस्तार प्रथक से जानना चाहिये)

(2) श्रुत ज्ञान-

पॉच इन्द्रियो और मन के द्वारा जो सामन्य ज्ञान होता है वह मति ज्ञान है और वही ज्ञान जब कथन करने योग्य बन जाता है तब श्रुत ज्ञान की श्रेणी में आ जाता है । जैसे कच्चा दूध एवं ओंटाया हुआ दूध । श्रुत का अर्थ सुनना भी है । जो ज्ञान शब्द के सहारे कराया जावे, चाहे वह बोलकर, लिखकर, पुस्तक पढकर अथवा संकेत द्वारा स्व-पर को कराया जावे सब ही श्रुत ज्ञान है । श्रुत ज्ञान मति पूर्वक होता है । 'श्रुतं मति पूर्व' मतिज्ञान और श्रुत ज्ञान में घनिष्ठ सम्बन्ध है । मति ज्ञान से श्रुत ज्ञान होता है । अतः मति ज्ञान कारण है और श्रुत ज्ञान कार्य है । शास्त्रों के पढने-सुनने से श्रुत ज्ञान होता है । श्रुत ज्ञान के दो प्रमुख भेद हैं- 1. अक्षर श्रुत 2 अनक्षर श्रुत ।

<u>अक्षर श्रुत-</u> शब्द से समझाना अक्षर श्रुत है । जैसे' किसी को आवाज देकर बुलाना ।

<u>अनक्षर श्रुत-</u> संकेत द्वारा ज्ञान कराना । जैसे- सीटी बजाकर या घण्टा बजाकर बुलाना अनक्षर श्रुत हैं । खाँसना, छीकना आदि संकेत से समझाना अनक्षर श्रुत है ।

तत्वार्थ सूत्र में श्रुत ज्ञान के दो, बारह और अनेक भेद बताए है ।

'श्रुतं मति पूर्वं द्वयेऽनेक द्वादश भेदम् ।

(तत्वार्थ सू. 1/[illegible])

वे सभी अंग, उपांग, आगम, शास्त्र, [illegible] और [illegible] मति ज्ञान एव श्रुत ज्ञान के निमित्त हैं जो [illegible] पोषक है । मति ज्ञान और श्रुत ज्ञान दोनो [illegible]

परोक्ष ज्ञान है इसे साव्यवहारिक प्रत्यक्ष भी कहते है । क्योकि ये दोनों इन्द्रियों एव मन की सहायता से होते हैं ।

3. अवधि ज्ञान-

यह प्रत्यक्ष ज्ञान है । मर्यादित क्षेत्र मे रहे हुए रूपी पदार्थो को इन्द्रियो एवं मन की सहायता के बिना ही जान लेना अवधि ज्ञान है । इस ज्ञान में क्षेत्र और काल की मर्यादा होती है । रूपी पदार्थ का मतलब है- जिसमे वर्ण, गन्ध, रस स्पर्श आदि हो ।

अवधि ज्ञान दो प्रकार का होता है-

(1) भव प्रत्यय और (2) गुण प्रत्यय

भव प्रत्यये- जन्म के साथ होने वाला अवधि ज्ञान भव प्रत्यय कहलाता है । नारक एवं देवो को भव प्रत्यय अवधि ज्ञान होता है ।

गुण प्रत्यय- जो अवधिज्ञान जन्म से तो न हो लेकिन बाद में व्रत नियम आदि अनुष्ठान के बल से होता है उसे गुण प्रत्यय अवधि ज्ञान कहते है । यह ज्ञान अवधि ज्ञानावरण कर्म के क्षपोपशम से मनुष्य एव तिर्यच पचेन्द्रियो को होता है ।

4. मनः पर्यय ज्ञान-

जिस ज्ञान के द्वारा अढाई द्वीप के अन्तर्गत रहे हुए जनमन की पर्यायो को जाना जावे उसे मनः पर्यय ज्ञान कहते है । यह ज्ञान सतत साधनारत, अप्रमत्त, विशिष्ट ऋद्धि सम्पन्न साधुओ को ही होता है । सामान्य व्यक्ति इस ज्ञान का अधिकारी नही है । यह प्रत्यक्ष ज्ञान है । इस ज्ञान के द्वारा सज्ञी पचेन्द्रिय जीवो के मन मे सोचे हुए भावो को प्रकट किया जा सकता है । इसके भी दो भेद है ।

(1) ऋजुमति- विषय को कुछ अस्पष्ट रूप से जानने वाला ।

(2) विपुलमति- विषय को स्पष्ट रूप से जानने वाला ।

जैसे दूरस्थ क्षेत्र में रहा हुआ कोई व्यक्ति घडा खरीदने का मन मे विचार करता है । ऋजुमति इन्द्रियाँ एवं मन की सहायता के बिना ही इस पर्याय को जान लेगा कि विवक्षित व्यक्ति घडा खरीदने का विचार कर रहा है पर यह नहीं जान पायेगा कि घडा पीतल का खरीदना चाहता है या मिट्टी का। किन्तु विपुलमति यह भी जान लेगा कि वह व्यक्ति पीतल का घडा खरीदना चाहता है, मिट्टी का नही । उक्त दोनो ज्ञानों में इस प्रकार का अन्तर होता है ।

5. केवल ज्ञान-

केवल ज्ञान तो सम्पूर्ण ज्ञान है । इसकी तुलना अन्य किसी ज्ञान से नहीं की जा सकती । जिस ज्ञान के द्वारा समस्त द्रव्यो की समस्त पर्यायो को सदैव जाना जावे उसे केवलज्ञान कहते है । यह ज्ञान क्षायिक है अर्थात् एक बार प्राप्त होने पर कभी नष्ट नहीं होता है ? ज्ञानावरण कर्म के सर्वथा नष्ट होने पर यह ज्ञान प्राप्त होता है और आत्मा के साथ सदैव बना रहता है । अरिहतो एवं सिद्धो मे ही यह ज्ञान पाया जाता है । केवलज्ञान के द्वारा त्रिकाल, भूत, वर्तमान एवं भविष्य को सम्पूर्ण रूप से जाना जाता है । केवलज्ञानी से कोई भी बात छिपी नही होती है । यह अवस्था ज्ञान की पराकाष्ठा है ।

आत्मा में अनन्त ज्ञान की सत्ता है-

अत्यन्त संक्षेप मे पॉचो ज्ञान का स्वरूप प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है । ज्ञान तो आत्मा का निज गुण है लेकिन ज्ञानवरण कर्म के उदय से आत्मा मे रहा हुआ अनन्त ज्ञान दब जाता है । जिस प्रकार बादल सूर्य के प्रकाश को ढक देते है, उसी प्रकार ज्ञानवरण कर्म आत्मा मे रही हुई अनन्त ज्ञान शक्तिको आवृत्त कर देता है । आत्मा मे अनन्त ज्ञान की सत्ता विद्यमान है, परमात्म शक्ति विद्यमान है !

आत्मा स्वयं के पुरुषार्थ द्वारा कर्म पुद्गलो को नष्ट कर अपने शुद्ध निर्मल स्वरूप को प्रकट कर सकता है । प्रत्येक भव्य आत्मा में केवलज्ञान की सत्ता रही हुई है । आवश्यकता है उसे प्रकट करने की, जागृत करने की, आवरण को दूर करने की । आत्मा है तो ज्ञानानन्द स्वभाव वाली, लेकिन वह अपने स्वरूप को भूल चुकी है, पुद्गलों के चक्कर मे पुद्गलानन्दी बन रही है । विद्वान कवि ने भी कहा है-

मैं ज्ञानानन्द स्वभावी हूँ ।
मैं हूँ अपने में स्वयं पूर्ण, पर की मुझ में कुछ गंध नहीं ।
मैं अरस अरूपी अस्पर्शी, पर से कुछ भी सम्बन्ध नहीं ॥

जैन साहित्य ज्ञान का अतुल भण्डार है । लेकिन आज समाज इससे बेखबर होता जा रहा है । आज के इस भौतिक युग में व्यावहारिक ज्ञान-बाह्य ज्ञान की तो बहुत अभिवृद्धि हुई है परन्तु आध्यात्मिक ज्ञान का ह्रास हो रहा है। आज मानव का लक्ष्य धन कमाने का रह गया है, इसलिए आध्यात्मिक ज्ञान से दूर होता जा रहा है ।

ज्ञान के लिए स्वाध्याय आवश्यक-

आज स्वाध्याय की प्रवृत्ति बहुत कम हो गई है । दिगम्बर जैन समाज मे तो फिर भी स्वाध्याय की ओर लक्ष्य है, परन्तु श्वेताम्बर समाज मे इस प्रवृत्ति के प्रति विशेष उदासीनता है । वे सोचते है कि स्वाध्याय का कार्य तो सन्त, मुनिराजो का है । श्वेताम्बर मूर्तिपूजक मूर्ति पूजा कर अपने कर्तव्य की इतिश्री समझ लेते है, तो स्थानकवासी सामायिक की पौशाक धारण करके सन्तोष कर लेते हैं । स्वाध्याय की प्रवृत्ति बहुत कम है जो उचित नही है । होना यह चाहिये कि स्वाध्याय को जीवन का अग बनाया जाये, इस ओर विशेष ध्यान दिया जावे । सामायिक मे भी नियमित आवश्यक रूप से स्वाध्याय होना चाहिये । सामायिक करने वाले अधिकाश भाई-बहन माला, भजन, अनानुपूर्वी या इधर-उधर की चर्चा मे

एक बार किसी नगर में सन्तों का पदार्पण हुआ। इस नगर में कई जैन परिवार रहते थे तथा सन्तों का आवागमन होते रहने से व्याख्यान का कार्यक्रम होता रहता था। कई व्यक्ति नियमित सामायिक किया करते थे। सन्त जिज्ञासु थे- स्वाध्यायप्रेमी थे। व्याख्यान चल रहा था। व्याख्याता संत ने नगर के एक प्रमुख जैन भाई से व्याख्यान के मध्य पूछा-

'जीवों के भेद तो जानते ही होंगे, बताओ पंचेन्द्रिय जीव कौन-कौनसे होते हैं ?'

भाई ने उत्तर दिया- 'महाराज ! हमने बड़े-बड़े सन्तों के व्याख्यान सुने हैं। क्या मैं इतना भी नहीं जानता ? हाथी पंचेन्द्रिय जीव होता है।'

मुनिराज ने सोचा उत्तर तो ठीक है परन्तु विचार आया कि इन्होंने केवल हाथी को ही पंचेन्द्रिय क्यों कहा। अतः पुनः पूछा-

'हाथी पंचेन्द्रिय कैसे है ?'

'हाथी के चार पैर होते हैं और एक लम्बी सूंड होती है, इसलिए वह पंचेन्द्रिय है।'

मुनिराज समझ गये कि भाई जीव के भेद नहीं [illegible] अतः पुनः प्रश्न किया-

'श्रावकजी ! चतुरिन्द्रिय जीव का नाम बताओ ?

'वावजी ! भैंस चतुरिन्द्रिय है ।'

'कैसे ?'

'भैस के चार पैर होते है अतः चतुरिन्द्रि है ।

'तेइन्द्रिय प्राणी का भी नाम बता दो ?'

'अब तो भाई चक्कर में पड गये । थोडा सोचा और उन्हे अपनी लंगडी गाय याद आ गई । तत्काल उत्तर दिया- महाराज ! मेरे एक लंगडी गाय है जिसका एक पैर कट गया अतः वह तेइन्द्रिय है ।'

'और द्विन्द्रिय जीव बताओ भाई ?'

'मै और मेरी पत्नी दोनो ।'

'अच्छा ! तो अब एकेन्द्रिय भी बता दो ?'

'बस महाराज ! आप अकेले है अतः आप एकेन्द्रिय है ।'

यह सुनकर तो सभी सन्तों को भी हॅसी आने लगी । मुनिराज ने कहा- वाह भाई ! आपने तो मुझे स्थावर जीव बना दिया-एक इन्द्रिय वाला प्राणी कह दिया । सभाजन भी जोर-जोर से हॅस पडे ।

यह स्थिति है हमारे श्रावको के ज्ञान की । स्वाध्याय के अभाव मे एकेन्द्रिय, द्विन्द्रिय आदि की भी जानकारी नही है । किसी कवि ने ठीक ही कहा है-

ज्ञान बिन कभी नहीं तिरना, करो तुम अच्छी तरह तिरना ।

ज्ञान-दया का मूल रूल, यह फरमाया वीतराग ।
ज्ञान बिना सोहे नहीं, ज्यूँ हंस-सभा में काग ॥१॥

गृहस्थ धर्म और मुनि धर्म, ये दोनों ज्ञान आधार ।
ज्ञान बिना संसार का सरे, चले नहीं व्यवहार ॥२॥

स्वाध्याय का संकल्प करें-

आज के इस पवित्र पावन दिवस पर हम सब यह दृढ सकल्प करे कि नियमित ज्ञानाराधना करेंगे, स्वाध्याय करेगे। वर्तमान युग में साहित्य प्रकाशन का कार्य बहुत हो रहा है, लेकिन कितना उपयोगी एव सार्थक है, यह विचारणीय है । आज युवकों में अश्लील एव जासूसी साहित्य पढने की प्रवृत्ति बढती जा रही है । जो हानिकारक एव विकृत्ति को पैदा करने वाली है । ऐसे साहित्य से लाभ के स्थान पर हानि है एवं विकार भावना में वृद्धि होती है । इस प्रवृत्ति पर रोक लगाना आवश्यक है । युवकों को सद्साहित्य पढना चाहिये । आज सद्साहित्य का अभाव नहीं है । युग दृष्टा, महान क्रान्तिकारी सन्त पूज्य जवाहराचार्य का साहित्य जो जवाहर किरणावली के नाम से प्रसिद्ध है, वह अत्यन्त उपयोगी, शास्त्रानुकूल, रोचक एवं सरल भाषा में है । इसी प्रकार कुछ अन्य सन्त-सतियों का साहित्य भी अच्छा एवं उपयोगी हो सकता है । युवकों को ऐसा साहित्य पढना चाहिये जिससे दोहरा लाभ होगा ।

अन्त मे यही कहना है कि सम्यग्ज्ञान के अभाव में जीवन निःस्सार है । पर्यूषण पर्व के पावन अवसर पर ज्ञान के महत्त्व को समझकर उसे जीवन का अग बनावेगे तभी मानव भव सफल बन सकेगा । भक्त भी भगवान से यही प्रार्थना करता है कि हे प्रभु ! आप मुझ पर कृपा करे, मेरे मन की चिन्ता मिटावे और मेरे पापो को नष्ट करे । यह तभी सम्भव है जब हम स्व-पर के भेद को जानकर सम्यग्ज्ञान की आराधना करेगे ।

मन एव मनुष्याणां, कारणं बन्धमोक्षयो ।
बन्धाय विषयासक्तं, मुक्त्यै निर्विषयं स्मृतम् ॥

भावार्थ- मन ही मनुष्य के बन्ध एव मोक्ष का कारण है, विषयासक्त मन बन्धन का कारण बनता है तथा निर्विषय मन मुक्ति का प्रदाता है ।

(ब्रह्मविन्दु उप)

सम्यग् दर्शन एक विवेचन

यथार्थ रूप से पदार्थों को निश्चय करने की रुचि सम्यग् दर्शन है । सम्यग् दर्शन का अर्थ है यथार्थ दृष्टि, सम्यक् श्रद्धा, सत्य निष्ठ, तत्व विषयक, सम्यक् श्रद्धान, पदार्थों को यथार्थ रूप से जानने की अभिरुचि । सम्यग् दर्शन मोक्ष का प्रथम सोपान है, मोक्ष रूपी भव्य प्रासाद की नींव है ।

सम्यग् दर्शन के अभाव में ज्ञान सम्यक् नहीं हो सकता, चारित्र सम्यक् नहीं हो सकता। तात्पर्य यह है कि शुद्ध श्रद्धा के अभाव में, सम्यग् दर्शन के अभाव में, ज्ञान अज्ञान रूप है, सम्पूर्ण धर्म क्रियाएँ व्यर्थ हैं, सारहीन हैं ।

हे वीतराग भगवन्, यह प्रार्थना हमारी,
हम निज स्वरूप पाएँ, पाएँ दशा तुम्हारी ।
फिरते अनादि से हम, मिथ्यात्ववश जगत में,
स्थिर आत्मवृत्ति धारे, तज वृत्तियाँ विकारी ॥ हे वीतराग.
तन, मन, वचन क्रियाएँ, अपवित्र पुद्गलों की,
इनका ममत्व छोड़ें, बनकर समत्वधारी ॥ हे वीतराग...
सब वृत्तियों से ऊपर, निवृत्ति धाम अपना,
हम 'सूर्यचन्द्र' उसमें, बन जाएँ फिर विहारी ॥ हे वीतराग.

यह वीतराग प्रभु की प्रार्थना है । साधक वीतराग प्रभु से भौतिक सुखो की कामना नहीं करता, धन-दौलत नहीं माँगता, बाह्य जगत की वस्तुओ की इच्छा नहीं करता, तो फिर क्या चाहता है ? साधक चाहता है- शाश्वत सुख, आध्यात्मिक वैभव, परमानन्द पद, जिसके बाद कभी कोई भी कामना शेष न रहे, इच्छा न रहे, माँग न करनी पडे । जिन वीतराग प्रभु ने धन-दौलत और सासारिक सुख को तुच्छ समझकर, हेय समझकर त्याग दिया है, उनसे भौतिक पदार्थो की मांग करना क्या उचित होगा ? कदापि नहीं । फिर, सांसारिक सुख तो क्षणिक हैं, नाशवान है, सुखाभास है । इसलिए उन सुखो की मांग का कहीं अन्त नही है । एक मांग की पूर्त्ति होने पर दूसरी मांग तैयार हो जाती है । आशा और तृष्णा का कहीं अन्त नही है । शास्त्रो मे कहा है-

इच्छा हु आगास समा अणंतिया

अर्थात् इच्छाएँ आकाश के समान अनन्त है । इसलिए साधक वीतराग प्रभु से ऐसी मांग करता है कि जिसके बाद माग करने की कभी आवश्यकता ही नहीं रहती । जीव का निज स्वरूप सिद्धावस्था है और इसी की कामना साधक करता है । पारस लोहे को सोना बना सकता है परन्तु वह पारस नही वना सकता । वीतराग प्रभु की यह विशेषता है कि वे साधक को भी अपने स्वयं के

समान बना देते है या यों कहें कि वीतराग की आराधना करने वाला भी वीतराग बन जाता है ।

यदि कोई वीतराग प्रभु से धन-दौलत, सांसारिक वैभव, समृद्धि की इच्छा करे तो यह असंगत होगा । जो वीतराग प्रभु इन वस्तुओं को छोडने का उपदेश देते है, उन्हीं से भौतिक पदार्थ मांगना उनका अपमान करने के समान है। ये भौतिक सुख तो सामान्य सांसारिक व्यक्ति भी प्रदान कर सकते है । फिर वीतराग प्रभु से ऐसी मांग करना अज्ञानता है । दाता के अनुसार ही याचना करना उचित है । इसीलिए वीतराग प्रभु से तो वीतरागता की ही याचना करनी चाहिये । वीतराग प्रभु अपनी वीतरागता मे तल्लीन रहते हैं । स्तुति करने वाले पर खुश और निंदा करने वाले पर नाराज नही होते । किसी के द्वारा याचना करने पर भी वे किसी को कुछ देते नही है । यहॉ यह जिज्ञासा होना स्वाभाविक है कि जब वीतराग प्रभु किसी को कुछ देते नही तो उनसे याचना क्यो की जाये ? तर्क की दृष्टि से तर्क युक्ति संगत है, पर जहॉ श्रद्धा की प्रगाढता होती है वहॉ समर्पण भावना का प्राबल्य रहता है । उसी समर्पण भावना से व्यक्ति अपनी भावना प्रस्तुत करता है तथा वीतरागता प्राप्त करने हेतु वीतराग प्रभु का आदर्श अपने समक्ष रखता है, क्योंकि साधना के अनुरूप यदि आदर्श समक्ष नही होता है तो साधना समीचीन नही हो सकती । अतः वीतरागता प्राप्त करने की इच्छा से ही कवि ने वीतराग प्रभु के चरणो मे अपनी भावना समर्पित की है ।

सम्यग् दर्शन का अर्थ-

आज पर्वाराधना का तीसरा दिन है । आज हमे सम्यग् दर्शन के बारे मे चिन्तन करना है । सम्यग् ज्ञान और सम्यग् दर्शन सहचारी है । एक के अभाव मे दूसरा सम्भव नही है । सम्यग् दर्शन का सक्षिप्त अर्थ है- तत्वो पर यथार्थ श्रद्धा । तत्वार्थ सूत्र के प्रथम अध्याय में आचार्य उमास्वाति ने कहा है-

'तत्वार्थ श्रद्धानं सम्यग्दर्शनम्'

अर्थात् पदार्थो पर यथार्थ दृष्टि, सच्ची श्रद्धा करना सम्यग् दर्शन है । सम्यग् दर्शन का अर्थ है- यथार्थ दृष्टि, सच्ची श्रद्धा, सत्य निष्ठा, तत्व विषयक सम्यग् श्रद्धान्, पदार्थो को यथार्थ रूप मे जानने की अभिरूचि । सम्यग् दर्शन के अभाव मे ज्ञान, सम्यग् ज्ञान नही हो सकता । सम्यक्त्व की उत्पत्ति होते ही ज्ञान, सम्यग् ज्ञान हो जाता है । सम्यग् दर्शन के अभाव में ज्ञान भी अज्ञान रूप है, फिर चारित्र की तो बात ही कहाँ है ? सम्यग् दर्शन न हो तो ज्ञान और चारित्र आत्मा के प्रयोजन को सिद्ध नही कर सकते, भव भ्रमण का अन्त नही कर सकते ।

मुक्ति का प्रथम सोपान-सम्यग् दर्शन-

मोक्ष रूपी भव्य प्रासाद की नीव सम्यग् दर्शन है । जिस भवन की नींव दृढ नही है वह भवन टिक नहीं सकता। इसलिए नींव का दृढ होना आवश्यक है । सम्यग् दर्शन मोक्ष मार्ग का प्रथम सौपान है । जब तक आत्मा को सम्यक्त्व की प्राप्ति नही होती तब तक समस्त आचरण, समस्त क्रियाकाण्ड, समस्त अनुष्ठान अनुपयोगी है, अकाम निर्जरा के कारण है । यथा-

नादंसणिस्स नाणं, नाणेण विना न हुंति चरण गुणा ।
अगुणिस्स नत्थि मोक्खो, नत्थि अमोक्खस्स निव्वाणं ॥

अर्थात् सम्यग् दर्शन के अभाव मे सम्यग् ज्ञान की प्राप्ति नही होती और सम्यग् ज्ञान के बिना चारित्र की प्राप्ति नही होती । चारित्र के बिना मोक्ष सम्भव नहीं और जब तक मुक्ति नही मिलती तब तक निर्वाण नही होता, दुःखों से छुटकारा नही होता ।

सम्यग् दर्शन बनाम मोक्षमार्ग

मोक्षमार्ग के तीन साधन है जिन्हे रत्न?य के नाम से जाना जाता है- 1 यम्यग् दर्शन, 2 सम्यग् ज्ञान, 3 सम्यग्

तत्त्वार्थ सूत्र का प्रारम्भ ही इसी सूत्र से हुआ है-

'सम्यग् दर्शन ज्ञान चारित्राणि मोक्षमार्ग:'

अर्थात् सम्यग् दर्शन, सम्यग् ज्ञान और सम्यग् चारित्र मोक्ष के साधन हैं । इनमें से किसी एक के भी अभाव मे मुक्ति सम्भव नही है । लेकिन सम्यग् दर्शन प्रथम सीढी है, प्रथम सोपान है, प्रथम साधन है । मोक्ष मार्ग ही क्यो, संसार मार्ग मे भी श्रद्धा के बिना कार्य नही चल सकता । रोगी; वैद्य, हकीम और डॉक्टर पर विश्वास करके ही रोग मुक्त हो सकता है, शिष्य गुरु पर श्रद्धा करके ही विद्या ग्रहण कर सकता है, यात्री चालक पर विश्वास करके ही गन्तव्य स्थान पर पहुँच सकता हे । बिना विश्वास के ससार का कार्य गतिशील नही हो सकता । परिवार मे एक दूसरे पर विश्वास किया जाता है, व्यवसाय मे व्यापारी परस्पर विश्वास रखते है और यदि विश्वास न हो तो चहुँ ओर अशान्ति का वातावरण बन जाता है । इसलिए श्रद्धा जीवन निर्माण का मूल मन्त्र है। व्यक्ति कितना ही विद्वान हो, पण्डित हो, विभिन्न भाषाओ का ज्ञात हो, अनेक कलाओ मे निपुण हो, पर यदि उसमें आत्मा परमात्मा पर श्रद्धा नहीं, तत्वो के प्रति सम्यक् श्रद्धान नहीं तो ससार सागर से पार होना कठिन हो जाता है । किसी कवि ने कहा है-

इक समकित पाए विना, जप तप क्रिया फोक ।
जैसे शव सिनगारना, समझो कहे तिलोक ।

नि:सन्देह सम्यग्दर्शन एक अपूर्व और अलौकिक ज्योति है जिसके प्रकट होने से आत्मा पर छाया हुआ अनादिकालीन अन्धकार नष्ट हो जाता है और आत्मा को अपूर्व आनन्द का अनुभव होता है । किसी जन्मान्ध व्यक्ति को नेत्र प्राप्त हो जाने पर जो आनन्द का अनुभव होता है, उससे भी अधिक आनन्द आत्मा को सम्यक्त्व प्राप्ति पर होता है । सम्यक्त्व आत्मा मे समता रस का सचार करता है, राग-द्वेष के सताप को नष्ट करता है । आचाराग सूत्र मे कहा है-

सम्मत्तदंशी न करेइ पावं ।

अर्थात् सम्यग्दर्शी पाप नहीं करता । गुणस्थान क्रम में चतुर्थ गुणस्थान से चतुर्दश गुणस्थान तक के जीव सम्यग् दृष्टि माने जाते हैं और नवीन पाप नही करते । चौथे गुण स्थान को स्पर्श करते ही जीव अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया एवं लोभ करना बन्द कर देता है । जिससे प्रगाढ पाप कर्म का बन्धन रूक जाता है एवं चरम गुणस्थान में जब दृष्टि विकास के साथ सम्पूर्णतया सम्यग्दृष्टि अवस्था बन जाती है तब शुभ अथवा अशुभ कर्म का बन्ध भी पूर्णतया रूक जाता है ? सम्यग् दर्शन के प्रभाव से जीवन बदल जाता है । दृढ सम्यक्त्वी जीव संसार मे रहते हुए भी जल कमलवत रहता है । भरत चक्रवर्ती छः खण्ड का शासन चलाते थे । फिर भी अपने आपको उससे भिन्न समझते थे । मिथ्यात्वी और सम्यक्त्वी का प्रमुख अन्तर यही है कि मिथ्यात्वी का मन संसार में रचा-पचा रहता है और सम्यक्त्वी ससार से अनासक्त रहता है । आचार्य हरिभद्र ने तो स्पष्ट कहा है कि- 'सम्यग्दर्शी का शरीर संसार मे रहता है और मन मोक्ष मे ।'

समझू शंक पाप से, अण समझू हर्षन्त ।
वे लूखा, ये चिकणा, इण विध कर्म बन्धत ॥

सम्यग् दृष्टि जीव का लक्ष्य ससार नही मोक्ष होता है। जिस प्रकार पतिव्रता नारी अपने पति को विस्मृत नही करती, माँ बच्चे को नही भूलती, पनिहारिन मस्तक पर दो कलश रखे हुए बात करती है और हँसती हुई चलती है फिर भी कलश को नही भूलती, उसी प्रकार सम्यग्दृष्टि संसार में रहकर भी मोक्षमार्ग को, आत्म-साधना के पवित्र पथ को नही भूलता है ।

सम्यग्दर्शन का स्वरूप-

सम्यग्दर्शन का अर्थ है-शुद्ध श्रद्धा । लेकिन श्रद्धा किस पर हो ? यह भी विचारणीय है । आवश्यक सूत्र मे कहा है-

अरिहंतो महदेवो, जावज्जीवाए सुसाहुणो गुरुणो ।
जिण पण्णत्तं तत्तं, इअ सम्मत्तं मए गहियं ॥

वीतराग प्रभु, सर्वज्ञ अरिहंत परमात्मा ही मेरे देव है, पच महाव्रतधारी, शास्त्रोक्त गुणो से युक्त सुसाधु मेरे गुरु है तथा अरिहत प्रभु द्वारा प्रणीत तत्व ही मेरा धर्म है, साधक इस प्रकार का श्रद्धान जीवन पर्यन्त के लिए ग्रहण करता है। कई बार साधक के जीवन मे परीक्षा के तौर पर उपसर्ग भी आते हैं जैसे- अरहणक श्रावक की परीक्षा करने के लिए आए हुए देव ने उसके जहाज को समुद्र से अपनी अंगुलियो पर आकाश में उठा लिया तथा उसे धर्म को झूठा कहने के लिए बाध्य किया । जहाज मे रहे हुए सभी यात्री भयभीत हो गये। मृत्यु उनके सामने नाचने लगी । उन्होने भी अरहणक को देव की बात मानने के लिए बहुत द़बाव डाला । देव ने जहाज को समुद्र में डूबो देने का भय दिखाया । लेकिन अरहणक श्रद्धा का दीवाना जो था । उसने धर्म को झूॅठा स्वीकार करने से स्पष्ट इन्कार कर दिया । अरहणक ने कहा- 'मेरा धर्म सच्चा है, सच्चा है और त्रिकाल में सच्चा है ।'

'दंसण मूलो धम्मो'

अर्थात् धर्म का मूल सम्यग्दर्शन है । अम्बड सन्यासी ने श्राविका सुलसा की परीक्षा की । वैक्रिय लब्धि से ब्रह्मा, विष्णु, महेश के स्वरूप को बनाया यहॉ तक कि पच्चीसवे तीर्थकर का मिथ्यारूप बनाकर सुलसा को छलना चाहा । परन्तु वह भगवान् महावीर की दृढ श्राविका थी, उसने वीतराग धर्म से विपरीत किसी भी बात को स्वीकार नही किया । अन्त मे विजय सम्यक्त्व की हुई । अम्बड सन्यासी ने भी खुलसा की दृढता की प्रशंसा की ।

देव हमारे श्री अरिहंत-

सम्यग्दृष्टि अच्छी तरह जानता है, मानता है और समझता **है कि वास्तव में** देव वही है जो वीतराग हो, अठारह पापो से रहित

हो, सर्वज्ञ हो, सर्वदर्शी हो । अरिहत और सिद्ध परमात्मा ही उक्त गुणों से सम्पन्न होते है, इसलिए देव पद के लिए वे ही वन्दनीय, पूजनीय है । इनके अतिरिक्त भक्तो पर प्रसन्न एवं दुश्मनो पर नाराज होने वाले रागी-द्वेषी, पूजा और प्रतिष्ठा के भूखे देव कुदेव है । किसी कवि ने कहा है-

कुदेव के पास जावे, हाथ जोड़ आरडियां खावे ।
रगड़ रगड़ नाक, सारो दिन सेवता ॥
धूप लाओ दीप लाओ, नारेल ने वैद्य लाओ,
पूजा लाओ, भेंट लाओ, लाओ लाओ केवता ॥
तूँ तो जावे देव पास, देव करे थारी आस ।
मन में विचार कर, लेवता के देवता ॥

इस प्रकार कामी क्रोधी, मायावी, लोभी, राग-द्वेष से युक्त देव निर्दोष देव नही हो सकते । इसलिए सम्यग्दृष्टि के वन्दनीय देव तो सर्वदोष विवर्जित अरिहंतदेव एव सिद्ध परमात्मा ही होते है ।

गुरु हमारे श्री निर्ग्रन्थ-

देव के बाद दूसरा पद है गुरु का । गुरु का पद भी बहुत महत्वपूर्ण है । कहा भी है-

यह तन विष की बेलडी, गुरु अमृत की खान ।
शीश दिया भी गुरु मिले, तो भी सस्ता जान ॥

गुरु का स्थान बहुत उच्च है । गुरु ज्ञान रूपी प्रकाश को प्रदान करने वाला होता है । 'गु' अर्थात् अन्धकार और 'रु' अर्थात् रोकना । जो अज्ञान रूपी अन्धकार को दूर कर जीवन मे ज्ञान-प्रकाश आलोकित करे वह गुरु है । गुरु के महत्व को बताते हुए यहाँ तक कहा गया है-

गुरु गोविन्द दोनों खड़े, काके लागूँ पाय ।
बलिहारी गुरुदेव की, गोविन्द दियो बताय ॥

प्रभु का ज्ञान कराने वाले भी गुरु ही होते है । इसलिए किसी अपेक्षा से गुरु का स्थान प्रभु से भी उच्च होता है । आज भरत क्षेत्र में अरिहंत परमात्मा नही विराजते हैं, लेकिन हमारे गुरु हमें अरिहंत के स्वरूप का ज्ञान कराते हैं ।

गुरु का पद तो बहुत उच्च है पर कैसे गुरु का ? क्या संसार में परिभ्रमण कराने वाले का, संसार मार्ग का उपदेश देने वाले का ? नही । ऐसा व्यक्ति गुरु पद के योग्य नही होता । किन्तु सच्चे गुरु वे हैं जो पॉच महाव्रत पालते है, आठ प्रवचनमाता की शुद्ध आराधना करते हैं, वीतराग भगवान के मार्ग पर स्वय चलते है तथा दूसरों को चलने का उपदेश देते हैं, राग-द्वेष की ग्रन्थि को छेदन करने का प्रयत्न करते है । संयम मार्ग का अनुसरण करते है । उक्त गुणों से रहित लोभी-लालची कनक-कान्ता एव दुर्व्यसनो का सेवन कर्ता संसार सागर से तिरा नही सकता । यथा-

लोभी गुरु तारे नहीं, तीरे सो तारणहार ।
जो तुँ तिरणो चाहे तो, निर्लोभी गुरु धार ॥

अग्रेजी मे कहावत है- Every thing that glitters. is not gold. 'चमकने वाली प्रत्येक वस्तु सोना नहीं होती ।'

साधु नाम धराने वाले सभी गुरु नहीं हो सकते । कहा है-

पानी पीना छानकर, गुरु करना जान कर ।

गुरु के अभाव मे ज्ञान नही होता ।

गुरु दीपक गुरु चांदणो, गुरु विन घोर अन्धार ।
पलक न विसरूँ तुम भणि, गुरु मुझ प्राण आधार ॥

इसलिए सम्यग्दृष्टि नामधारी या वेषधारी साधुओ को गुरु नही मानता । वह तो गुरु के गुणों से सम्पन्न व्यक्ति को ही गुरु मानता है । अन्यथा गुरु और शिष्य दोनो की दुर्गति होती है, कहा भी है-

गुरु लोभी चेला लालची, दोनों खेले दांव ।
दोनों डूबे बापड़ा, बैठ पत्थर की नाव ॥

केवली प्ररूपित धर्म-

धर्म के बारे में यहॉ इतना ही कहना है कि अरिहत परमात्मा, वीतराग प्रभु द्वारा बताया गया, अहिंसा व दयामय धर्म ही सच्चा धर्म है । धर्म के वास्तविक स्वरूप को समझकर सच्चे धर्म को ही जीवन में अपनाना चाहिये । सम्यग् दृष्टि जीव उसी धर्म को स्वीकार करता है जिसे केवली भगवान् ने प्ररूपित किया है, क्योंकि ऐसा ही धर्म पूर्ण एवं निर्दोष हो सकता है । सम्यग् दृष्टि को अरिहंतों की वाणी पर अटूट श्रद्धा होती है । आचारांग सूत्र मे कहा है-

'तमेव सच्चं निस्सकं जं जिणेहिं पवेइयं ।'

अर्थात् जिनेन्द्र भगवन ने जो बताया है वही सत्य है, शंका रहित है । आज श्रद्धा की स्थिति बडी विचित्र है । कई लोगो को वीतराग वाणी पर दृढ नहीं होती, क्योकि कुछ तत्व उनकी बुद्धि की पहुॅच के बाहर होते हैं । परन्तु ऐसे विषयो मे उन्हे ऐसा सोचना चाहिये कि वास्तव मे सत्य तो वही है जो केवली प्रभु ने बताया है । लेकिन हमारी अल्प बुद्धि उसे ग्रहण नही कर पाती । वीतराग वाणी मे शका करना उचित नही है । किसी अंग्रेज विद्वान ने कहा है-

Doubt is hell in the human soul.
मानव की आत्मा में शंका नरक के समान है ।

श्रद्धा संजीवनी और शंका हलाहल विष-

किसी सेठ ने साधना के द्वारा आकाशगामिनी विद्या की सिद्धि प्राप्त कर ली । इस विद्या के द्वारा वह पक्षियो की तरह आकाश मे उड सकता था तथा रत्न-द्वीप मे जाकर रत्न ला सकता था । कालान्तर में वह व्यक्ति वृद्ध हो गया । उसने विचार किया कि

वह कभी भी मृत्यु को प्राप्त हो सकता है, इसलिए आकाश गामिनी विद्या को अपने प्रिय, इकलौते पुत्र को सिखा देना ठीक होगा। ऐसा सोचकर उसने अपने पुत्र को बुलाकर कहा- 'प्रिय पुत्र ! अब मैं वृद्ध हो गया हूँ और कभी भी काल का मेहमान बन सकता हूँ। मै आकाशगामिनी विद्या जानता हूँ। मैं यह चाहता हूँ कि यह विद्या तुम्हे बता दूँ ताकि कभी संकट के समय तुम्हारे काम आवे। तुम इस विद्या के द्वारा स्वतन्त्र रूप से आकाश मे उड सकोगे तथा रत्नद्वीप से रत्न भी प्राप्त कर सकोगे।' पुत्र अत्यन्त प्रसन्न हुआ। पिता ने पुत्र को विद्या का अच्छी तरह ज्ञान करा दिया। पिता ने बताया कि अमावस्या की अंधियारी रात्रि को मध्य रात्रि मे किसी दूर जगल में जाना। वहाँ पर किसी विशाल वृक्ष के नीचे बडी चूल (चूल्हा) तैयार करना। चूल पर कडाव रखना और कडाव मे तेल भरना। इस कडाव के ठीक ऊपर वाली डाली पर सूत के कच्चे धागे को एक आसन तैयार करना। कडाव के तेल को खूब गर्म करना। मन्त्रो का उच्चारण समाप्त होने पर धागे के आसन पर बैठ जाना। बस, फिर आकाश गामिनी विद्या की सिद्धि हो जावेगी। पिता कुछ काल बाद मृत्यु को प्राप्त हो गया। कुछ दिनो बाद सेठ पुत्र ने आकाशगामिनी विद्या की सिद्धि का विचार किया। पिता के बताए अनुसार सारा सामान गाडी मे भरकर जगल मे ले गया और विधिवत सम्पूर्ण तैयारी की।

मन्त्रो का उच्चारण पूर्ण हुआ। सेठ पुत्र पेड की डाल पर बैठा था। नीचे कडाव मे तेल उबल रहा था और धागो के सीके पर बैठने का अवसर आ गया था। सेठ पुत्र ने सीके पर बैठने का विचार किया और उसकी दृष्टि नीचे कडाव पर गिरी, विचार आया कही मन्त्र असफल हो गये और मै कडाव मे गिर गया तो यही काल को प्राप्त हो जाऊँगा, आकाश मे उडने के बजाय तेल मे भुन जाऊँगा। इस प्रकार उसे सन्देह उत्पन्न हुआ और वह रूक गया। पुन. विचार किया मन्त्र विद्या मेरे पिताजी ने बताई है, मै उनका प्रिय एवं इकलौता पुत्र हूँ, वे मुझे गलत विद्या नही बता सकते। वे

मेरा हित चाहने वाले थे, मृत्यु नही । ऐसा विचार कर सेठ पुत्र ने एक पैर उपर उठाया और सीके मे बैठने का विचार किया । लेकिन तेल के कडाव में गिर जाने के भय से फिर कदम पीछे हटा लिया । सेठ पुत्र ने यह क्रिया दो-चार बार की, लेकिन सीके मे बैठने का साहस नहीं हुआ ।

संयोग से उसी रात्रि को किसी चोर ने उसी नगर के राज भण्डार मे चोरी की और रत्नो के दो-चार डिब्बे चुरा लिये । लेकिन महलो से निकलते समय सिपाहियो ने चोर को देख लिया और उसका पीछा किया, चोर भागता हुआ उसी जंगल में पहुँचा । वह उसी रास्ते से भाग रहा था जहाँ यह सेठ पुत्र विद्या की सिद्धि कर रहा था । भागते हुए चोर ने सेठ पुत्र को देखा और उससे पूछा कि वह यहाँ क्या कर रहा है ? सेठ पुत्र ने सक्षेप मे सारा हाल सुना दिया तथा यह भी कहला दिया कि उसका साहस सीके में बैठने का नही हो रहा है । चोर ने रत्नो के डिब्बे नीचे पेड के पास ही रख दिये और जल्दी से ऊपर चढ गया । सेठ पुत्र से कहा कि क्या मन्त्रो का उच्चारण एवं विधि ठीक तरह पूर्ण हो गई है? सेठ पुत्र ने बताया कि सारा कार्य विधिवत पूर्ण हो गया है, केवल सीके मे बैठना शेष है ।

चोर ने विचार किया कि इस सेठ पुत्र का पिता बहुत प्रमाणिक व्यक्ति था तथा पिता कभी अपने पुत्र का अहित नहीं चाहता, इसलिए विद्या में कोई सन्देह नही है । साथ ही उसने सोचा कि राजकीय सिपाही उसका पीछा कर रहे है सो पकड लेगे तो मृत्यु दण्ड प्राप्त हो सकता है । फिर क्यो नही इस विद्या की परीक्षा की जावे । चोर श्रद्धा पूर्वक उस सीके मे बैठ गया । चोर के बैठते ही सींके के धागे तडातड टूट गये और देखते ही देखते चोर आकाश मे उडने लगा । सेठ पुत्र ताकता रह गया और चोर उसकी निगाह से अदृश्य हो गया । सेठ पुत्र पश्चाताप करने लगा और पेड से नीचे उतरा । पेड के पास उसे रत्नो के डिब्बे मिले जो चोर [illegible] गया था । सेठ पुत्र रत्नो के डिब्बे सहज मे ही प्राप्त कर [illegible]

गया और विचार किया कि बिना विद्या की सिद्धि के ही रत्न मिल गये हैं, फिर क्या चाहिये ?

इधर सिपाही चोर के पद चिन्हो के आधार पर खोजते हुए उसी वृक्ष के नीचे आए और सेठ पुत्र को रत्नों के डिब्बे सहित पाया । चोर समझ कर सेठ पुत्र को पकड लिया गया। सेठ पुत्र गिडगिडाया, कहने लगा- 'मै चोर नही हूँ, चोर तो आकाश मे उडकर चला गया ।' सेठ पुत्र की बात पर किसी ने विश्वास नही किया । उसे राजा के सम्मुख प्रस्तुत किया गया । सेठ पुत्र ने राजा को सारा हाल सुनाया परन्तु उसे चोर घोषित कर दिया, क्योकि चोरी का माल उसी के पास पाया गया था । सेठ पुत्र को कारागृह में डाल दिया गया ।

सेठ पुत्र ने बहुत पश्चाताप किया और विचार किया कि यदि पिता के वचनों पर श्रद्धा करता तो मेरी ऐसी दुर्दशा नही होती ।

इस कथा के माध्यम से विचार करना चाहिये कि अरिहन्त प्रभु ने ससारी प्राणियों पर दया कर उन्हें मोक्ष मार्ग का उपदेश दिया है । जिन भव्य प्राणियो को वीतराग वचनों पर दृढ श्रद्धा है वे तो सवर-निर्जरा के सीके मे बैठकर मोक्ष मार्ग की साधना कर सकते है और जो शका करते है, जिनकी श्रद्धा निर्मल नही है, जिन्हे शुद्ध सम्यक्त्व की प्राप्ति नहीं हुई है, वे चतुर्गति रूप कैद खाने मे यातनाएँ सहन करते है । कवि ने भी कहा है-

सम्यग्ज्ञानी, सम्यग्दर्शी, सम्यग् संयमवान ।
उसी को मिलता है निर्वाण ॥

शास्त्र-शास्त्र में स्थान-स्थान पर बोल गये भगवान ।
उसी को मिलता है निर्वाण ॥

देव वहीं जो अरिहंत हो, गुरु वही जो निर्ग्रन्थ हो ।

धर्म वही जो दयापूर्ण हो, शास्त्र वही जो जिन भाषित हो।
जिस प्राणी की नस-नस में यों, अटल भरी श्रद्धान ।
उसी को मिलता है निर्वाण ॥

सम्यग् दर्शन के भेद-

जैन आगमों में विभिन्न अपेक्षाओ से सम्यग्-दर्शन के विभिन्न भेद किय हैं । मुख्य भेद तीन हैं-

(1) क्षायिक (2) ओपशमिक और (3) क्षायोपशमिक

सास्वादन सम्यक्त्व और वेदक सम्यक्त्व को जोडने पर कुल पॉच भेद हो जाते हैं ।

(1) क्षायिक सम्यग् दर्शन-

यह सम्यग् दर्शन का सर्वोत्तम रूप है । दर्शन मोह की तीन प्रकृत्तियॉ-सम्यक्त्व मोहनीय, मिथ्यात्व मोहनीय, मिश्र मोहनीय एवं अनन्तानुबन्धी चतुष्क-क्रोध, मान, माया एवं लोभ इन सातो प्रकृतियो के सर्वथा नष्ट होने पर क्षायिक सम्यग् दर्शन प्रगट होता है, अत: यह क्षायिक भाव की दृष्टि से पूर्ण विशुद्ध है । एक बार उत्पन्न हो जाने के बाद यह सम्यक्त्व सदा काल स्थायी रहता है, कभी नष्ट नही होता है । यदि पूर्व मे आयुष्य कर्म का बन्ध नही किया हो तो इस सम्यक्त्व का धारक जीव उसी भव में मुक्त हो जाता है। उसमें मिथ्यात्व सर्वथा नष्ट हो जाता है ।

(2) ओपशमिक सम्यग् दर्शन-

सम्यक्त्व मोहनीय, मिथ्यात्व मोहनीय, मिश्र मोहनीय एव अनन्तानुबन्धी चतुष्टक-क्रोध, मान, माया व लोभ इन सातों प्रकृत्तियों के उपशम अर्थात् अनुदय से जीव को ओपशामिक सम्यक्त्व की प्राप्ति होती है । इसमें मिथ्यात्व सर्वथा नष्ट नही होता, परन्तु दब जाता है, जैसे अग्नि की उष्णता राख से दब जाती है ।

(3) क्षापोपशामिक सम्यग्दर्शन-

उपरोक्त वर्णित सात प्रकृतियो मे से कुछ का क्षय और कुछ का उपशम होता है तब जीव को यह सम्यक्त्व प्राप्त होती है । विपाकोदय मे आये हुए मिथ्यात्व के कर्म दलिको को क्षय कर देना एवं विपाकोदय मे नही आये हुए को उपशान्त करना क्षयोपशम कहलाता है ।

इस अवस्था मे सम्यक्त्व मोहनीय का उदय चालू रहता है।

जल के उदाहरण से तीनो अवस्थाओ को समझा जा सकता है । एक प्रकार का जल वह होता है जो पहले मलीन था लेकिन मेल को नष्ट कर निर्मल जल अलग कर लिया हो, जिसमे पुनः मेल उत्पन्न होने की सम्भावना न हो । दूसरे प्रकार का जल वह होता है जो मलिन होता है परन्तु रासायनिक विधि से मेल नीचे जम जाता है और जल स्वच्छ दिखता है, हिलाने पर पुनः मलिन हो सकता है । तीसरे प्रकार का जल वह होता है जो ऊपर से तो स्वच्छ प्रतीत होता है परन्तु मेल साफ दिखाई देता है । इसी प्रकार पहले प्रकार के सम्यक्त्व मे मिथ्यात्व रूपी मेल पूर्ण नष्ट हो जाता है, दूसरे प्रकार मे मिथ्यात्व दब जाता है पर सत्ता मे रहता है तथा तीसरी दशा मे मिथ्यात्व विपाक मे शान्त होता है परन्तु प्रदेश में उदयाधीन रहता है । उपशम सम्यक्त्व मे तो न रसोदय होता है और न प्रदेशोदय, परन्तु क्षयोपशम सम्यक्त्व मे प्रदेशोदय होता है ।

अन्य प्रकार के सम्यक्त्व भी उपरोक्त अवस्थाओ के बीच की अवस्थाएँ है ।

(4) सास्वादन सम्यक्त्व-

उपशम सम्यक्त्व से गिरता हुआ जीव जब तक मिथ्यात्व अवस्था मे नही पहुँचता तब तक के बीच की अवस्था को सास्वादन सम्यक्त्व कहते है । दूसरे गुणस्थान मे यह सम्यक्त्व पाया जाता है और स्थिति उत्कृष्ट छः आवलिका की होती है ।

(5) वेदक सम्यक्त्व-

क्षायिक सम्यक्त्व प्राप्त करने के ठीक पूर्व की अवस्था को वेदक सम्यक्त्व कहते है । क्षायोपशमिक सम्यक्त्व से क्षायिक सम्यक्त्व की ओर अग्रसर होते समय सम्यक्त्व मोहनीय के अन्तिम दलिक का जो वेदन होता है उस एक समय मात्र की स्थिति को वेदक सम्यक्त्व कहते है । विस्तृत जानकारी के लिए अनुयोग द्वार, जिणधम्मो, कर्मग्रन्थ, जैन तत्त्व प्रकाश आदि ग्रन्थ देखे ।

सम्यग्दर्शन के लक्षण-

सम्यग्दर्शन के पॉच लक्षण होते है । वैसे तो तत्व श्रद्धान की अभिरूचि ही सम्यग्दर्शन है लेकिन व्यवहार मे निम्न पॉच लक्षणो से सम्यग्दर्शन की पहचान होती है-

(1) सम या शम-

समभाव धारण करना अर्थात् विषम परिस्थितियो को कर्म परिणाम मानना, निमित्त को निमित्त के रूप मे मानकर स्वयं कृत कर्म को स्वीकार करना ।

अनाथी मुनि ने राजा श्रेणिक से कहा था-

अप्पाकत्ता विकत्ताय, सुहाण य दुहाण य ।

अर्थात् स्वयं की आत्मा ही सुख एवं दु:ख का कर्त्ता है, यही मित्र और शत्रु है । शुभ एव अशुभ इसी आत्मा के परिणाम है । इसलिए सम्यग्दृष्टि विचार करता है-

कडाण कम्माण न मोक्ख अत्थि ।

अर्थात् किये हुए कर्मो को भुगते बिना मुक्ति नही है । वह सुख मे फूलता नहीं और दु:ख मे दु:खित नही होता, रोता-बिलखता नहीं ।

(2) संवेग-

सवेग का तात्पर्य है सम्यक् वेग यानि धर्मानुराग रखना,

मोक्ष की अभिलाषा रखना संवेग है । संसार को दुःख का कारण समझे एवं मोक्ष को ही अपना चरम लक्ष्य माने । तद्नुरूप पुरुषार्थ करने की तत्परता रखना ।

(3) निर्वेद-

आरम्भ परिग्रह से निवृत्त होना, संसार से उदासीन रहना निर्वेद है । सम्यक्त्वी को ससार खारा लगता है । वह सदैव उदासीन भाव मे रहता है, वैराग्य भाव मे रमण करता है ।

(4) अनुकम्पा-

दुःखी जीवो को देखकर हृदय मे दया उत्पन्न होना सम्यग्दर्शन का एक प्रमुख लक्षण है । सम्यक्त्वी जीव ससार के समस्त प्राणियो को अपने समान समझते है । दुःखी को देखकर सम्यक्त्वी का हृदय करूणा से भर जाता है ।

(5) आस्था-

जिनेन्द्र भगवान की वाणी मे दृढ विश्वास रखना आस्था है। यह तो सम्यग्दर्शन का मूल तत्व है । धर्म पर सम्यक्त्वी की दृढ आस्था होती है ।.

सम्यग्दर्शन के अंग-

प्राप्त सम्यग्दर्शन की रक्षा के लिए ज्ञानियो ने चार आवश्यक बाते बताई है । इनका पालन करने से सम्यग्दर्शन निर्मल बना रहता है । उत्तराध्ययन सूत्र मे कहा है-

परमत्थ संथवो वा, सुदिट्ठ परमत्थ सेवणा वावि ।
वावण कुदंसण वज्जणा य सम्मत्त सद्धहणा ॥

अर्थात् 1. परमार्थ सस्तव 2 परमार्थ सेवा 3 व्यापन्न वर्जन और 4. कुदर्शन वर्जना - यह सम्यक्त्व की श्रद्धान है।

(1) परमार्थ संस्तव- नव तत्व का ज्ञान, जिनवाणी, देव, गुरु, धर्म तत्व का सम्यग्ज्ञान ये मोक्ष के साधन है, इसलिए इनका

परिचय करना, गुणकीर्तन करना परमार्थ संस्तव है ।

(2) **परमार्थ सेवा-** परमार्थ के जानने वाले रत्नत्रय के धारक आचार्य, उपाध्याय, सन्त-महासतियॉजी की सेवा करना ।

(3) **व्यापन्न विवर्जन-** सम्यक्त्व का जिन्होंने त्याग कर दिया है उनकी सगति नही करना ।

(4) **कुदर्शन वर्जन-** मिथ्या मान्यता वालो की संगति न करना । मिथ्यात्वी की संगति से बचना ।

सम्यग्दर्शन के दोष-

निम्न पॉच कारणो से सम्यक्त्व दूषित होता है-

(1) **शंका-** जिनवाणी मे संशय करना दोष है । कभी मानव की अल्पबुद्धि वीतराग वचनो के रहस्य को समझ नही पाती और स्थूल दृष्टि में जिनवाणी का अर्थ समाहित नही होता तो सम्यक्त्वी अपनी बुद्धि की अल्पता को स्वीकार करता है । लेकिन जिनवाणी मे शंका नही करता । यदि जिनवाणी मे शका करे तो सम्यक्त्व मे दोष लगता है । वीतराग प्रभु ने पानी की एक बूद मे असंख्यात जीव बताये है, वनस्पति मे जीव बताया है, भाषा वर्गणा के पुद्गल मुँह से निकलते ही सम्पूर्ण लोक मे व्याप्त हो सकते है आदि अनेक ऐसी बाते है जिन्हे हम प्रत्यक्ष देख नही पाते । लेकिन आज का विज्ञान इन्हे सिद्ध कर चुका है । तात्पर्य यह है कि जिनवाणी मे शका की सभावना नही है इसलिए शका करना दोष है ।

(2) **कांक्षा-** अन्य मतावलम्बियो के आडम्बर को देखकर आकर्षित होवे और ग्रहण करने की अभिलाषा करे तो कांक्षा दोष है । धर्म का आडम्बर से कोई सम्वन्धं नही है। जिनधर्म आडम्वर रहित आत्मा का कल्याण करने वाला है । इसलिए ऐसे उत्तम धर्म को छोडकर अन्य धर्म की इच्छा करना दोष है ।

(3) **विचिकित्सा-** धर्म के फल मे सदेह करना । संयम, तप आदि धार्मिक अनुष्ठानों का फल मिलेगा या नहीं इस प्रकार का संदेह करना विचिकित्सा दोष है ।

(4) **परपाखण्ड प्रशंसा-** वीतराग देव प्ररूपित धर्म के अलावा अन्य पाखण्ड मतो की प्रशंसा करना परपाखण्ड प्रशसा दोष है ।

उपरोक्त पॉच दूषणो का सेवन करने से सम्यक्त्व मलिन होती है तथा नष्ट होने का भय रहता है । इसलिए विवेकवान सम्यग्दृष्टि इन दोषों से दूर रहता है ।

कतिपय आधुनिक विचारको द्वारा विस्तारित तर्क जाल से भी सम्यग्दृष्टि अपने आपको निःशकित रखता है । जैसे आधुनिक विचारों से अनुरजित कई चिन्तक सम्यक्त्व की उत्पत्ति आत्मा से ही होना स्वीकार करते है । उनका कथन है कि सम्यक्त्व लेने-देने की वस्तु नही है, वह तो आत्मा का परिणाम है अतः किसी के बोध से सम्यक्त्व की प्राप्ति मानना उचित नहीं है । उक्त तर्क से आगम रहस्य से अनभिज्ञ वीतराग वाणी मे संशयशील होता हुआ सम्यक्त्व से विचलित हो जाता है । किन्तु उपरोक्त तर्क आगम सम्मत एव युक्ति संगत नही है क्योंकि तत्वार्थ सूत्र मे स्पष्ट बताया है-

'तन्निसर्गादधिगमाद्वा'

अर्थात् वह (सम्यग्दर्शन) निसर्ग से एवं गुरु आदि के प्रतिबोध से प्राप्त होता है ।

गुरु द्वारा सम्यक्त्व ग्रहण किया जाता है यह आगम एवं युक्ति संगत है । आवश्यक सूत्र का 'अरिहतो महदेवो' का पाठ जो पूर्व मे उद्धृत किया गया है उसके चरमपद- 'इय सम्मत्त मए गहिय' से यह भली भॉति स्पष्ट हो जाता है । इसका तात्पर्य है कि अरिहतदेव, निर्ग्रन्थ गुरु एव केवली प्ररूपित तत्व को स्वीकार करने रूप यह सम्यक्त्व मै ग्रहण करता हूॅ । इसमे ग्रहण करने का जो

सकेत है उसमे गुरु के माध्यम से सम्यक्त्व ग्रहण करने का रहस्य स्पष्ट हो जाता है । यदि सम्यक्त्व किसी आत्म परिणाम से प्राप्त होता, किसी के द्वारा प्राप्त नही करवाया जाता तो आगम मे 'मए गहियं' पद नही आता । अत: वीतराग वाणी के रसिको एव श्रद्धालुओ को उपरोक्त आधुनिक विचारधारा से प्रभावित नहीं होते हुए नि:शकित भाव से सम्यग्दर्शन की आसेवना करनी चाहिये ।

शंका का दुष्फल–

ज्ञाताधर्म कथा मे शका से होने वाले अनर्थ का वर्णन आया है । एक बार दो मित्र सागरदत्त एवं जिनदत्त वन भ्रमण को गये । एक स्थान पर उन्होंने मोरनी के दो अण्डे पाये । दोनो एक-एक अण्डा अपने घर ले गये । दोनों ने मुर्गियॉ बिठाकर अण्डे को सेना (परिपक्व करना) प्रारम्भ किया । कुछ दिनो बाद सागरदत्त को सदेह हुआ कि अण्डे में से मोर का बच्चा निकलेगा या नहीं, इसलिए अण्डे को हाथ मे उठाकर देखा, हिला-हिला कर अण्डे की परीक्षा की तथा इस क्रिया को दो-चार बार दोहराया । पर जिनदत्त को पूर्ण विश्वास था कि अण्डा मोरनी का ही है अत: इसमें से मोर का बच्चा अवश्य निकलेगा । उसने सावधानी पूर्वक अण्डे की रक्षा की तथा अण्डे को छेडा भी नहीं । सागरदत्त वाले अण्डे का जीव अन्दर ही समाप्त हो गया और जिनदत्त वाले अण्डे मे से एक छोटा-सा मोर का बच्चा निकला । जिनदत्त ने मोर के बच्चे को नाचना सिखा दिया । किसी अवसर पर सागरदत्त जिनदत्त के घर आया तो मोर के बच्चे का नाच देखा । जब सागरदत्त को यह ज्ञात हुआ कि यह वही मोर का बच्चा है जो जंगल से लाए अण्डे से प्राप्त हुआ है तो बहुत पश्चाताप हुआ क्योकि अश्रद्धा के कारण उसने अपने पास के अण्डे को नष्ट कर दिया था । जिनदत्त ने समझाया कि शकाशील व्यक्ति स्वय भी दु:खी होता है और दूसरो को भी कष्ट मे डाल देता है । अग्रेजी के महान कवि एव नाटककार शेक्सपीयर के 'ऑत्थेलो' नामक सेनाध्यक्ष को अपनी प्रिया एवं

सुन्दरतम पत्नी डेस्डेमोना पर झूठा चारित्रिक सदेह हो गया। उस तथ्यहीन शका के कारण उसने चारित्र निष्ठ एवं प्रियतम पत्नी की हत्या कर डाली। जब उसे वास्तविकता का पता लगा तो वह अत्यन्त दु:खी हुआ। नि:संदेह शंका बहुत भयानक एवं अहितकारी है। नीतिकारी ने भी कहा है-

'संशयात्मा विनिष्यति'

अर्थात् सशयशील व्यक्ति यदि सशय में ही बना रहता है तो उसका विनाश होना स्वाभाविक है।

अतः शंका का त्याग कर धर्म पर दृढ श्रद्धा करना चाहिये। शास्त्रों में भी कहा है-

'सद्धा परम दुल्लहा'

अर्थात् धर्म पर श्रद्धा होना दुर्लभ है। रामभक्त हनुमान के लिए एक कथा प्रचलित है। हनुमान को भगवान श्रीराम पर अत्यन्त दृढ श्रद्धा थी। लंका पर चढाई करने के लिए राम की सेना समुद्र के किनारे पर एकत्र हो गई परन्तु समुद्र को कैसे पार किया जावे यह एक कठिन समस्या थी। हनुमान को एक युक्ति सुझी। बड-बडे पत्थरो और शिलाखण्डो पर 'राम' का नाम लिखा गया और उन्हें पानी मे डाला जाने लगा। वे भारी-भरकम पत्थर पानी मे तैरने लगे। सेतु बन्ध तैयार होने लगा। यह अद्वितीय कार्य एक मात्र श्रद्धा के बल पर हो रहा था। श्रीराम और लक्ष्मण इस अपूर्व कला को देख आश्चर्यचकित हो गये। राम के मन मे एक विचार आया- मेरे नाम से बडे-बडे पत्थर एव शिलाखण्ड तैराये जा रहे है लेकिन क्या मैं किसी पत्थर को तैरा सकता हूँ या नही ? मन मे शका उत्पन्न हुई। लक्ष्मण को भी अपने मन की बात नही कही। वहाँ से श्रीराम अलग हटकर एक ओर एकान्त स्थान पर समुद्र के किनारे पहुँच गये। उन्होने एक छोटा ककर उठाया और पानी मे फैक दिया। पत्थर का स्वभाव तो पानी मे डूबना है, इसलिए ककर पानी मे डूब गया। राम अचम्भित रह गये। इधर-उधर देखने लगे

कि कही कोई देख तो नहीं रहा है अर्थात् श्रद्धा समाप्त होने पर सेतु बन्ध अपूर्ण रह जावेगा और लका पहुँचना दुष्कर होगा । उन्होने पाया कि कोई नही देख रहा है । परन्तु मन मे उथल-पुथल मचने लगी, विचार आया मेरे नाम से विशाल शिलाखण्ड तैर रहे है और मैंने एक छोटा-सा ककर पानी में फैका वह डूब गया । आखिर बात क्या है ?

श्रीराम ऐसा सोच ही रहे थे कि हनुमान चलकर श्रीराम के पास आये । हनुमान श्रीराम के ककर फैकने की क्रिया देख रहे थे ।

उन्होंने कहा- 'भगवन् आप क्या विचार कर रहे है ? यह तो ससार प्रसिद्ध है कि जिसको भगवान् श्रीराम ग्रहण करते है, अपनाते है वह तिर जाता है, संसार सागर से पार हो जाता है और जिसे आप त्याग देते है, जिसका आप तिरस्कार कर देते है वह डूब जाता है । जिन पत्थरो पर आपश्री का नाम लिखा है अर्थात् आपने जिन्हे अपनाया है वे तो समुद्र मे तिरेगे ही । जिस कंकर को आपने फैंक दिया, त्याग दिया वह कैसे तैर सकता है ? इसलिए आपका फैंका हुआ कंकर डूब गया है । इसमे विचारने की बात ही क्या है ? यह तो प्रकृति का नियम है ।'

भगवान राम हनुमान की बात सुनकर मुस्कुराए ।

इस उदाहरण से कहना यही है कि भगवान राम पर भक्त हनुमान की कितनी प्रगाढ श्रद्धा थी ? श्रद्धा का कैसा अपूर्व उदाहरण है । श्रद्धा के फलस्वरूप ही तो सेतु बन्ध तैयार हो सका और हनुमान श्रीराम को अपने हृदय मे बिठा सके ।

राम के द्वारा फैके गये कंकर के डूब जाने का तात्पर्य यह भी हो सकता है कि राम को अपने नाम पर इतना प्रगाढ विश्वास नही था जितना कि हनुमान को था । यह रामायण का एक प्रसंग है । आगम के धरातल पर यदि चिंतन करे तो वहॉ भी श्रद्धा के

अनेक उदाहरण मिल सकते है । दृढ श्रद्धालु अरहणक श्रावक एवं प्रगाढ श्रद्धा सम्पन्न सुलसा का पहले उल्लेख किया ही गया है । अन्तगड सूत्र में सेठ सुदर्शन का वर्णन भी आप लोग श्रवण करते हैं । उसे प्रभु महावीर पर इतनी प्रबल श्रद्धा थी कि वह यक्ष से भी नही घबराया और दर्शन हेतु चल पडा । उसकी दृढ श्रद्धा के समक्ष यक्ष को भी हार माननी पडी ।

मिथ्यात्व का स्वरूप-

सम्यग्दर्शन के स्वरूप पर विचार किया गया, उसके महत्व को समझने का प्रसंग भी आया । किन्तु तत्व को ठीक से समझने के लिए उसके विरोधी तत्व को भी समझना आवश्यक होता है । इसलिए सम्यग्दर्शन के साथ-साथ यहाॅ संक्षेप मे मिथ्यात्व के बारे में भी चिन्तन करना अपेक्षित है । मिथ्यात्व को समझकर उसका त्याग करने से आत्मा सम्यग्दर्शन को प्राप्त कर सकती है ।

मिथ्यात्व के भेद-

मिथ्यात्व के भेदो को समझने से उसका स्वरूप विशेष स्पष्ट हो सकता है ।

प्रकारान्तर से मिथ्यात्व के पाॅच, दस एवं पच्चीस भेद है । पच्चीस भेदो मे सभी समाविष्ट हो जाते है इसलिए सक्षेप में पच्चीस भेदों का विवरण प्रस्तुत है-

(1) अभिग्रहिक मिथ्यात्व-

पूर्वजो से चली आ रही मिथ्या मान्यता को तत्व की परीक्षा के अभाव मे पकडे रहना, हठ पूर्वक किसी बात को पकड लेना **और** फिर उसे न छोडना अभिग्रहिक मिथ्यात्व है ।

चार व्यवसायी व्यापार के लिए घर से विदेश के लिए **रवाना हुए** । मार्ग में किसी स्थान पर लोहे की खान से उन्हे लोहा

प्राप्त हुआ । सभी ने लोहा बाध लिया । आगे चलने पर क्रमश: ताम्बा, पीतल, चॉदी, सोना एव रत्न आदि की खाने आने पर तीन व्यापारी तो तुच्छ धातुओ को छोडते हुए मूल्यवान धातु ग्रहण करते गये और अन्त मे रत्न ग्रहण कर सुख और समृद्धि को प्राप्त हुए परन्तु एक व्यापारी ने हठ पूर्वक प्रथम बार में ग्रहण किये गये लोहे को नहीं त्यागा और अन्त में दु:खी हो गया । वास्तव मे जो ऐसे लोह वणिक की तरह तत्व का निर्णय किये बिना हठ पूर्वक किसी मान्यता को पकड लेते हैं, उन्हे मिथ्यात्व के कारण संसार मे परिभ्रमण करना पडता है ।

(2) अनाभिग्रहिक मिथ्यात्व-

कुछ व्यक्ति हठाग्रही तो नहीं होते लेकिन तत्व के स्वरूप को न समझने के कारण वे सत्य-असत्य, धर्म-अधर्म, गुण-अवगुण, स्व-पर, हित-अहित का निर्णय नही कर पाते। सभी धर्मो को समान समझते है अर्थात् अच्छे और बुरे का भेद नहीं कर पाते । यह अनाभिग्रहिक मिथ्यात्व है । संसार व्यवहार मे तो वे सावधान रहते है, रत्नो को तिजोरी मे रखते है और पत्थरों को बाहर रखते है, उनके अन्तर को समझते है, परन्तु धर्म के मामले मे घोटाला कर देते है । यह कहॉ तक उचित है ? सत्य और असत्य का निर्णय करना तो आवश्यक है । गुड और गोबर को समान नहीं कहा जा सकता ।

(3) अभिनिवेशिक मिथ्यात्व-

कुछ व्यक्ति अपने मन मे तत्व के स्वरूप को समझते हुए भी अभिमान के कारण अपनी हठ को नही त्यागते है, अपनी मिथ्या मान्यता से चिपके रहते है । यह अभिनिवेशिक मिथ्यात्व है । अपने सिद्धान्त को मिथ्या समझते हुए भी कुतर्क द्वारा मिथ्या मान्यता का पोषण करते है । ऐसे व्यक्तियो की स्थिति भी उसी प्रकार होती है जिस प्रकार किसी सधवा स्त्री ने विदेश गये अपने पति को मरा समझ कर वैधव्य अगीकार कर लिया, लेकिन पति जीवित था तथा

विदेश से लौट आया । वह स्त्री प्रत्यक्ष में अपने पति को देख रही है, सभी सम्बन्धीजन भी यह स्पष्ट बता रहे है कि यही उसका पति है और वह स्वयं भी समझ रही है कि वही उसका पति है फिर भी मिथ्या लोक-लाज एवं अभिमान के कारण वैधव्य का त्याग न कर दु:खी जीवन व्यतीत करती है । तत्व के स्वरूप को समझकर मिथ्या मान्यता का त्याग कर, सत्य को अंगीकार करना सयानेपन का लक्षण है ।

(4) सांशयिक मिथ्यात्व-

वीतराग वचनों में शका करना भी मिथ्यात्व है । वीतराग प्रभु तो जन कल्याण के लिए हितकर उपदेश देते है, सत्य उपदेश करते है । इस वाणी में शंका को कोई स्थान नही है । वीतराग वाणी में शंका करना सांशयिक मिथ्यात्व है ।

(5) अनाभोग मिथ्यात्व-

विचार शून्यता एव अज्ञानता के कारण यह मिथ्यात्व होता है । सभी असंज्ञी जीवो मे यह मिथ्यात्व पाया जाता है।

वैसे तो उपरोक्त पॉच प्रकार के भेदों मे मिथ्यात्व के सभी भेदो का समावेश हो जाता है फिर भी अधिक स्पष्ट रूप से समझने के लिए अन्य प्रकार के मिथ्यात्व के भेदो का वर्णन निम्न प्रकार है।

(6) धर्म को अधर्म समझे तो मिथ्यात्व । श्रुत धर्म और चारित्र धर्म को अधर्म मानना मिथ्यात्व ।

(7) अधर्म को धर्म समझना, हिसा आदि मे धर्म समझना मिथ्यात्व।

(8) जीव को अजीव समझे तो मिथ्यात्व ।

(9) अजीव को जीव समझे तो मित्यात्व ।

(10) साधु को असाधु समझे तो मिथ्यात्व ।

(11) असाधु को साधु समझे तो मित्यात्व -।

(12) ससार के मार्ग को मोक्ष का मार्ग समझे तो मिथ्यात्व ।

(13) मुक्ति के मार्ग को संसार का मार्ग समझे तो मिथ्यात्व।

(14) आठों कर्मो से मुक्त को अमुक्त समझे तो मिथ्यात्व ।

(15) जो कर्मो से मुक्त नहीं हो ऐसे रागी-द्वेषी को मुक्त समझे तो मिथ्यात्व ।

(16) लौकिक मिथ्यात्व- वीतराग मत को छोडकर लौकिक परम्पराओं मे धर्म मानना । इसके भी तीन प्रकार है- 1 देवगत 2 गुरु-गत 3. धर्मगत ।

(17) लोकोत्तर मिथ्यात्व- वीतराग मार्ग को स्वार्थ भावना से अपनाना । जैसे- मै यह धर्म स्वीकार करूँगा तो मुझे दैविक ऋद्धि मिलेगी आदि इस प्रकार वीतराग धर्म का भौतिक सुख के लिए पालन करना लोकोत्तर मिथ्यात्व है ।

(18) कुप्रावचनिक मिथ्यात्व- वीतराग प्रवचन को छोडकर अन्य मिथ्या प्रवचनों मे श्रद्धा करना ।

(19) न्यून मिथ्यात्व- जिनवाणी से न्यून (ओछी) प्ररूपणा करना, किसी तत्व के किसी अश को छोड देना न्यून प्ररूपणा मिथ्यात्व है । जैसे- सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड एकात्म रूप है, आत्मा का स्वतन्त्र अस्तित्व नही है आदि ।

(20) अधिक मिथ्यात्व- जिनवाणी मे अपनी ओर से कुछ नवीन बात जोड देना अधिक प्ररूपणा मिथ्यात्व है ।

(21) विपरीत मिथ्यात्व- जिनवाणी के विपरीत कोई बात कहना विपरीत प्ररूपण मिथ्यात्व है ।

(22) अक्रिया मिथ्यात्व- आत्मा को अक्रियावादी मानना अर्थात् आत्मा को पुण्य-पाप की क्रिया नहीं लगती, ऐसा मानना । तथा- चारित्रवान की क्रियाओ को जड क्रियाएँ मानना, अक्रिया मिथ्यात्व है ।

(23) अज्ञान मिथ्यात्व- ज्ञान से अज्ञान को श्रेष्ठ मानना, हितकर बताना अज्ञान मिथ्यात्व है ।

(24) अविनय मिथ्यात्व- देव, गुरु, धर्म का अविनय करना, आज्ञा का पालन नही करना अविनय मिथ्यात्व है ।

(25) आशातना मिथ्यात्व- देव, गुरु धर्म की आशातना करना, निन्दा करना । तैतीस प्रकार की आशातनाओ का शास्त्रो मे वर्णन आया है जिन्हे जानबूझ कर करना आशातना मिथ्यात्व है ।

उपसंहार-

मिथ्यात्व एवं सम्यक्त्व के वास्तविक स्वरूप को समझकर मोक्षभिलाषी आत्माएँ ज्ञेय को जाने, हेय का त्याग करे और उपादेय को ग्रहण करें यही महापुरुषो की वाणी है। वीतराग वचनो पर दृढ श्रद्धा करने से ही मोक्ष का मार्ग प्रशस्त हो सकता है । श्रद्धा तो नितान्त आवश्यक है परन्तु अन्धश्रद्धा उचित नही है । सम्यग्दर्शी का ज्ञान सम्यग् ज्ञान होता है तथा चारित्र भी सार्थक होता है । इसके विपरीत सम्यग् श्रद्धान रहित की गई कठोर क्रिया भी केवल भौतिक सुख की प्रदात्री हो सकती है, किन्तु आत्मा का सम्यक् उत्कर्ष उससे सम्भव नही होता है जैसा कि उत्तराध्ययन सूत्र मे नमिराज ऋषि शकेन्द्र से कहते है-

मासे मासे तु जो बालो, कुसग्गेण तु भुंजए ।
न सो सुयक्खाय धम्मस्स, कलं अग्घइ सोलसिं ॥

अर्थात् अज्ञानी व्यक्ति मास-मास की तपस्या करे और पारणे मे कुशाग्र पर आवे उतना आहार करे, यह क्रिया निरन्तर करता रहे । फिर भी ऐसा कठोर तप ज्ञानी (सम्यग्दृष्टि) की सोलहवी कला के बराबर भी नही होता, उसके नवकारसी तप की बराबरी नही कर सकता । सम्यग्दृष्टि का तप सकाम निर्जरा है । भव भम्रण घटाने वाला होता है और मिथ्यात्वी का तप अकाम

निर्जरा है । ससार बढाने वाला होता है । अध्यात्म योगी आनन्दघनजी ने कहा है-

'देव गुरु धर्मनी शुद्धि कहो किम करे,
किम रहे शुद्ध श्रद्धान आणो ।
शुद्ध श्रद्धान बिन सब किरिया करी,
छार पर लिपणु तेह जाणो ॥

अर्थात् बिना शुद्ध श्रद्धा के सभी क्रियाएँ उसी प्रकार व्यर्थ है जिस प्रकार राख पर लीपना (लेप करना) व्यर्थ है ।

साधारण सम्यग्दृष्टि चारो गतियो का आयुष्य बॉध सकता है । विशिष्ट क्रियावादी सम्यग्दृष्टि वैमानिक देव के अलावा आयुष्य बन्धन नही करता । विशेष विस्तृत जानकारी 'सधर्म मण्डन' पुस्तक से प्राप्त की जा सकती है ।

कवि प्रार्थना की कडियों में यही कहता है कि हे वीतराग प्रभु ! मै मिथ्यात्व को त्याग कर निज स्वरूप अर्थात् सम्यग् दर्शन को प्राप्त करूँ, आपने जो स्व-स्वरूप प्राप्त किया है उसे मैं भी प्राप्त करूँ ।

किं बहुना लिखितेन, संक्षेपादिदमुच्यते ।
त्यागो विषयमात्रस्य कर्तव्याऽखिल मुमुक्षुभिः ॥

भावार्थ- अधिक लिखने से क्या लाभ ? संक्षेप मे यही पर्याप्त है कि मोक्ष के अभिलाषी को विषय मात्र का त्याग कर देना चाहिये ।

मूर्च्छा परिग्रहः ।

भावार्थ- मूर्च्छा अर्थात् आसक्ति ही परिग्रह है ।

सम्यग्-चारित्र एक विश्लेषण

सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान के साथ सम्यग्चारित्र को होना आवश्यक है । ये तीनों मिलकर ही मोक्ष का मार्ग प्रशस्त करते हैं । ज्ञान एवं श्रद्धा के साथ-साथ आचरण भी होना चाहिये । क्रिया युक्त ज्ञान मोक्ष का साधन है । ज्ञान के अभाव में क्रिया अन्धी है तो क्रिया के अभाव में ज्ञान पंगु है । अतः ज्ञान, दर्शन एवं चारित्र का सम्यक् एकाकार होना आवश्यक है । जिस प्रकार रोग निवारण के लिए औषधि का ज्ञान पर्याप्त नहीं, वरन् उसका सेवन भी आवश्यक हैं, उसी प्रकार जीवनोत्थान के लिए ज्ञान के साथ-साथ क्रिया और आचरण भी आवश्यक है ।

काकन्दी नगरी भली हो, श्री सुग्रीव नृपाल ।
रामा तस पटरानी हो, तस सुत परम कृपाल ॥
श्री सुविधि जिनेश्वर वंदिये हो, वन्दत पाप पुलाय ।
प्रभुता त्यागी राजवी हो, लीधो संजम भार ।
निज आतम अनुभव थकी, हो पाम्या पद अविकार ॥
श्री सुविधि जिनेश्वर वंदिये हो...

यह सुविधिनाथ प्रभु की प्रार्थना है । वैसे तो परमात्मा सभी प्रकार के नाम, जाति आदि विकल्पो से मुक्त है, परमात्म-स्वरूप है, सच्चिदानंद है, अनन्त ज्योति पुञ्ज है, अजर-अमर अविनाशी, निरंजन, निराकार, निर्विकल्प, निष्कलंक, निर्लेप, निष्काम है । वे अनन्त अव्याबाध सुख में विराजमान है । तदपि भूत-कालीन नय की अपेक्षा एवं पर्याय की विवक्षा से परमात्मा के विविध गुण और नामो का कीर्तन किया जाता है । इसी दृष्टि से यहाँ परमात्मा को 'सुविधिनाथ' कहा गया है ।

जैन दर्शन की तथ्य निरूपण शैली अपने आप मे अनूठी है । वह विभिन्न दृष्टिकोणो को लेकर चलती है । प्रत्येक पदार्थ के विविध पहलू होते हैं जिन्हे जैनदर्शन मे 'नय' से समझा जाता है, विचार किया जाता है । प्रत्येक वस्तु अनेक धर्मात्मक है अतः नय भी अनेक हो सकते हैं । कहा भी है-

जावट्टया वयणपहा तावट्टया चेवहुंति णयवाया ।

अर्थात् जितने वचन मार्ग है, उतने ही नय है । फिर भी उन्हे सात नयो मे वर्गीकृत किया है ।

प्रस्तुत स्तुति में पर्याय नय की विवक्षा है । वर्तमान मे सिद्ध स्वरूप मे रही हुई आत्मा पूर्व मे सुविधिनाथ तीर्थकर के रूप मे थी, अतएव उस भूत भाव को लेकर सिद्ध स्वरूप परमात्मा को सुविधि जिनेश्वर कहा गया है । उन सुविधिनाथ परमात्मा को वन्दन करने के लिए कवि ने प्रेरणा दी है । साथ ही विश्वास दिलाया

कि यदि उन परमात्मा के वन्दन किया जाय तो सब पाप नष्ट हो जाते हैं ।

सुविधिनाथ वन्दनीय क्यों ?

प्रश्न हो सकता है कि सुविधिनाथ हमारे लिए क्यो वन्दनीय है और उनको वन्दन करने से पापो का नाश किस प्रकार हो सकता है ? इसका उत्तर स्वय कवि ने दिया है-

प्रभुता त्यागी राजवी हो, लीधो संजम भार ।
निज आतम अनुभव थकी हो, पाम्या पद अविकार ॥

प्रभु सुविधिनाथ इसलिए वन्दनीय नही है कि वे ससार अवस्था मे विशाल साम्राज्य के स्वामी थे अथवा अपार धन-वैभव उनके चरणो मे लौटता था । वरन् वे वन्दनीय इसलिए हैं कि उन्होने राज्य-सत्ता, धन-वैभव, भोग-विलास आदि का त्याग कर सयम का मार्ग अपनाया । सयम की साधना के द्वारा आत्मा के मौलिक स्वरूप का अनुभव किया है । आत्मा का साक्षात्कार करके परिपूर्ण केवलज्ञान प्राप्त किया और उसके विमल आलोक मे जनकल्याण के लिए सुविधि का निर्देश किया, धर्म तीर्थ की स्थापना की और अन्ततः अविकार और शाश्वत सिद्ध स्वरूप को प्राप्त किया । उन सुविधिनाथ भगवान ने जगत के जीवो को सुविधि बताई, कल्याण का मार्ग बताया, कर्तव्य का बोध कराया और ससार सागर से पार होने का तौर-तरीका, विधि-विधान समझाया ।

प्रभु के मार्ग को अपनाओ-

प्रभु सुविधिनाथ के मार्ग का अनुसरण करने वाला सब पाप बन्धनो से मुक्त होकर अपने लक्ष्य को प्राप्त कर लेता है । यदि जगत के दुःखो से उबरना है, सुख पाना है तो प्रभु के मार्ग को अपनाना होगा ।

सुविधि की विधि–

प्रश्न होता है कि वह कौनसा मार्ग है, कौनसी विधि है ? जो उन सुविधिनाथ परमात्मा ने बताई है । इसका सक्षिप्त एव उपयुक्त उत्तर है-

'सुहे पवित्ती असुहाओ विणिवित्ती ।'

अर्थात् शुभ मे प्रवृत्ति और अशुभ से निवृत्ति करना सुख का मार्ग है, सुख की विधि है ।

सम्यग् चारित्र

आज पर्युषण पर्व का चतुर्थ दिवस है । गत तीन दिनो मे क्रमशः धर्म, ज्ञान एवं दर्शन के सम्यक् स्वरूप पर चर्चा की गई । आज चरित्र के बारे मे अर्थात् शुभ मे प्रवृत्ति और अशुभ से निवृत्ति कैसे हो इस पर प्रकाश डालना है ।

उत्तराध्ययन सूत्र के 28 वे अध्याय मे कहा है-

नाणेण जाणइ भावे, दंसणेण य सद्धहे ।
चरित्तेण णिगिण्हाइ, तवेण परिसुज्झइ ॥

अर्थात् ज्ञान से वस्तु के स्वरूप को समझा जाता है, दर्शन से श्रद्धा होती है, चारित्र के द्वारा आश्राव को रोका जाता है तथा तप के द्वारा पूर्व काल मे उपार्जित कर्मो को क्षय किया जाता है ।

ज्ञान क्रियाभ्याम् मोक्ष–

हमे समझना यह है कि ज्ञान और श्रद्धा कर लेने मात्र से ही कार्य चलने वाला नही है । जब तक जीवन मे चारित्र के रूप मे उसे अपनाया नही जावेगा, जीवन में उसे उतारा नही जावेगा तव तक कार्य चलने वाला नही है । ज्ञान और श्रद्धा के साथ उस पर आचरण आवश्यक है । तत्वार्थ सूत्र की प्रथम पक्ति मे ही सकेत दिया है-

'सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्राणि मोक्षमार्गः'

सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान एवं सम्यग्चारित्र ये तीनों मिलकर मोक्ष मार्ग के साधन हैं । जब तक तीनो का समन्वय नहीं होता, एकाकार नहीं होता, तीनो सम्यक् नही होते तब तक मोक्ष का मार्ग प्रशस्त नही होता ।

कोई व्यक्ति विभिन्न मिठाइयो के नाम जान लेवे, विभिन्न व्यजनों के नाम याद कर लेवे, विभिन्न लाभदायक औषधियो के नाम से परिचित हो जावे, उन सब पर श्रद्धा भी कर लेवे, परन्तु जब तक उनका सेवन न करे, तब तक उनके रसास्वादन के आनन्द को प्राप्त नहीं कर सकता । इसका यह अभिप्राय नही है कि ज्ञान एव दर्शन महत्वपूर्ण नही है । वे तो आवश्यक एवं महत्वपूर्ण है ही, लेकिन लक्ष्य का अन्त इनमे नहीं है । लक्ष्य की सिद्धि तो ज्ञान एव दर्शन के साथ चारित्र को जोडने पर ही है । अपने-अपने स्थान पर सभी का महत्व है । ज्ञान के सथ क्रिया होनी चाहिये । कहा भी है-

'ज्ञान क्रियाभ्याम् मोक्षः'

ज्ञान क्रिया युक्त होना चाहिये । क्रिया युक्त ज्ञान मोक्ष का साधन है ।

चारित्र के बिना ज्ञान भार है-

तत्व के स्वरूप को समझकर हेय का त्याग आवश्यक है तथा उपादेय को जीवन मे ग्रहण करना चाहिये । ज्ञान का सार है कि उपादेय को जीवन मे उतारा जावे अन्यथा ज्ञान भी भार स्वरूप हो जाता है । भारवाहक मजदूर मिश्री, बादम या अन्य स्वादिष्ट एव लाभदायक वस्तुओ को उठाकर एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाता है । लेकिन उसे मिश्री के स्वाद का अनुभव नहीं हो सकता, वह तो भार रूप ही है । स्वाद का अनुभव तो वही कर सकता है जो उसे खाता है कवि ने भी कहा है-

जहां खरो भार वाही, भारस्स भागी न हु चन्दणस्स ।

गधे की पीठ पर चन्दन जैसे बहुमूल्य पदार्थ को लाद दिया जाता है, लेकिन उसके लिए तो वह भी मिट्टी-पत्थर के समान ही है। गधे को चन्दन के उपयोग का, चन्दन के गुणों का क्या अनुभव है ? वह तो केवल भार वाहक है । उस पर चाहे चन्दन लाद दें, मिट्टी लाद दे, रसगुल्ले का बर्तन रख दें या भले ही गोबर आदि भार भर दें, उसके लिए तो सभी भार स्वरूप है । उनका भेद उपभोक्ता ही कर सकता है । इसी प्रकार क्रिया के अभाव में ज्ञान भार स्वरूप होता है । कहा भी है-

'ज्ञानं भारः क्रिया बिना'

कुछ दर्शन एवं धर्म ऐसे हैं जो मात्र क्रिया रहित ज्ञान को मुक्ति का साधन बताते हैं और कुछ ऐसे भी हैं जो केवल क्रिया को (ज्ञान रहित क्रिया को) मुक्ति का उपाय बताते हैं । परन्तु जैन दर्शन का यह सिद्धान्त नही है । जैनदर्शन में ज्ञान एवं क्रिया का समन्वय आवश्यक माना गया है । दोनों अपने-अपने स्थान पर महत्वपूर्ण है । कथनी-करनी की एकरूपता होनी चाहिये । यही मुक्ति का साधन-मुक्ति का मार्ग है ।

एक बार किसी व्यक्ति के घर मे चोर ने प्रवेश किया। गृहिणी की नीद खुल गई और उसने अपने पति को धीरे से जगाकर कहा कि घर मे चोर घुसा है । पति भी जाग रहा था उसने कहा- 'मै जानता हूॅ ।' चोर ने तिजोरी, पेटी आदि के ताले तोड डाले, सामान एकत्रित कर लिया, बॉध लिया, लेकर जाने लगा और पत्नी ने बार-बार सचेत किया, पर हर बार पति का यही उत्तर था- 'मै जानता हूॅ ।' अन्त में चोर सामान लेकर रवाना हो गया और पति यही कहता रहा- 'मै जानता हूॅ ।' पत्नी को अन्त मे यही कहना पडा-

जानू-जानू कर रह्या, माल गयो अति दूर ।
मैं कहूँ आपसे, ऐसा जाण पणा में धूर ॥

विचार कीजिये ऐसे ज्ञान से क्या लाभ होने वाला है ।

राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी ने तो यहाँ तक कहा है- 'मस्तिष्क मे भरे हुए ज्ञान का जितना अंश काम में लाया जाय उतने का ही कुछ मूल्य है, बाकी तो सब व्यर्थ का बोझ है ।'

इसलिए ज्ञानियों का कथन है कि ज्ञान एव क्रिया का समन्वय करो । अन्धे और लंगडे की कथा आपने सुनी होगी। एक अन्धे और एक लंगडे में मित्रता हो गई । पहले दोनो बडी कठिनाई से जीवन चलाते थे । दोनों ने समाधान खोजा । अंधे ने लंगडे से कहा- 'अरे भाई ! तुम पैर से अशक्त हो और मैं आँख से अन्धा हूँ, मैं चल तो सकता हूँ, पर देख नहीं सकता और तुम देख सकते हो, पर चल नहीं सकते । तुम मेरे कन्धे पर बैठ कर मुझे मार्ग दिखाओ । लगडे ने स्वीकार कर लिया । दोनों का जीवन सुखमय हो गया ।

ज्ञान के अभाव मे क्रिया अन्धी है तो क्रिया के अभाव में ज्ञान पंगु है ।

चारित्र का क्या अर्थ है-

चयस्य रिक्तिकरणं चारित्रम्

अर्थात् पूर्व अर्जित कर्म मल से जो छुडावे वह चारित्र है । 'चारित्र=चय+रिक्त' संचित कर्मो से रिक्त होना चारित्र है । जिसको जीवन में उतारा जावे, जो आचरण मे आवे वह चारित्र है ।

चारित्र धर्म के दो भेद बताये हैं- 1 आगार धर्म 2 अणगार धर्म । आगार धर्म आंशिक चारित्र है, देश चारित्र है और अणगार धर्म सकल चारित्र है, पूर्व चारित्र है ।

आगार धर्म-

जो जीव पॉच महाव्रतो का पूर्ण रूप से पालन नही कर सकते हैं वे श्रावक के व्रतो को ग्रहण करते है, आशिक रूप से चारित्र का पालन करते है । यह देश चारित्र कहलाता है । इन व्रतो

का पालन करने वाला श्रावक कहलाता है । श्रावक के बारह अणुव्रत होते है । महाव्रतो की अपेक्षा छोटे होने से इन्हे अणुव्रत कहते हैं । महाव्रत तीन करण और तीन योग से पाले जाते है जबकि अणुव्रत एक करण एक योग से लगाकर दो करण तीन योग तक पाले जा सकते हैं । महाव्रतो मे हिंसादि का पूर्ण रूपेण त्याग होता है किन्तु अणुव्रतों मे आंशिक त्याग होता है । इसलिए अणुव्रत, महाव्रतो की अपेक्षा छोटे होते है । जो व्यक्ति संयम मार्ग की आराधना नहीं कर सकते वे सद्गृहस्थ श्रावक व्रत का पालन कर आगार धर्म की आराधना कर अपने जीवन को उन्नत बना सकते हैं । आगार का अर्थ है-घर और जो गृह त्याग किये बिना ही साधना के पथ पर अग्रसर होना चाहते है, वे श्रावक धर्म को जीवन मे स्थान देते हुए देश चारित्र की आराधना कर सकते है । संसार मे रहते हुए, सांसारिक क्रियाओं को करते हुए भी ऐसे जीव जल, कमलवत् निर्लेप रहने एवं सांसारिक प्रपंचों से मुक्त होने की भावना रखते हैं ।

आगार का दूसरा अर्थ है छूट । जिनके त्याग परिपूर्ण नहीं हो, त्याग मे कुछ छूट हो, त्याग का पालन आंशिक रूप से किया जावे उसे आगार धर्म कहते है । यह अणगार धर्म की अपेक्षा सरल मार्ग है ।

शास्त्रो में आगार धर्म का भी महत्वपूर्ण उल्लेख मिलता है । उपासक दसांग सूत्र मे आनन्द, कामदेव आदि दस प्रधान श्रावको के जीवन वृतान्त का उल्लेख है । भयकर विपदाओ मे भी भगवान् महावीर के ये अनुयायी सुश्रावक धर्म मार्ग से विचलित नही हुए । कामदेव आदि कई श्रावको की देवो ने विभिन्न प्रकार से परीक्षा ली, जिसमे वे दृढधर्मी श्रावक उत्तीर्ण हुए, अपने धर्म से डिगे नहीं । इसीलिए कहा है-

जो दृढ राखे धर्म को, ताही राखे करतार ।
जो छोड़े धर्म को, वह डूबे काली धार ॥

अरहणक श्रावक का वृतांत आपने सुना ही होगा। उसका मन धर्म में दृढ रहने से देवता भी नतमस्तक हो गया। इसीलिए कहा गया है-

'देवा वि तं नमं संति जस्स धम्मे सयामणो।'

कहने का तात्पर्य यह है कि कैसे-कैसे महान श्रावक हो गये हैं। कामदेव श्रावक की भी देव ने परीक्षा ली, परिषह दिये। एक रात्रि में तीन कठोर एवं भयंकर उपसर्ग दिये परन्तु वह धर्म पर अटल रहे। धर्म को छोडा नहीं। आगमो में ऐसे कई उदाहरण उपलब्ध हैं। पूणिया श्रावक की सामायिक की बात आप कई बार सुन चुके हैं। मगध सम्राट महाराजा श्रेणिक ने अपना सम्पूर्ण वैभव दाव पर लगा दिया, परन्तु पूणिया श्रावक की एक सामायिक भी क्रय करने में सक्षम नहीं हुआ। वास्तव में हम विचार करे कि क्या सामायिक जैसी आध्यात्मिक वस्तु को भौतिकता से आका जा सकता है? कतई नहीं। सामायिक तो आत्मा की वस्तु है। पूणिया श्रावक का जीवन सामायिक अर्थात् समभाव से ओत-प्रोत था। सामायिक उसके जीवन मे उतर चुकी थी। रोम-रोम और रग-रग में समभाव व्याप्त था। यही सामायिक का अर्थ है, सार है। श्रावक की सामायिक दो करण तीन योग की होती है तथा काल विशेष के लिए होती है। सयमी मुनिराजो की सामायिक तीन करण-तीन योग की जीवन पर्यन्त होती है। सामायिक जितने भी समय की हो देश से हो या सर्व से, वह जीवन मे उतरनी चाहिये। जीवन मे समता रस का सचार हो तो समझना चाहिये कि सामायिक का जीवन से तादात्म्य सम्बन्ध हो गया है। पर्युषण पर्व के पावन प्रसंग से यह भव्य अवसर प्राप्त हुआ है कि सामायिक के स्वरूप को समझे उसे जीवन मे उतारे।

अवसर बीत्यो जात है, अपने वश कुछ होत।
पुण्य छतां पुण्य होत है, दीपक-दीपक ज्योत॥

यदि यह शुभ अवसर खो दिया तो पश्चाताप करना पडेगा।

जो संयम ग्रहण नहीं कर सकते हैं उन्हें श्रावक के व्रतों को अंगीकार करना चाहिये। श्रावक के बारह व्रत होते हैं, जिनके तीन विभाग है- पॉच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत।

पाँच अणुव्रत-

स्थूल प्राणातिपात से विरत होना पहला अणुव्रत है। इस अणुव्रत का पालक श्रावक निरपराधी, त्रस जीवों को मारने की (आकुटी) बुद्धि से मारने का त्याग करता है। सापराधी को दण्ड देता हुआ श्रावक इस व्रत का उल्लंघन नहीं करता। यही कारण है कि इस नैतिकता को अक्षुण्ण रखने हेतु रखने हेतु महाराज चेडा ने अपने दोहित्र कुणिक के साथ युद्ध किया था। इसका विस्तृत विवरण शास्त्रों मे मिलता है। हांलाकि श्रावक अपराधी को विविध प्रकार से समझाकर उसे अनीति से हटाने का प्रयास करता है, किन्तु कदाचित् अपराधी अनैतिकता एवं उद्दण्डता नही छोडें तो लाचार होकर दण्ड नीति अपनानी पडती है।

दूसरे अणुव्रत मे श्रावक स्थूल मृषावाद का त्याग करता है। लोक मे अपवाद हो एवं राजा द्वारा दण्डित किया जाय ऐसी मृषा भाषा का प्रयोग द्वितीय अणुव्रत के पालक श्रावक को नही करना चाहिये।

अचौर्य अणुव्रत मे श्रावक स्थूल अस्तेयवृत्ति का परित्याग करता है अर्थात् खात खन करके, ताला तोडकर, चोरी करना श्रावक का कर्तव्य नही है। श्रावक की भावना सूक्ष्म अस्तेय-वृत्ति से भी निवृत्त होने की रहती है। पर पारिवारिक आदि परिस्थितियों से वह पूर्णतया निवृत्त नही हो सकता। जैसे किसी व्यक्ति की पुस्तक उस व्यक्ति की बिना अनुमति के उठाना अथवा पढना सूक्ष्म चोरी की कोटी मे है। किन्तु ऐसी चोरी का श्रावक अवस्था मे पूर्णतया पालन होना अति दुष्कर है। अतः श्रावक स्थूल चोर वृत्ति से विरत होता हुआ स्थूल अचौर्य व्रत का पालन कर सकता है।

स्वदार अर्थात अपनी पत्नी मे संतोष करना, परस्त्री को माता एवं बहिन के तुल्य मानना स्वदार संतोष, परदार विवर्जन चौथा अणुव्रत है । इस अणुव्रत के माध्यम से श्रावक को मैथुन कर्म की छूट नही दी है बल्कि गृहस्थावस्था में रहते हुए भी संयमित रहने का निर्देश दिया गया है । स्वदार संतोष का तात्पर्य है कि अपनी विवाहिता पत्नी के साथ भी संयमित रहे अर्थात् मर्यादा रखे । काम-भोग की आसक्ति को शनैः शनैः कम करता हुआ पूर्ण ब्रह्मचर्य व्रत की आराधना का इच्छुक रहे ।

परिग्रह परिमाण व्रत में धन-धान्य, दास-दासी आदि परिग्रह का परिमाण करे । इस व्रत के माध्यम से प्रभु महावीर ने श्रावक को सन्तोषी होने का पाठ पढाया है । परिग्रह का जितना परिमाण होगा, उतनी ही तृष्णा कम होगी। परिग्रह का परिमाण, मर्यादा नही रखने से तृष्णा में वृद्धि होती जाती है । इसके लिए ज्वलंत उदाहरण आगम में कपिल केवली का मिलता है ।

उक्त पॉचो अणुव्रतो मे वर्तमान देश, काल और भाव की दृष्टि से श्रावक द्वितीय एव तृतीय अणुव्रत की सम्यक् पालना कदाचित् नही कर सकता पर अन्य अणुव्रतों की पालना मे उसे सरकार की तरफ से कोई अडचन पैदा होने वाली नही है । अतः बन सके तो पॉचों अणुव्रतो को स्वीकार करना चाहिये, नहीं तो जितने व्रतों का पालन कर सकता हो उतने व्रतो को ग्रहण करते हुए श्रावक धर्म की आराधना करनी चाहिये ।

तीन गुणव्रत-

दिगव्रत मे पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, उर्ध्व और अधो उक्त छहों दिशाओ में गमनागमन की सीमा निर्धारण करना चाहिये । इससे भी तृष्णा पर अंकुश लगता है ।

सातवां व्रत- याने दूसरा गुणव्रत उपभोग परिभोग परिमाण व्रत है । इस व्रत की आराधना करने से श्रावक जीवन के आत्मिक

गुणो का विकास होता है तथा विवेक- शीलता में वृद्धि होती है। इससे दैनिक चर्या को नियमित किया जाता है। जिससे श्रावक पाप कर्म से निवृत्त हो सकता है।

इस व्रत में महारंभ अर्थात् विशेष कर्मबन्ध होने वाले व्यापार मे प्रवृत्त होने का भी निषेध किया गया है, जिन्हें पन्द्रह कर्मादान कहते है। उक्त व्रतधारी श्रावक पन्द्रह कर्मादानों का त्याग करके अपने जीवन को धार्मिक दिशा में विशेष अग्रसर करता है।

अनर्थदण्ड से विरति होना तीसरा गुणव्रत है। इस व्रत में श्रावक सार्थक हिंसा का आगार रखता हुआ अनर्थक- निरर्थक हिसा का त्याग कर देता है।

चार शिक्षाव्रत-

प्रथम शिक्षाव्रत मे श्रावक सामायिक का नियम रखता है एवं शुद्ध सामायिक की आराधना करने को कटिबद्ध रहता है।

दूसरे शिक्षाव्रत में श्रावक देशावकाशिक व्रत की आराधना चौदह नियम, सवर, दया (छः काया) रात्रि पौषध (दशवां पौषध) आदि के माध्यम से कर सकता है। उक्त सभी व्रत-नियम देशावकाशिक व्रत के अन्तर्गत माने गये हैं।

तीसरे शिक्षाव्रत में श्रावक प्रतिपूर्ण पौषधव्रत की आराधना करता है। इस पौषध मे चारो आहार का प्रत्याख्यान करना अनिवार्य है। इसी तरह अब्रह्मचर्य का त्याग भी अपेक्षित है। यह पौषध अहोरात्र प्रमाण होता है अर्थात् इस व्रत की आराधना पूरे 24 घण्टे तक होना आवश्यक है।

चौथा शिक्षाव्रत अथवा बारहवां श्रावक व्रत अतिथि संविभाग व्रत है। इसमे श्रावक अपने हिस्से के आहार आदि मे भी अतिथि के लिए सविभाग करने की भावना रखता है। उत्कृष्ट अतिथि पंच महाव्रतधारी निर्ग्रन्थ मुनिराजो को 14 प्रकार के दान देने की

भावना रखता है एवं अवसर आने पर प्रफुल्लित भावो से दान देता है ।

उपरोक्त प्रत्येक व्रत के पाँच-पॉच अतिचार होते हैं, जिनके सेवन से व्रत दूषित हो जाते हैं । इसलिए इन अतिचारों की भी जानकारी अवश्य करनी चाहिये, पर उनका आचरण नही करना चाहिये । जैसा कि शास्त्रकार संकेत क़रते हैं :-

'पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा'

इस प्रकार श्रावक व्रतो की आराधना करता हुआ गृहस्थावस्था में भी आदर्श उपस्थित कर सकता है । प्रभु महावीर द्वारा निरूपित आनन्द आदि श्रावकों का आदर्श जीवन आज भी हमारे समक्ष है । आप लोगों ने भी उनका जीवन वृत्तांत सुन रखा होगा, पर केवल सुनकर ही नहीं, उसे यथाशक्ति जीवन मे अपनाएँ । 12 व्रत के अनुरूप जीवन बनाने से ही श्रावक जीवन की सार्थकता है ।

अणगार धर्म-

देश चारित्र पर विचार करने के बाद थोड़ा सकल चारित्र के स्वरूप को भी समझ ले । जो भव्य आत्मा जीवन पर्यन्त पॉच महाव्रतों का पूर्ण रूप से पालन कर सकते है वे अणगार धर्म को अंगीकार करते हैं । ऐसे संयमी मुनिराज सभी प्रकार से हिंसा, असत्य, चोरी, कुशील एवं परिग्रह का मन, वचन, काया से पूर्ण त्याग करते हैं । वे उपरोक्त हिंसा आदि पॉचों पापो का तीन करण, तीन योग से त्याग करते हैं अर्थात् वे मन से, वचन से एवं काया से न हिंसादि करते है, न कराते है और न करने वाले का अनुमोदन ही करते है ।

साधु के लिए अहिसा सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य एवं अपरिग्रह ये पॉचो महाव्रत सार्वभोम हैं । पॉच महाव्रतों का संक्षिप्त स्वरूप इस प्रकार है-

(1) अहिंसा महाव्रत-

यह पहला महाव्रत है। संयमी साधक पूर्ण अहिंसक होते हैं, वे छोटे से छोटे जीवों की मन, वचन, काया से हिंसा न स्वयं करते है, न दूसरों से करवाते है और न करने वाले का समर्थन ही करते है। उनका हृदय करूणा से परिपूर्ण होता है।

नागश्री ने एक दिन धर्मरूचि अणगार को एक माह की तपस्या के पारणे के दिन कडवे तुम्बे की शाक बहरा दी। गुरु महाराज ने शाक देखते ही अनुमान लगा लिया कि यह तो विष के समान कटु है इसलिए इसे कही निर्वद्य स्थान पर परठा देना चाहिये। मुनिराज शाक परठने के लिए एकान्त स्थान पर गये। शाक की कुछ बुन्दें भूमि पर डाली। देखते ही देखते शाक की महक से अनेक चींटियाँ एकत्र हो गई। उसको खाने से वे मृत्यु को प्राप्त हो गई। अणगार का हृदय द्रवित हो उठा। विचार किया कि कुछ बुन्दो ने ही जब इतनी सारी चीटियों के प्राण ले लिये हैं तो इतनी सारी शाक से न जाने कितने निर्दोष जीव मारे जावेंगे। गुरु ने निर्वद्य स्थान के लिए कहाँ है। यहाँ तो मेरा यह शरीर ही निर्वद्य स्थान दिखाई देता है। मुनिराज शाक को खा गए। उससे उनको भयंकर वेदना हुई। किन्तु मुनिराज ने समभाव पूर्वक वेदना को सहन किया और समधिमरण के साथ प्राणो का उत्सर्ग किया। धन्य है धर्मरूचि अणगार जिन्होंने चीटियों पर करूणा करके अपनी जान की भी परवाह न की। उन्होंने समझ लिया कि मै (आत्मा) भिन्न हूँ और यह नश्वर शरीर भिन्न है।

यही कारण है कि अहिंसा महाव्रतधारी किसी भी प्रकार के वाहन का उपयोग नही करते। छोटे से छोटे जीवों की रक्षार्थ पैदल यात्रा करते हैं, वह भी खुले पैर। पैर में भी किसी तरह के जूते-चप्पल नहीं पहनते। वे अपने निमित्त बनाया हुआ आहार आदि भी ग्रहण नही करते। संयमी जीवन के निर्वाह हेतु भिक्षा-चर्या करते है। उनके ठहरने के लिए निजी कोई मकान भी नही होता। श्रावक

वर्ग के अपने धर्मानुष्ठान हेतु जो पौषधशाला होती है उसमे अथवा धर्मशाला आदि जो प्रासुक मकान मिल जाता है उसी मे वे ठहरते हैं । प्रासुक मकान के अभाव मे वृक्ष के नीचे ठहर कर भी समय निकाल सकते हैं । सूर्योदय के पूर्व एव सूर्यास्त के पश्चात् अनावश्यक गमणागमन भी नहीं करते । संयम सुरक्षार्थ जो प्रमणोपेत वस्त्र होते हैं उनकी भी दो वक्त प्रतिलेखना करते हैं । खुले मुँह नहीं बोलते । अग्नि आदि की तापना नही लेते। विद्युत परिचालित किसी भी यन्त्र का उपयोग नहीं करते हैं । गर्मी में पंखे आदि से हवा का सेवन नही करते । कच्चे पानी का उपयोग तो दूर उसका स्पर्श भी नही करते । मकान बनाने आदि आरम्भजनिक कार्यो का उपदेश भी नही देते । इस प्रकार छोटे से छोटे प्राणियो की दया भावना से वे अहिसा महाव्रती जगत के समस्त जीवो के अभयदाता बन जाते हैं ।

(2) सत्य महाव्रत-

सत्य महाव्रत में तीन करण तीन योग से असत्य का परिहार किया जाता है । अर्थात् जैन श्रमण किसी भी तरह का असत्य वचन व्यवहार नही करता तथा सत्य वचन भी अप्रियकारी नहीं बोलता । दशवैकालिक सूत्र के अध्याय 7 में जैन श्रमण का वचन व्यवहार किस प्रकार का हो इसका विस्तृत विवेचन है । उसका सार यह है कि निर्ग्रन्थ मुनि - कर्कश, कठोर, छेद, भेद निश्चयकारी, हिसाकारी पर जीव को पीडाकारी, सावद्य-सपापकारी एव मिश्र भाषा को वर्ज कर प्रिय एव मधुर भाषा का प्रयोग करता है ।

卐 कर्कशकारी- जो भाषा कर्ण को कटु एवं व्यंग्यकारी लगती हो उसे कर्कशकारी भाषा कहा जाता है ।

卐 कठोरकारी- अन्धे को अन्धा एवं काणे को काणा कहना कठोर भाषा कही गई है ।

卐 निश्चयकारी- मै अमुक समय, अमुक कार्य करूँगा,

अमुक समय विहार करूँगा, व्याख्यान दूँगा आदि निश्चयात्मक भाषा का प्रयोग करना निश्चयकारी भाषा है ।

卐 हिंसाकारी- जिससे प्राणियो के प्राणो का अतिक्रमण हो वह भाषा हिसाकारी है ।

卐 छेदकारी- जीवों के अंगो के छेदन-भेदन करने रूप भाषा को छेदकारी भाषा कहते हैं ।

卐 भेदकारी- किसी की गुप्त बात को प्रकट करना भेदकारी भाषा है ।

卐 परजीवी को पीडाकारी- जिस भाषा से दूसरे जीवो के प्राणों का अतिक्रमण तो नही होता पर पीडा होती है ऐसी भाषा परजीवी को पीडा पहुँचाने वाली होती है ।

卐 सावद्य सपापकारी- गृहस्थाश्रम के आरम्भ, समारम्भ सम्बन्धी भाषा का प्रयोग करना अथवा खुले मुँह बोलंना सावद्य सपापकारी भाषा है ।

卐 मिश्र भाषा- जिसमे सत्य एवं असत्य का सम्मिश्रण हो उसे मिश्र भाषा कहते हैं ।

उक्त प्रकार की भाषा जैन श्रमण को क्रोध, मान, माया, लोभ, हास्य, भय एवं विकथा आदि के वशीभूत होकर भी नहीं बोलनी चाहिये ।

(3) अचौर्य महाव्रत-

इसमे अदत्तादान से विरति होती है । यह भी तीन करण एव तीन योग से ग्रहण किया जाता है ।

दत्त का अर्थ है- दिया हुआ और अदत्त का अर्थ है विना दिया हुआ । आदान का अर्थ है ग्रहण करना अर्थात् अन्य के स्वामित्व की वस्तु को उस स्वामी के बिना प्रदान किये स्वत: ग्रहण

नही कर सकता । दाता द्वारा दी जाने वाली वस्तु भी यदि अनेषणीय एव अप्रासुक है तो जैन श्रमण उसे भी ग्रहण नही करते । चाहे दन्त शोधन हेतु छोटा-सा तिनका ही क्यों न हो, वह भी लेना होगा तो उसके स्वामी की अनुमतिपूर्वक, प्रासुक होने पर, ऐषणा करके ग्रहण कर सकते हैं । गवेषणा की शुद्धि हेतु मुख्यतया 42 एवं विस्तार से 106 दोषो का वर्णन शास्त्रकार करते हैं । उक्त दोषो से युक्त वस्तु दाता की भावना एवं निर्ग्रन्थ को आवश्यकता होने पर भी ग्रहण नहीं करते ।

(4) ब्रह्मचर्य महाव्रत-

ब्रह्म का अर्थ आत्मा भी होता है और चर्य का अर्थ चरना-विचरना । अर्थात् जिस महाव्रत के माध्यम से आत्मा में रमण हो उसे ब्रह्मचर्य महाव्रत कहा जाता है । आत्मा की जो ऊर्जा शक्ति है, वह अब्रह्म के माध्यम से ह्रास हो जाती है । इसलिए अब्रह्म-मैथुन का सर्वथा प्रकार से त्याग करके मुनि पूर्णतः ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं ।

ब्रह्मचर्य का पालन करना बडा दुष्कर है, इसलिए सूत्र कृतांग में कहा है- 'तवेसु वा उत्तमं बंभचेरं' अर्थात् तपो में उत्तम (श्रेष्ठ) तप ब्रह्मचर्य है । तीर्थङ्कर भगवन्तो ने भी इसकी परिपालना हेतु कठोर नियमों के पालन का निर्देश दिया है ।

उत्तराध्ययन सूत्र के सोलहवे अध्ययन में ब्रह्मचर्य की सुरक्षा हेतु नव वाडो का विधान किया गया है । उसका सार इस प्रकार है-

1. स्त्री, पशु एवं नपुंसक रहित स्थान- जहॉ स्त्री, पशु एव नपुसक जाति का निवास हो अथवा सूर्यास्त से सूर्योदय के पूर्व तक आवागमन हो, ऐसे स्थान पर ब्रह्मचारी को नहीं रहना चाहिये, क्योंकि ब्रह्मचारी पुरुष स्वयं में कितना ही जागरूक क्यो न हो पर कभी न कभी कामदेव के चक्कर मे आ सकता है, इसलिए पहले से ही उसे उक्त प्रकार के स्थान का विवर्जन करना चाहिये । कहा भी है-

जहा बिरालावसहस्स मूले न मूसगाणं वसही पसत्था ।
एमेव इत्थी निलयस्स मज्झे, नबम्भयरिस्स खमा निवासो॥

अर्थात् जिस वृक्ष के मूल मे बिलाव (बिल्ली) का निवास हो उस स्थान पर चूहे का रहना खतरे से खाली नहीं है उसी प्रकार जहॉ स्त्री आदि का निवास हो वहॉ ब्रह्मचारी पुरुष का रहना प्रशस्त नही है ।

(2) स्त्री सम्बन्धी चर्चा-वार्ता नहीं करना- स्त्री के अगोपाग एव हावभाव की चर्चा एवं वार्ता नही करनी चाहिये। जैसे- नीम्बू, इमली आदि के नाम का स्मरण करते ही खट्टे रस का ज्ञान हो जाता है एवं मुॅह में पानी भर आता है वैसे ही मोह जनित सस्कारों का अनादिकाल से आत्मा के साथ सम्बन्ध होने से तत्सम्बन्धी वार्ता श्रवण करने से साधक संकल्प विकल्पों में उलझ सकता है । इसलिए स्त्री सम्बन्धी चर्चा वार्ता ब्रह्मचारी साधक को नही करनी चाहिये ।

(3) स्त्री के बैठे हुए स्थान का तत्काल उपयोग नहीं करना- जिस प्रकार जमा हुआ घी अग्नि के संसर्ग से तरल-द्रवित हो जाता है उसी प्रकार स्त्री के बैठे हुए स्थान या आसन पर यदि साधक तत्काल बैठता है तो सुसुप्त कामाग्नि क्वचित् उदीप्त हो सकती है ।

(4) स्त्री के अंगोपांग का निरीक्षण नही करना- स्त्री के अंग अथवा उपाग अथवा हावभाव का निरन्तर निरीक्षण करने से ब्रह्मचारी पुरुष अपनी आत्मशक्ति रूप तेज को गॅवा बैठता है । जैसे कि छोटा बच्चा सूर्य की किरणो को देखता हुआ अपनी ऑखें गॅवा बैठता है । अतः स्त्री के अंगोपांग पर दृष्टिपात नहीं करना चाहिये।

(5) विकारी शब्द वाले स्थान का वर्जन- जिस स्थान पर स्त्री-पुरुष सम्बन्धी विकारोत्पादक शब्द सुनाई पडते हो ऐसा स्थान ब्रह्मचारी पुरुष के रहने योग्य नही माना जाता क्योकि मेघ

की गर्जना को श्रवण करके मयूर भी नाच उठता है, उसी प्रकार विकारोत्पादक शब्दो का श्रवण करते-करते ब्रह्मचारी के विचार भी विकार युक्त हो सकते है । अतः उक्त प्रकार के स्थान का वर्जन करना चाहिये ।

(6) पूर्व मे भोगे हुए काम भोगो का स्मरण नही करना- व्यक्ति जिस प्रकार की भावना करता है उसी तरह उसका जीवन बन जाता है । पूर्व के भोगे हुए काम भोगो का स्मरण करने से तत्सम्बन्धी सामग्री उपस्थित होने पर वर्तमान में भी मन अस्थिर हो सकता है । इसलिए पूर्व के काम भोगों का स्मरण करना भी ब्रह्मचारी के लिए घातक सिद्ध हो सकता है । ज्ञाताधर्म कथाग सम्बन्धित जिनरक्ष एवं जिनपाल दृष्टान्त इसके लिए बहुत उपयोगी है ।

(7) प्रतिदिन सरस आहार का त्याग- ब्रह्मचर्य कीं सुरक्षा के लिए साधक को प्रतिदिन सरस आहार नहीं करना चाहिये, क्योंकि नित्य-प्रति गरिष्ठ भोजन करने से इन्द्रियॉ चंचल हो जाती है, जिससे ब्रह्मचर्य पालन में कठिनाई आना स्वाभाविक है । सन्नीपात के रोगी को जैसे शक्कर मिश्रित दूध अहितकर होता है वैसे ब्रह्मचारी के लिए प्रतिदिन सरस भोजन करना हानिकारक है ।

(8) अधिक भोजन नहीं करना- जितनी क्षुधा है उससे दो-चार कवल कम भोजन करना ब्रह्मचर्य के लिए हितकर माना जाता है । रूक्ष, ऑत, प्रात आहार भी मात्रा से अधिक खा लेने पर हानिकारक होता है । जैसे एक सेर के माप की मिट्टी की हण्डिया मे यदि सवा सेर या डेढ सेर सामान डाल दिया जाय तो जो स्थिति उस मिट्टी की हण्डिया की होती है प्रायः वैसी ही स्थिति ब्रह्मचारी पुरुष की बनती है। अतः चाहे रूक्ष आहार ही क्यो न हो मात्रा से अधिक नहीं खाना चाहिये ।

(9) शारीरिक शोभा का वर्जन- जैसे गृहस्थ शारीरिक शोभा हेतु स्नान, उबटन, मर्दन आदि करता है, केश-नख को

संवारता है वैसे ही यदि ब्रह्मचारी पुरुष भी शारीरिक शोभा-विभूषा मे आसक्त होता है तो वह अपने ब्रह्मचर्य को सुरक्षित नहीं रख सकता । क्योकि शारीरिक शोभा-विभूषा की इच्छा करना मानसिक चंचलता का द्योतक है । शोभा-विभूषा करना चंचलता ही है । जो ब्रह्मचारी शारीरिक शोभा-विभूषा में रत रहता है उसकी हालत वैसी ही होती है, जैसी कि लकडहारे ने कौए को उडाने के लिए चिन्तामणि रत्न गॅवाया । अर्थात् जैसे दरिद्र व्यक्ति चिन्तामणि रत्न को सुरक्षित नही रख सकता, वैसे ही शोभा-विभूषा मे रत ब्रह्मचारी भी अपने ब्रह्मचर्य को सुरक्षित नही रख सकता ।

वीर्य जीवन का अति महत्वपूर्ण तत्व है, वही जीवन का ओज है । यदि उसे अब्रह्मचर्य से नष्ट किया जाता है तो ज्ञानीजनो की भाषा मे व्यक्ति स्वयं अपने को नष्ट कर रहा है। अतः अब्रह्मचर्य का पूर्ण रूप से परित्याग करना चाहिये । कदाचित् उतनी क्षमता न हो तो स्वदार सन्तोष व्रत के माध्यम से उसे संयमित अवश्य कर लेना चाहिये ।

(5) अपरिग्रह महाव्रत-

पॉचवॉ अपरिग्रह महाव्रत है । महाव्रतधारी निर्ग्रन्थ परिग्रह के सर्वथा त्यागी होते है । यह महाव्रत भी तीन करण तीन योग से ग्रहण किया जाता है । कभी-कभी संत-मुनिराजो के पास संयमी जीवन के सुरक्षार्थ रखे जाने वाले वस्त्र पात्र आदि को देखकर कोई यह विचार करे कि वस्त्र-पात्र का परिग्रह संतों के पास होते हुए भी वे अपरिग्रही कैसे ? यह विचार आगम ज्ञान के परिज्ञान के अभाव मे हो जाना स्वाभाविक है । किन्तु आगम ज्ञान से इस पर चिन्तन किया जावे तो सत्य के द्वार उद्घाटित हो जाते है । प्रभु महावीर ने परिग्रह के बारे मे कहा है-

'मुच्छा परिग्गहो वुत्तो'

अर्थात् मूर्छा को परिग्रह कहा गया है । इस आगम सूत्र के अनुसार मर्यादित वस्त्र-पात्र आदि भण्डोपकरण रखता हुआ भी

निर्ग्रन्थ अपरिग्रही होता है क्योंकि व्रह उन वस्त्र-पात्र आदि में आसक्त नही होता, अपितु अनासक्त भाव से उनको संयमी जीवन मे सहायक मानकर उपयोग करता है ।

सत-मुनिराज अपरिग्रह महाव्रत सुरक्षार्थ निर्देशित भण्डोपकरण के अतिरिक्त टिकट, लिफाफे, पोस्टकार्ड, रुपया पैसा मुद्राएँ आदि भी अपने पास नहीं रखते । दूसरे दिन का भोजन भी संग्रह नही करते, न ही चन्दा-चिट्ठा आदि के प्रपंच मे पडते है । क्योंकि चंदा-चिट्ठा करवाने से स्वयं चाहे अपने पास रुपये पैसे न भी रखे, पर दूसरों को उससे सहयोग देने से परिग्रह वृत्ति को बढावा मिलता है, उसका अनुमोदन होता है । जिससे अपरिग्रह महाव्रत दूषित हो जाता है । अतः ऐसी प्रवृत्तियो मे साधक को सहभागी नही बनना चाहिये ।

समिति गुप्ति के पालक अणगार-

उपरोक्त पॉच महाव्रतो के साथ-साथ अणगार धर्म के पालक पॉच समिति एवं तीन गुप्ति का भी पालन करते है । समिति गुप्ति भी पॉचों महाव्रतों को पालने मे सहायक है ।

सकल चारित्र का पालन करने वाले मुनिराज नववाड सहित शुद्ध ब्रह्मचर्य का पालन करते है, कनक और कामिनी के त्यागी होते हैं । सकल चारित्र रूप संयम पालन को तलवार की धार पर चलने से भी कठिन बताया है ।

कथनी और करनी की एकरूपता-

आज के युग में उपदेशक बहुत है परन्तु चारित्रवान बहुत कम है । चारित्रवान व्यक्ति पहले सिद्धान्तो को अपने जीवन मे उतारता है और फिर उसका उपदेश करता है । राष्ट्रपिता महात्मा गॉधी का उदाहरण हमारे सामने है । वे किसी बात को कहने से पूर्व अपने जीवन मे उतारने का प्रयास करते थे । जैसा कहते थे वैसा

करने को भी तत्पर रहते थे । लेकिन आजकल अधिकतर लोगो की कथनी और करनी में अन्तर रहता है । एक बार कोई नेताजी मंच से अहिसा पर भाषण दे रहे थे । भाषण शैली हृदय स्पर्शी एवं प्रभावशाली थी । वक्ता महोदय ने अहिंसा के स्वरूप का बहुत सुन्दर ढग से विश्लेषण किया । श्रोतागण मन्त्रमुग्ध हो गये ।

इधर वक्ता महोदय को बोलते-बोलते पसीना हो गया। उन्होंने पसीना पोछने के लिए जेब से रूमाल निकाला तो असावधानी के कारण जेब से एक अण्डा बाहर आ गिरा । अब तो सारा दृश्य ही बदल गया । वक्ता का प्रभाव घृणा मे परिवर्तित हो गया । श्रोतागण वक्ता को धिक्कारने लगे कि अहिसा का ऐसा विश्लेषण करने वाले का आचरण ऐसा घिनौना ? आजकल ऐसे वक्ताओ की कमी नही है । तात्पर्य यह है कि प्रभाव भाषण का नहीं आचरण का होता है । बिना आचरण के केवल वक्तृत्व कला का कदाचित् प्रभाव पडता भी है तो वह तात्कालिक होता है स्थाई नहीं । महात्मा गॉधी के एक इशारे पर ही हजारो-हजार व्यक्ति दौड पडते थे । क्या कारण था इसके पीछे ? इसके पीछे था उनका अपना आदर्श एवं चरित्रमय जीवन, कथनी और करनी मे एकरूपता ।

'सौ मण कहने की अपेक्षा एक कण करना अधिक अच्छा है ।'

किसी अंग्रेज कवि ने कहा है-

If wealth is lost, nothing is lost. If health is lost, something is lost. If character is lost, every thing is lost.

'यदि धन खोया तो कुछ नही खोया, अगर स्वास्थ्य खोया तो कुछ खोया और यदि चारित्र खोया तो सब कुछ खो गया ।'

भारत का इतिहास चारित्रवान व्यक्तियो के जीवन से भरा पड़ा है । मर्यादा पुरुषोत्तम राम अपने चारित्र के कारण ही भगवान

बने, पुरुषोत्तम कहलाये । पंचवटी के कानन मे सूर्पणखा राम से विवाह का प्रस्ताव रखती है, उनके न मानने पर लक्ष्मण को आकर्षित करती है परन्तु दोनों अपने चारित्र वल मे दृढ रहे । इसके विपरीत रावण अपने चारित्र का त्याग कर महासति सीता को उठा ले गया, उनके सामने अपनी दुर्भावना व्यक्त की तो आज ससार रावण के पुतले बनाकर जलाता है, उसके नाम पर थूकता है। यद्यपि रावण बहुत बडा पण्डित था, तथापि 'विनाशकाले विपरीत बुद्धि' के अनुसार उसकी मति पलट गई । किन्तु सीता अपने आपमे दृढ रही । सेठ सुदर्शन ने अपने प्राणों की बाजी लगाकर भी अपने शीलधर्म की रक्षा की । छत्रपति शिवाजी, वीर दुर्गादास आदि अनेक योद्धा हुए जिन्होंने अपने चारित्र की रक्षा कर विश्व के सामने आदर्श उपस्थित किया है । विजयकुॅवर और विजयाकुमारी का उदाहरण तो अद्वितीय है जिन्होंने गृहस्थ अवस्था मे रहते हुए भी पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन किया ।

सभी तीर्थङ्कर राज्य, वैभव, भरापूरा परिवार, सुख- सुविधाएँ आदि त्याग कर संयम ग्रहण करते है, चारो तीर्थ की स्थापना करते है, संसार में धर्म का उद्योत करते हैं और अन्त मे समस्त कर्मो का क्षय करके सिद्ध, बुद्ध एव मुक्त हो जाते है । गजसुकमाल, धन्ना, शालिभद्र, जम्बू आदि अनेक उदाहरण है, जिन्होने भोग को तिलाजलि देकर त्याग मार्ग अपनाया और अपनी आत्मा का कल्याण किया ।

किसी कवि ने कहा है-

सम्यग्ज्ञानी, सम्यग्दर्शी, सम्यग्संयमवान,
उसी को मिलता है निर्वाण ।
शास्त्र-शास्त्र में, स्थान-स्थान पर बोल गये भगवान,
उसी को मिलता है निर्वाण ॥

आत्मशक्ति को जागृत करें-

बन्धुओं ! पर्युषण पर्व के इस पावन प्रसग पर सम्यग्ज्ञान,

सम्यग्दर्शन और सम्यग्चारित्र की आराधना कर मुक्ति के मार्ग पर अग्रसर होवे ।

जिनकी आत्माएँ जागृत हो चुकी हैं उन्होने संयम को अंगीकार कर लिया है और जो संयम को धारण नही कर पाये है, उन्होने श्रावक धर्म को अंगीकार कर लिया है । इस पावन प्रसंग पर आप भी कुछ आगे बढें, अधिक नही तो देश चारित्र को ग्रहण करे, आगार धर्म को अपनावे । यो तो आप संसार के कठिन से कठिन कार्य करने को तत्पर हो जाते है, पर जव त्याग प्रत्याख्यान की वात आती है तो अधिकांश व्यक्ति कतराते है, भय खाते हैं ।

एक वार किसी अच्छे धनी परिवार की पुत्री को किसी ऐसे परिवार मे व्याही गई जो सुसंस्कारी तो था पर उस परिवार से कुछ कम वैभवशाली था । वहू के पीहर में सभी प्रकार की सुविधाएँ थी, नौकर, चाकर भी थे । उसे इस वात का अभिमान भी था कि उसका पीहर अधिक वैभवशाली है।

एक दिन सास को उपवास का पारणा करना था । उकाली वनाने के लिए काली मिर्च आदि को खरल मे पीसने के विचार से पास मे वैठी वहू को रसोई के वाहर से खरल उठा लाने को कहा । वहू को पीहर के वैभव का मद तो था ही, सोचा यदि आज खरल उठा लाऊँगी तो कल और अधिक भारी वस्तु उठानी पडेगी । एक वार ना करने पर हमेशा के लिए रास्ता साफ हो जायेगा । वहू ने कहा- 'मातजी ! आप विचार करे, ऐसी भारी खरल मुझ से कैसे उठेगी, मैने तो अपने पीहर मे ऐसी भारी वस्तुएँ कभी उठाई ही नही ।

सास सरल एव शान्त स्वभाव की थी । वह वहू को विना कुछ कहे स्वय ही खरल उठा लाई और अपना कार्य कर लिया ।

सास और वहू की यह वार्ता वहू का पति सुन रहा था । वह स्तब्ध रह गया । विचार मग्न हो गया । उसने सोचा कि पत्नी,

को सचमुच शिक्षा देनी चाहिये । पति दुकान पर गया परन्तु मन मे खेद था, ऑखों में पत्नी का अपनी मॉ के प्रति किया गया अभद्र व्यवहार चलचित्र की तरह दौड रहा था । बार-बार विचार आ रहा था कि पत्नी को कैसे समझाया जावे ? इतने में एक पुराने ढाई सेर के बाट पर दृष्टि पडी । एक योजना दिमाग मे उभर आई । तत्काल पास की दुकान से एक योग्य सुनार को बुलाया । सुनार को कुछ सोना दिया और लोहे का ढाई सेरी बाट भी । दोनों वस्तुओं से एक सुन्दर सोने का हार बनान को कहा । हार के नीचे सोने की पतली परत मे ढाई सेरी की लॉकेट लटकाने को कहा । सुनार भी विचार में पड गया कि आज सेठजी को क्या हो गया ? सोने के हार मे लोहे की ढाई सेरी की लॉकेट ! सेठ ने कहा- तुम मेरे कथनानुसार हार जल्दी बना कर लाओ ।

अत्यन्त सुन्दर चमचमाता हार बनकर तैयार हो गया। मखमली डिब्बे में हार रखा गया । सेठ रात्रि को सोने के समय कपडे में हार का डिब्बा लपेटकर, बगल मे दबाकर घर ले आया । डिब्बे का कुछ हिस्सा दिखाई दे रहा था । पत्नी की नजर डिब्बे पर पडी और पति से पूछ ही लिया कि बगल मे क्या दबा रखा है ? पति यद्यपि उसे हार दिखाना चाहता था फिर भी कहा- 'नही, नही कुछ नहीं है । तुम्हारे काम की चीज नहीं है ।' पत्नी की जिज्ञासा बढी तो उसने प्रेमपूर्वक पति के हाथ से डिब्बा ले लिया । डिब्बा खोलने पर पत्नी ने कहा- 'हार तो बहुत सुन्दर है । ऐसा सुन्दर हार आप कहॉ से लाये ?' पति ने कहा- 'आज दुकान पर बिकने के लिए आ गया था, मैने इसे खरीद लिया ।

'यह हार तो मै पहनूँगी ।' पति ने रोका- 'नहीं, नही यह हार तुम जैसी सुकुमाल नारियो के काम का नहीं है । यह तो बहुत भारी है, तुम इतना भारी हार कैसे उठा पाओगी ?'

लेकिन पति के ना करते हुए भी पत्नी ने हार को अपने गले मे डाल लिया और कहा- 'वाह ! आप भी क्या बात करते है । पीहर मे इससे भी भारी हार पहने है ।'

पति ने मौन स्वीकृति प्रदान की । वह तो यही चाहता था कि पत्नी हार को पहन ले ।

पत्नी को हार इतना पसन्द आया कि रात और दिन उसे पहने रहती । खोलने का नाम नहीं लेती । सभी आस-पडोस की महिलाओ को हार दिखाने के लिए किसी न किसी बहाने उनके घर पहुँच जाती । हार की सभी बहुत प्रशंसा करते जिससे वहू फूली न समाती ।

वहू ने दो-चार दिन तक हार को गले से नहीं निकाला। चलते-फिरते, घर का काम करते उस हार के लॉकेट से छाती में चोट लगती, फिर भी हार पर मोह था । मोह की कुछ ऐसी ही दशा है । हिताहित का भी भान नही रहता । हम उस महिला को तो मूर्ख कहेगे लेकिन यदि विचार करें तो क्या आज संसार के अधिकांश व्यक्तियो की दशा वैसी नही हो रही है ? हम भी संयम के मार्ग को कठिन समझते है, श्रमण धर्म और श्रावक धर्म को तो बहुत दुष्कर कहते है, लेकिन संसार के कठिनातम कार्यो मे रात-दिन लगे रहते है । कितना कष्ट उठाते हैं । फिर भी वे कर्म कठिन नही लगते । घर मे विवाह-शादी के अवसर पर भोजन और शोचादि से निवृत्ति भी समय पर नही होती ओर यो सन्त-मुनिराज कभी नवकारसी या एक सामायिक की बात करे तो लोग बगले झॉकने लग जाते हैं । कई बहाने बन जावेगे, कठिनाइयॉ पैदा हो जावेगी । यह दृष्टि का अन्तर है, विचार शक्ति का भेद है, सोचने के तरीको की भिन्नता है ।

सेठ ने विचार किया कि पत्नी हार के मोह मे पागल हो रही है । कही हार की चोट लगने से इसकी शारीरिक हानि हो गई तो बाद मे दिक्कत पडेगी । इसलिए एक रात्रि को जब पत्नी गहरी नीद मे सो रही थी तब उसने धीरे से टाई सेरी पर लगी हुई सोने की पतली परत को थोडी-सी ऊँची कर दी जिससे अन्दर के लोह की टाई सेरी स्पष्ट दिखाई देने लगी ।

प्रातः वह जल्दी ही दुकान पर चला गया। वहु ने उठकर देखा कि हार कुछ खराब हो गया। सोचा बराबर पहनने से हार घिसने लगा है। जब उसकी दृष्टि लॉकेट के भीतरी भाग पर गई तो काला-काला सा पदार्थ दिखाई देने लगा। अधिक गौर से देखने पर ढाई सेरी स्पष्ट दिखाई देने लगी। लोहे की ढाई सेरी देखते ही बहू की त्यौरियाँ चढ गई। हार खोल कर कमरे के एक कोने मे पटक दिया।

रात्रि को जब सेठ घर आया तो पत्नी का रग-ढग देख कर सारी स्थिति को समझ गया। वह तो जान ही रहा था कि आज रंग आएगा। पत्नी का मुँह आवेश से फूल रहा था। पति से बात नही की। सेठ ने भी इस तरह पूछा जैसे कुछ जानता ही न हो- 'क्यो! क्या बात हुई ? क्या तुम्हारा स्वास्थ्य ठीक नही है ? या किसी ने कुछ कह दिया है ?'

'क्या आप नहीं जानते है ? आप ऐसा हार मेरे लिए लाए थे ? मुझे क्या ढाई सेरी से छाती कुटवानी थी ?'

'मैने तो तुमसे पहले ही कह दिया था कि हार बहुत भारी है, तुमसे नही उठेगा। तुम सुकुमाल हो। अरे ! मुझे भी आश्चर्य हुआ जो एक छोटी-सी खरल हाथो से नही उठा सकती वह हार का भार इतने दिन तक कैसे उठाए रही ?'

पत्नी सारी बात समझ गई। उसने पति से क्षमा मागी तथा यह सकल्प किया कि अब वह सास के साथ सद्व्यवहार करेगी।

इसी प्रकार बन्धुओ ! त्याग प्रत्याख्यान के विषय मे आनाकानी नहीं करते हुए जितनी शक्ति हो उतना-उतना यदि त्याग जीवन मे अपनाया गया तो यह जीवन सार्थक हो जायेगा। यह मनुष्य जीवन आत्मोत्थान के लिए प्राप्त हुआ है, भोग के लिए नही। अतः शक्ति अनुसार त्याग अवश्य करना चाहिये।

यह तो एक उदाहरण है, लेकिन हम लोगो को इससे शिक्षा

ग्रहण करनी चाहिये । मोह का त्याग कर वीतराग प्रभु के बताए मार्ग को जीवन मे स्थान देना चाहिये । बहू ने तो अपनी मिथ्या मान्यता को समझ लिया और उसे त्याग दिया लेकिन हम अभी भी जीवन के महत्त्व को नहीं समझ पाये है, अन्यथा श्रावक धर्म अथवा श्रमण धर्म को अंगीकार कर जीवन ज्योति को जागृत करने का प्रयास करते । चरित्र के पालन मे जो बाह्य कष्ट उत्पन्न होता है वह वास्तविक कष्ट नहीं है, वह तो सुखदाई है तथा संसार का सुख वास्तविक सुख न होकर केवल सुखाभास है । श्रीमद् रायचन्द्रजी ने ठीक ही कहा है-

अनन्त दु:ख, नाम सुख, अनन्त सुख नाम दु:ख,
उघाड़ न्याय नैत्र ने, निहाल रे निहाल तूँ ।

संसार में अनन्त दु:ख और नाम मात्र का सुखाभास है । संयम मे नाम मात्र का कष्ट है एवं अनन्त सुख है । इस तत्त्व को समझने की आवश्यकता है । शास्त्रो मे कहा है कि

'संयम ही जीवन है, असंयम ही मरण है ।'

आज के इस पावन प्रसंग पर अपनी-अपनी शक्ति के अनुसार असंयम का त्याग करे एवं जीवन मे संयम को स्थान देवे । संयम का पालन सुखकारी है । किसी कवि ने भी कहा हे-

संयम सुखकारी, जिन आज्ञा अनुसार, धन्य पाले जे नरनार ।
संयम सुखकारी आनन्दकारी, धन्य जाऊँ मैं बलिहार ॥

कर्म रज ने शीघ्र हटावे, आतम ना गुण सब प्रगटावे ।
जन्म मरण ना दु:ख मिटावे, होवे परम कल्याण ॥ संयम.

परम औषधी संयम जाणो, तीन लोक नो सार पिछाणो ।
शुद्ध समझ हृदय में आणो, अनुपम सुख की खान ॥ संयम.

स्तवन की कुछ कडियो का उच्चारण किया गया है । हम इसके भावो को ग्रहण करे । वास्तव मे संयम आनन्दकारी है ।

प्रातः वह जल्दी ही दुकान पर चला गया । वहु ने उठकर देखा कि हार कुछ खराब हो गया । सोचा बराबर पहनने से हार घिसने लगा है । जब उसकी दृष्टि लॉकेट के भीतरी भाग पर गई तो काला-काला सा पदार्थ दिखाई देने लगा । अधिक गौर से देखने पर ढाई सेरी स्पष्ट दिखाई देने लगी । लोहे की ढाई सेरी देखते ही बहू की त्यौरियाॅ चढ गई । हार खोल कर कमरे के एक कोने मे पटक दिया ।

रात्रि को जब सेठ घर आया तो पत्नी का रग-ढंग देख कर सारी स्थिति को समझ गया । वह तो जान ही रहा था कि आज रंग आएगा । पत्नी का मुॅह आवेश से फूल रहा था । पति से बात नही की । सेठ ने भी इस तरह पूछा जैसे कुछ जानता ही न हो- 'क्यो! क्या बात हुई ? क्या तुम्हारा स्वास्थ्य ठीक नही है ? या किसी ने कुछ कह दिया है ?'

'क्या आप नहीं जानते हैं ? आप ऐसा हार मेरे लिए लाए थे ? मुझे क्या ढाई सेरी से छाती कुटवानी थी ?'

'मैंने तो तुमसे पहले ही कह दिया था कि हार बहुत भारी है, तुमसे नही उठेगा । तुम सुकुमाल हो । अरे ! मुझे भी आश्चर्य हुआ जो एक छोटी-सी खरल हाथो से नही उठा सकती वह हार का भार इतने दिन तक कैसे उठाए रही ?'

पत्नी सारी बात समझ गई । उसने पति से क्षमा मागी तथा यह संकल्प किया कि अब वह सास के साथ सद्व्यवहार करेगी ।

इसी प्रकार बन्धुओ ! त्याग प्रत्याख्यान के विषय मे आनाकानी नही करते हुए जितनी शक्ति हो उतना-उतना यदि त्याग जीवन मे अपनाया गया तो यह जीवन सार्थक हो जायेगा । यह मनुष्य जीवन आत्मोत्थान के लिए प्राप्त हुआ है, भोग के लिए नही । अत शक्ति अनुसार त्याग अवश्य करना चाहिये ।

यह तो एक उदाहरण है, लेकिन हम लोगो को इससे शिक्षा

ग्रहण करनी चाहिये । मोह का त्याग कर वीतराग प्रभु के बताए मार्ग को जीवन मे स्थान देना चाहिये । बहू ने तो अपनी मिथ्या मान्यता को समझ लिया और उसे त्याग दिया लेकिन हम अभी भी जीवन के महत्व को नहीं समझ पाये हैं, अन्यथा श्रावक धर्म अथवा श्रमण धर्म को अंगीकार कर जीवन ज्योति को जागृत करने का प्रयास करते । चरित्र के पालन मे जो बाह्य कष्ट उत्पन्न होता है वह वास्तविक कष्ट नहीं है, वह तो सुखदाई है तथा संसार का सुख वास्तविक सुख न होकर केवल सुखाभास है । श्रीमद् रायचन्द्रजी ने ठीक ही कहा है-

अनन्त दु:ख, नाम सुख, अनन्त सुख नाम दु:ख,
उघाड़ न्याय नैत्र ने, निहाल रे निहाल तूँ ।

संसार में अनन्त दु:ख और नाम मात्र का सुखाभास है । सयम मे नाम मात्र का कष्ट है एवं अनन्त सुख है । इस तत्व को समझने की आवश्यकता है । शास्त्रो में कहा है कि

'संयम ही जीवन है, असंयम ही मरण है ।'

आज के इस पावन प्रसंग पर अपनी-अपनी शक्ति के अनुसार असयम का त्याग करे एव जीवन मे सयम को स्थान देवे । सयम का पालन सुखकारी है । किसी कवि ने भी कहा है-

संयम सुखकारी, जिन आज्ञा अनुसार, धन्य पाले जे नरनार ।
संयम सुखकारी आनन्दकारी, धन्य जाऊँ मैं बलिहार ॥

कर्म रज ने शीघ्र हटावे, आतम ना गुण सब प्रगटावे ।
जन्म मरण ना दु:ख मिटावे, होवे परम कल्याण ॥ संयम.

परम औषधी संयम जाणो, तीन लोक नो सार पिछाणो ।
शुद्ध समझ हृदय में आणो, अनुपम सुख की खान ॥ संयम.

स्तवन की कुछ कडियो का उच्चारण किया गया है । हम इसके भावो को ग्रहण करे । वास्तव में संयम आनन्दकारी है ।

प्रातः वह जल्दी ही दुकान पर चला गया । बहु ने उठकर देखा कि हार कुछ खराब हो गया । सोचा बराबर पहनने से हार घिसने लगा है । जब उसकी दृष्टि लॉकेट के भीतरी भाग पर गई तो काला-काला सा पदार्थ दिखाई देने लगा । अधिक गौर से देखने पर ढाई सेरी स्पष्ट दिखाई देने लगी । लोहे की ढाई सेरी देखते ही बहू की त्यौरियॉ चढ गई । हार खोल कर कमरे के एक कोने में पटक दिया ।

रात्रि को जब सेठ घर आया तो पत्नी का रग-ढंग देख कर सारी स्थिति को समझ गया । वह तो जान ही रहा था कि आज रंग आएगा । पत्नी का मुँह आवेश से फूल रहा था । पति से बात नही की । सेठ ने भी इस तरह पूछा जैसे कुछ जानता ही न हो- 'क्यो! क्या बात हुई ? क्या तुम्हारा स्वास्थ्य ठीक नही है ? या किसी ने कुछ कह दिया है ?'

'क्या आप नहीं जानते हैं ? आप ऐसा हार मेरे लिए लाए थे ? मुझे क्या ढाई सेरी से छाती कुटवानी थी ?'

'मैंने तो तुमसे पहले ही कह दिया था कि हार बहुत भारी है, तुमसे नहीं उठेगा । तुम सुकुमाल हो । अरे ! मुझे भी आश्चर्य हुआ जो एक छोटी-सी खरल हाथों से नही उठा सकती वह हार का भार इतने दिन तक कैसे उठाए रही ?'

पत्नी सारी बात समझ गई । उसने पति से क्षमा मांगी तथा यह संकल्प किया कि अब वह सास के साथ सद्व्यवहार करेगी ।

इसी प्रकार बन्धुओ ! त्याग प्रत्याख्यान के विषय मे आनाकानी नहीं करते हुए जितनी शक्ति हो उतना-उतना यदि त्याग जीवन मे अपनाया गया तो यह जीवन सार्थक हो जायेगा । यह मनुष्य जीवन आत्मोत्थान के लिए प्राप्त हुआ है, भोग के लिए नही । अतः शक्ति अनुसार त्याग अवश्य करना चाहिये ।

यह तो एक उदाहरण है, लेकिन हम लोगो को इससे शिक्षा

तप : एक ज्योति

तप ज्योति है और आत्मा इस ज्योति का स्थान है । तप में महान शक्ति है । तप आत्म शक्ति को जागृत करने का एक उत्तम साधन है । जिस प्रकार अग्नि में तप कर स्वर्ण अधिक उज्ज्वल बनता है, शुद्ध और निखालिश हो जाता है, उसी प्रकार तप के द्वारा आत्मा अधिक शुद्ध, शक्ति सम्पन्न एवं ज्योतिर्मय बनता है । पूर्व संचित कर्म तप से क्षय हो जाते हैं । अतः मोक्ष मार्ग में ज्ञान, दर्शन एवं चारित्र के साथ तप को चतुर्थ साधन के रूप में स्वीकार किया गया है ।

जिसने इसे ग्रहण किया है वही इसके आनन्द का अनुभव कर सकता है ।

प्रार्थना की कडियो में भी कवि ने यही कहा है कि प्रभु सुविधि जिनेश्वर ने राज-पाट का त्याग कर संयम ग्रहण किया और स्वयं के आत्मानुभव से अजर-अमर पद प्राप्त किया है ।

पर्युषण का पावन पर्व भी यही सन्देश दे रहा है कि हे आत्मा ! यदि तुमने अपनी दृष्टि बदल दी, संसार से मुँह मोडकर मोक्ष की ओर कर दिया तो मुक्ति कोई दूर नही है, निर्वाण असम्भव नहीं है । सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की आराधना कर अनन्त जीव मोक्ष में गये हैं । अतः हम भी अपनी आत्मा को जागृत करें ।

तत्त्वार्थ श्रद्धानं सम्यग्दर्शनम् । (तत्त्वार्थ सूत्र 1/2)

भावार्थ- पदार्थो पर यथार्थ रूप से श्रद्धा करना सम्यग्-दर्शन है ।

परस्परोपग्रहो जीवानाम् । (तत्त्वार्थ सूत्र 5/21)

भावार्थ- परस्पर के कार्य मे निमित्त होना - यह जीवो का उपकार है । { जीवों का परस्पर उपग्रह (सहायता करना) उपकार है । }

काय वाङ्मनः कर्म योगः । स आस्रवः ।

(तत्त्वार्थ सूत्र 6/1-2)

भावार्थ- काया, वचन और मन की क्रिया योग है जो कर्म का सम्बन्ध कराने वाला होने से आश्रव है ।

तपसा निर्जरा च । (तत्त्वार्थ सूत्र 9/3)

भावार्थ- तप से सवर और निर्जरा होती है ।

तप : एक ज्योति

तप ज्योति है और आत्मा इस ज्योति का स्थान है । तप में महान शक्ति है । तप आत्म शक्ति को जागृत करने का एक उत्तम साधन है । जिस प्रकार अग्नि में तप कर स्वर्ण अधिक उज्ज्वल बनता है, शुद्ध और निखालिश हो जाता है, उसी प्रकार तप के द्वारा आत्मा अधिक शुद्ध, शक्ति सम्पन्न एवं ज्योतिर्मय बनता है । पूर्व संचित कर्म तप से क्षय हो जाते हैं । अतः मोक्ष मार्ग में ज्ञान, दर्शन एवं चारित्र के साथ तप को चतुर्थ साधन के रूप में स्वीकार किया गया है ।

श्री सुविधि जिनेश्वर वंदिये हो, वन्दत पाप पुलाय ।
अष्ट कर्म नो राजवी हो, मोह प्रथम क्षय कीन ।
सुध सककित चारित्र नो हो, परम क्षायक गुणलीन ॥

प्रभु सुविधिनाथ की प्रार्थना की कडियो का उच्चारण किया गया । प्रार्थना जीवन का महत्वपूर्ण अंग है । कवि कहता है- 'वन्दत पाप पुलाय' अर्थात् वन्दना करने से पाप पुञ्ज नष्ट हो जाते है । यह सत्य है कि प्रभु का वन्दन, नाम एवं स्मरण पापो को नष्ट करने वाला है, लेकिन केवल हाथ जोड दिये, मस्तक झुका दिया या नाम स्मरण कर लिया उससे पाप नष्ट नही होने वाले है । पापो को नष्ट करने के लिए प्रभु स्मरण अन्तर से होना चाहिये । सुविधिनाथ द्वारा बताई हुई सु-विधि जीवन में उतारनी चाहिये, मन की एकाग्रता तथा समर्पण भाव पूर्वक अन्तरचेतना से वन्दन होना चाहिए । महाराजा श्रेणिक का उदाहरण हमारे सामने है । उन्होंने भगवान महावीर को एवं अन्य सन्तो को वन्दन कर छः नारकी के बन्धन काट दिये ।

भगवान की प्रार्थना के लिए शुद्धि का धरातल चाहिये। जब अन्तःकरण में शुद्धि का प्रवेश होता है, तब आत्मा शुद्ध साधना को अपनाने का प्रयास करती है । जब शुद्ध साधना की अभिलाषा होती है तो आत्मा सर्वप्रथम परमात्मा का स्मरण करती है । तीर्थङ्कर देव भी जब दीक्षित होते है तब सिद्ध भगवान को 'णमो सिद्धाणं' पद से नमस्कार करते है ।

सामान्यतया ससारी जीव परमात्मा के चरणो मे प्रार्थना कर अपने स्परूप की उज्ज्वलता मे वृद्धि करते है । प्रार्थना की प्रक्रिया से भावशुद्धि, कर्म शुद्धि तथा ज्ञान-दर्शन और चारित्र की अभिवृद्धि होती है ।

सम्यग् तप-

आज पर्वाधिराज पर्युषण का पॉचवा दिवस है । सम्यग्

चारित्र की आराधना के साथ सम्यग्तप का विशेष महत्व है, इसलिए उसके स्वरूप को भी समझना आवश्यक है । यो तो एक अपेक्षा से चारित्र मे तप का समावेश हो जाता है, फिर भी तप अपने आप मे महत्वपूर्ण तत्व है । मोक्ष मार्ग के साधनो मे चौथा साधन सम्यग्तप है । तीन का वर्णन पूर्व मे किया जा चुका है । प्रकारान्तर से दान, शील, तप और भाव को भी मोक्ष के साधन कहे है । कुछ भी हो तप का विशेष महत्व है ।

तप का अर्थ-

तप का संक्षिप्त शाब्दिक अर्थ है- 'तप्यन्ते कर्माणि अनेन इति तपः' अर्थात् जिसके द्वारा कर्मो को तपाया जावे, वह तप है । तपस्या के द्वारा पूर्व अर्जित कर्मो को नष्ट किया जाता है ।

उत्तराध्ययन सूत्र के 28वे अध्ययन में कहा है-

नाणेण जाणई भावे, दंसणेण य सद्दहे ।
चारित्तेण निगिण्हाइ, तवेण परिसुज्झई ॥

अर्थात् ज्ञान से पदार्थ का स्वरूप जाना जाता है, दर्शन से श्रद्धा होती है, चारित्र से कर्मो को रोका जाता है और तप से कर्मो को क्षय किया जाता है ।

तात्पर्य यह है कि जो कर्मो को नष्ट करने मे सहायक हो वही तप है । कहा है-

'इच्छा निरोहो तवो'

अर्थात् इच्छाओ का निरोध करना तप है । इन्द्रियो के अनुकूल विषयो तथा तृष्णा-आशक्ति आदि का निरोध करना तप है ।

तप का महत्व-

तप का महत्व बताने के लिए उत्तराध्ययन सूत्र के 29वे

अध्ययन में कहा है-

तवेणं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?
तवेणं वोदाणं जणयई ॥

अर्थात् हे भगवन् ! तप से जीव को किस फल की प्राप्ति होती है ?

भगवान् ने कहा- 'तप से सचित कर्म नष्ट होते है ।'

तप का जीवन मे बहुत महत्त्व है । सभी दर्शनो में प्रकारान्तर से किसी न किसी रूप में तप के महत्व को स्वीकार किया गया है । महाभारत मे मन, वचन और काया के तप का प्रतिपादन किया है । इस्लाम धर्म में भी रमजान के महीने मे रोजे रखे जाते हैं । जो उनके अपने तरीके का एक तप है । स्वयं मोहम्मद साहब ने कहा है- भूखे रहे बिना भूखे व्यक्ति की पीड कैसे जानी जा सकती है ? वैदिक मत में भी कई प्रकार के तप किये जाते है जैसे- एकादशी का व्रत, नवरात्रि तपस्या ।

जैनधर्म मे तो तपस्या का विशेष महत्व है । अन्य धर्मो की तपस्या काया-क्लेश तक ही सीमित है जबकि जैनधर्म मे विषद् विवेचन है । अन्तगड सूत्र का वाचन इन दिनो चल रहा है । जिसमे कई प्रकार के तपो का वर्णन किया गया है ।

तप का महत्व बताते हुए आचार्य स्वयंभव ने दशवैकालिक सूत्र की प्रथम गाथा मे ही कहा है-

'धम्मो मंगल मुक्किट्ठं, अहिंसा संजमो तवो ।'

इसमें तप को उत्कृष्ट धर्म का एक आवश्यक अग बताया है ।

इसी सूत्र मे आगे कहा गया है-

'तवसा धुणइं पुराण पावगं, जुत्तो सया तव समाहियं।'

अर्थात् हे मोक्षाभिलाषी मुनि ! तू सदा तप समाधि मे सलग्न रह, तप पुराने पापो को नष्ट कर देता है ।

संवर के द्वारा नवीन कार्यो को रोका जाता है । लेकिन पूर्व सचित कर्मो को क्षय करने के लिए तो एकमात्र तप ही अमोघ शस्त्र है । मनु स्मृति मे भी कहा है- 'तपस्या कल्मषं हन्ति' अर्थात् तप से मलीनता नष्ट होती है । किसी कवि ने कहा है-

तप बड़ो रे संसार में, जीवा उज्ज्वल थाये रे ।
कर्म रूप ईंधन जले, शिवरमणी सिधाये रे ॥

वास्तव मे कर्मो को नष्ट करने मे तप वहुत महान है। जिस प्रकार अशुद्ध सोना अग्नि में तपकर शुद्ध निखालिश कंचन वन जाता है, उसी प्रकार तप रूप अग्नि के द्वारा आत्मा में रहे हुए कर्म मल नष्ट हो जाते हैं और आत्मा अपने शुद्ध स्वरूप को प्राप्त कर सकती है ।

तप आत्मशक्ति का विकास-

तप मे असीम शक्ति है । इसके द्वारा आत्मा की शक्ति जागृत हो जाती है । उत्तराध्ययन सूत्र में तप को ज्योति कहा है-

'तवो जोई, जीवो जोई ठाणं'

तप ज्योति है और आत्मा उस ज्योति का स्थान है ।

तप के द्वारा शरीर भले ही कृश लगे, कमजोर अनुभव हो लेकिन तपस्वी की आत्मा बहुत ही शक्तिशाली होती है ।

अन्तगढ सूत्र मे काली, महाकाली आदि महारानियो का वर्णन हम प्रतिवर्ष सुनते है । उनका शरीर अत्यन्त कृश हो गया था, परन्तु अन्तः चेतना दृढ थी उससे आत्म शक्ति का विकास हुआ । तप से शाश्वत सुख का मार्ग प्रशस्त होता है । उत्तराध्ययन

सूत्र के अध्याय 3 मे कहा है-

भव कोड़ी संचियं कम्मं, तवसा निज्जरज्जई ।

अर्थात् करोडो भवो के सचित पाप कर्म तपस्या द्वारा क्षीण हो जाते है ।

वाल्मीकी रामायण मे कहा है-

'तपो ही परम श्रेय:'

अर्थात् तप ही परम श्रेष्ठ है, कल्याणकारक है ।

भगवान महावीर ने पूर्व जन्म मे नन्दन भूपति के भव मे कठोर तप की साधना की - ग्यारह लाख साठ हजार मासखमण की तपस्याएँ की । भगवान् महावीर के भव में भी उन्होने साढे बारह वर्ष तक कठोर तप किया, फलस्वरूप सिद्ध, बुद्ध मुक्त बने । बाहुबली मे जो अद्वितीय शक्ति थी, जिसके बल पर उन्होने भरत जैसे चक्रवर्ती को युद्ध मे परास्त किया, इस शक्ति का क्या रहस्य था ? पूर्व भव मे की गई कठोर तपस्या के फलस्वरूप ही उन्हे ऐसी विशिष्ट शक्ति मिली ।

भगवान महावीर के चौदह हजार शिष्यो मे धन्ना अणगार को जो विशिष्ट स्थान था वह तप और त्याग के कारण ही था। भगवान् ने उनकी प्रशसा की । कवि कहता है-

धन्ना मुनि धन मानव भव पायो, श्रीमुख यूँ फरमायो ।
श्रेणिक पूछे, वीरजी भाखे, उत्तम मुनिवर सारा ॥
रजमें तजमें तरतम जोगे, अधिक धन्ना अणगारा ।
निरन्तर तप बेले-बेले पारणे उच्छित आहारो ।
समण वणिमग कोई न वंछे, किम तुम कंठ उतारो ॥
बार इक्कीस जल माही धोई, ते अन्न खाई जल पीयो ।
एसो तप सुनि उर कम्पे, धन-धन थारो जीयो ॥

तीर्थङ्कर पद प्राप्ति के बीस उपाय है, उनमे तपस्या के दो

बोल है । सातवें बोल मे तपस्वी का गुणगान करे, सेवा भक्ति करे और चौदहवें बोल में तपस्या करने से तीर्थङ्कर नाम कर्म का बन्ध होता है ।

तप का इतना महत्व है कि तप करने वाले का गुणगान करने, भक्ति करने से भी तीर्थङ्कर पद की प्राप्ति हो सकती है ।

तप से संवर और निर्जरा होती है-

तत्वार्थ सूत्र मे लिखा है- 'तवसा निर्जरा च' अर्थात् तप से सवर और निर्जरा होती है । साधक संवर के द्वारा बाहर से आने वाले नये कर्मो को रोक देता है और भीतर मे रहे हुए कर्मो को तपके द्वारा क्षय करता है । जिस प्रकार किसी तालाब को सुखाने के लिए बाहर से आने वाले गंदे पानी के नालो को बन्द किया जाता है, गदे पानी को तालाब मे आने से रोका जाता है, फिर भीतर रहे हुए पानी को सूर्य की गर्मी से या किसी बाहरी साधन से उलीच कर तालाब खाली किया जाता है । उसी प्रकार आत्मा रूपी तालाब मे कर्म रूपी मालिन पानी को नष्ट करने के लिए पहले आश्रव द्वारो से आने वाले कर्मो को सवर रूपी पाल बॉध कर रोका जाता है अर्थात् कर्मो को आत्म प्रदेशो के साथ सम्बन्ध होने से रोका जाता है । जिससे बाहर से कर्मो का आना बन्द हो जाता है, फिर पूर्वबद्ध कर्मो को क्षय करने के लिए तप रूपी अग्नि का प्रयोग किया जाता है, जिससे पूर्व अर्जित कर्म सूख जावे, नष्ट हो जावे । यह निर्जरा है ।

जहा महा तड़ागस्स, सन्निरूद्धे जलागये ।
उस्सिचणाए तवणाए, कमेणं सोसणा भवे ॥5॥

अर्थात् जिस प्रकार किसी विशाल तालाब मे आने-वाले जल मार्गो को रोक दिया जावे और फिर भीतर का गन्दा जल ताप के द्वारा सिंचाई मार्गो द्वारा वाहर निकाल कर तालाव को सुखाया जाता है । उसी प्रकार-

एवं तू संजयस्सावि, पाव कम्म निरासवे ।
भव कोडी संचिय कम्मं, तवसा निज्जरिज्जई ॥6॥

अर्थात् संयमी साधक द्वारा नवीन पाप कर्मो को रोक देने पर करोडों भवों के संचित पाप कर्म तप से क्षीण हो जाते है ।

कर्मो की निर्जरा तव ही संभव है जब आत्मा तप के सम्यग् स्वरूप को समझकर उसे जीवन मे उतारे । यदि सम्यग् स्वरूप को समझे बिना तप किया गया तो वह तप नही ताप होगा । तप का सम्वन्ध मात्र शरीर से नहीं है उसका सम्बन्ध आत्मा से है । यदि लोक दिखावे, आडम्वर युक्त प्रसिद्धि प्रशंसा के लिए एव किसी भौतिक कामना को लेकर तप किया गया तो वह लाभदायक नही होगा । उससे अकाम निर्जरा हो सकती है । यहॉ तक कि कुछ लब्धियॉ भी प्राप्त हो सकती है । परन्तु ये सब मोक्ष मार्ग के लिए सहायक नहीं हैं । यही नही अज्ञान तप भव भ्रमण का कारण भी है । क्योकि इससे धर्म के मूल अहिसा, दया का पालन भी नही हो पाता ।

प्रभु पार्श्वनाथ एवं कमठ का उदाहरण हमारे सामने है । उनके समय मे कमठ तापस द्वारा ग्रीष्मकाल की भीषण गर्मी मे चारो ओर लकडी जलाकर अग्नि का ताप लिया जा रहा था । परन्तु उसे क्या पता कि उसकी इस आडम्बरयुक्त क्रिया से पंचेन्द्रिय प्राणियो की हिसा हो रही है? नाग-नागिन लक्कड में जल रहे है । ऐसा तप मोक्ष का साधन कैसे हो सकता है ? केवल शरीर को तपा देना तप नही है । तप तो ताप से छुटकारा पाने का साधन है । पर-पदार्थो का मोह और विकारो की अग्नि अन्तः चेतना को जलाती है । क्योकि उनमें फॅसे रहने के कारण आत्मा विकृत हो जाती है । उस दिशा मे तप परिवर्तन ला देता है, आत्मा मे फौलादी शक्ति का सचार कर देता है । तप से जब आत्मा तपती है तो उसका स्वरूप अपने चरम उत्कर्ष को प्राप्त कर लेता है । इसके विपरीत ताप से आत्मा विकृत हो जाती है, मार्ग विमुख हो जाती है । अज्ञानी का, मिथ्यात्वी का करोडों वर्षो का तप सम्यक्त्वी के एक नवकारसी तप के समान भी नही है । कहा है-

जं अन्नाणि कम्मं खवेइ, बहुयाहिं वास कोडी हि ।

तं नानी तिहि गुत्तो, खवेइ उसास मिसेणं ॥ (भगवती सूत्र)

अज्ञानी जीव हजारो वर्षो तक तप करके जितने कर्मो को नष्ट नही कर पाता उतने कर्मो को ज्ञानी श्वासोश्वास मात्र अल्प समय मे नष्ट कर देता है । इसलिए सम्यग्तप का महत्व है ।

तप के भेद–

जैन आगमो मे तप के प्रमुख दो भेद किये है- 1 बाह्य तप और 2. आभ्यन्तर तप ।

1. बाह्य तप-

जिस तप का सम्बन्ध शरीर से हो, अन्न, जल वस्त्रादि से हो, वह बाह्य तप कहलाता है । लेकिन यदि गहराई से चिन्तन किया जावे तो बाह्य तप केवल शरीर से सम्बन्धित नही है । बाह्य तप मन पर भी गहरा प्रभाव डालता है । आभ्यन्तर तप की साधना के लिए मन, वचन एव काया की शुद्धि अपेक्षित होने से पहले बाह्य तप के माध्यम से योगो को अशुभ से निवृत्त करने का प्रयास किया जाता है । इस दृष्टि से बाह्य तप, आभ्यन्तर तप का पूरक है । यदि यो कहा जाय कि बाह्य तप के अभाव मे आभ्यन्तर तप सम्भव नही है तो कोई अतिशयोक्ति नही होगी । अतः ये बाह्य तप है, यह सोचकर इनकी उपेक्षा नहीं करनी चाहिये । अपितु आभ्यन्तर तप साधना के अनुरूप बाह्य तप की साधना भी आवश्यक है। बाह्य तप छः प्रकार के है ।

1 <u>अनशन-</u> आहार का त्याग करना अनशन तप है । आहार चार प्रकार का होता है-1 अशन 2 पान 3 खाद्य 4 स्वाद्य । चारो प्रकार के आहार का त्याग अनशन तप है । यह भी दो प्रकार का है- (अ) अल्प समय के लिए त्याग करना इत्वरिक अनशन तप है । (आ) जीवन पर्यन्त- सदैव के लिए आहार का त्याग करना यावज्जीवन अनशन है ।

2 <u>ऊनोदरी-</u> जो व्यक्ति पूर्ण रूप से आहार का त्याग नही कर सकते, वे आशिक रूप से आहार का त्याग कर भी तप कर

सकते हैं । आवश्यकता से कुछ कम आहार करना ऊनोदरी तप कहलाता है । जैसे कोई व्यक्ति छः रोटी खाता है, उसे छः रोटी की भूख है और जब वह इच्छापूर्वक कुछ त्याग करता है तो यह उसके लिए ऊनोदरी तप होगा । जितने अंश मे त्याग अधिक होगा, उतना ही अधिक ऊनोदरी तप होगा । ऊनोदरी तप भी दो प्रकार का होता है- (अ) द्रव्य ऊनोदरी (आ) भाव ऊनोदरी । कषाय को घटाना भाव ऊनोदरी है । आहार, वस्त्र, उपकरण आदि का आशिक त्याग द्रव्य ऊनोदरी है । भूख से एक ग्रास कम खाना भी ऊनोदरी तप है ।

3. <u>भिक्षाचरी-</u> संयमी साधक जीवन चलाने के लिए भिक्षा द्वारा आहार ग्रहण करते है । उनकी भिक्षाचरी तीर्थङ्कर भगवान् के बताये नियमो के अनुसार ही होती है । इसलिए यह भी तप है ।

अणगार के आहार प्राप्ति के नियम बहुत कठोर होते है । सरलता के आहार नही मिलता है । इसलिए भिक्षाचरी भी तप है ।

4. <u>रस परित्याग-</u> रसना इन्द्रिय पर नियन्त्रण करना, खाते हुए रस लोलुपता का त्याग करना रस परित्याग तप है। रस इन्द्रिय को वश मे करना बहुत कठिन है । जो आत्मार्थी रसो का त्याग कर केबल शरीर निर्वाह की दृष्टि से आहार करते है, वे धन्य है, उनका भोजन करना भी तप है ।

5. <u>काय क्लेश-</u> शरीर को कष्ट देना, सुखमय जीवन का त्याग करना काय-क्लेश तप है । विभिन्न प्रकार के योगासन करना, शीत, ताप आदि सहन करना, विभिन्न प्रकार की आतापनाएँ लेना इस तप के अन्तर्गत आते है ।

6 <u>प्रतिसलीनता-</u> इन्द्रियो को वश मे करना, योगो पर नियन्त्रण करना, कषाय पर विजय प्राप्त करना प्रतिसलीनता तप है ।

2. आभ्यन्तर तप-

जिन तपों का सम्बन्ध अन्तर से हो, उन्हे आभ्यन्तर तप कहते हैं । ये बाह्य तप की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण है, अधिक लाभदायक है । ये भी छः प्रकार के होते है-

1 प्रायश्चित- जीवन मे लगे दोषो का पश्चाताप करना, अपनी भूलो को गुरु के समक्ष सरल भाव से प्रकट कर उनके द्वारा प्रदत्त दण्ड स्वीकार करना प्रायश्चित तप है । इससे आत्म-शुद्धि होती है । चारित्रवान मुनिराज अपने जीवन में दोष नही लगाना चाहते, फिर भी छदमस्त अवस्था मे दोष लगना स्वाभाविक है, अतः दोषो की शुद्धि के लिए प्रायश्चित लिया जाता है ।

2 विनय- विनय को धर्म का मूल कहा है-

'विणओ धम्मो मूलो'

गुणवानों का सम्मान करना, बहुमान करना विनय तप है ।

3. वैय्यावृत्य- वैय्यावृत्य का अर्थ है सेवा करना । वृद्ध, रूग्ण, तपस्वी आदि साधु, आचार्य की सेवा करना वैय्यावृत्य तप है । यह भी पात्र भेद से दस प्रकार का है

4 स्वाध्याय- यह समास पद है । इसमे 'स्व' एवं 'अध्याय' दो संयुक्त शब्द है । स्व = अपना, अपनी आत्मा का अध्याय = अध्ययन-ज्ञान । तात्पर्य यह है कि अपनी आत्मा का ज्ञान करना । आत्मा शुभ मे प्रवृत्त है या अशुभ मे इसका अध्ययन करना स्वाध्याय है । स्थूल रूप में सद्-साहित्य का अध्ययन करना स्वाध्याय तप है । इसके पॉच भेद है- 1 वाचना 2. पृच्छना 3. परिवर्तना 4. अनुप्रेक्षा और 5. धर्मकथा

5 ध्यान- परमात्म पद की प्राप्ति करना आत्मा का ध्येय है । उस ध्येय के अनुरूप मन, वचन एवं काया की स्थिरता पूर्वक दृष्टाभाव से ध्याता एवं ध्येय की अनुभूति करना ध्यान है । यह ध्यान का सूक्ष्म स्वरूप है । स्थूल रूप मे मन की एकाग्रता के साथ विविक्षित वस्तु अथवा विषय पर मन को केन्द्रित करना भी ध्यान

कहा जाता है ।

6. व्युत्सर्ग- शरीर से भी ममत्व हटा देना व्युत्सर्ग तप है । व्युत्सर्ग का अर्थ है-त्याग । पर-पदार्थो से, यहॉ तक कि शरीर पर से भी ममत्व हटाना ।

इस प्रकार संक्षेप मे तप के भेदो का वर्णन किया है । बाह्य और आभ्यन्तर भेदो का घनिष्ठ सम्बन्ध है । दोनो ही महत्वपूर्ण हैं। परन्तु बाह्यतप की शोभा आभ्यन्तर तप से है । आभ्यन्तर तप जैन दर्शन की विशेष देन है । अन्य दर्शनो में बाह्य तप को स्वीकार किया है जो काया-क्लेश तक ही सीमित है । लेकिन जैन दर्शन ने तप को मन एवं आत्मा से अधिक सम्बन्धित किया है । महाभारत मे तप के तीन भेद किये हैं- 1. मन तप 2. वचन तप 3 काया तप ।

तप से लाभ-

तप से सबसे बडा लाभ है-कर्मो की निर्जरा-आत्म शुद्धि । इसके साथ ही सांसारिक कई लाभ तप से होते है । सर्वप्रथम तो यह शारीरिक स्वस्थता के लिए परम आवश्यक है । आज अधिकाश रोग आहार की अशुद्धता एव अति आहार के परिणाम स्वरूप है । प्रतिदिन आहार करते रहने से शरीर मे कई प्रकार की विकृतियॉ पैदा हो जाती है । आयुर्वेद मे उसे वात, पित्त और कफ के नाम से जाना जाता है तथा प्राकृतिक चिकित्सा मे उसे विजातीय द्रव्य के नाम से सम्बोधित किया है । वात, पित्त, कफ की वृद्धि अथवा क्षय की अवस्था मे शारीरिक असमाधि हो जाती है, जिससे साधक साधना मे पूर्णतया समर्पित नही हो सकता । अतः अनशन आदि तप के माध्यम से पहले उस विजातीय तत्वो को दूर किया जाता है। तप से जब विकृति-अस्वस्थता दूर हो जाती है तब आत्मिक साधना समीचीन रीति से गतिशील होती है । इस प्रकार तप शारीरिक स्वस्थता के साथ-साथ आध्यात्मिक साधनो मे भी लाभप्रद है । तप अच्छे स्वास्थ्य की कुञ्जी है। राष्ट्रपिता महात्मा गॉधी ने भी तप के महत्व को स्वीकार किया है, जीवन मे तप को उतारा है । आज भी

भारत मे अन्न समस्या विद्यमान है । भूतपूर्व प्रधानमन्त्री श्री लालबहादुर शास्त्री ने तो सोमवार को व्रत रखकर अन्न समस्या को सुलझाने की अपील की थी । यदि आज देश मे प्रत्येक नागरिक अनिवार्य रूप से थोडा-थोडा तप का आचरण करे तो अन्न समस्या का समाधान कठिन नही ।

तप से आत्मबल में वृद्धि होती है । कई प्रकार की लब्धियाँ प्रकट हो सकती हैं । श्रीकृष्ण महाराज ने तो तेले की तपस्या करके देव को आमन्त्रित किया था । आयम्बिल तप के कारण द्वारिका की रक्षा हुई । सति मैना सुन्दरी ने आयम्बिल तप की साधना कर अपने पति श्रीपाल सहित सात सौ कोढियो की कोढ दूर करने मे सफलता प्राप्त की ।

तप निर्जरा के लिए हो-

यद्यपि तप से कई प्रकार के भौतिक लाभ होते हैं, परन्तु यह गौण है । मुख्य लाभ तो कर्मो की निर्जरा है । दशवैकालिक सूत्र मे इन भौतिक उपलब्धियों की कामना से तप करने का निषेध किया गया है । एकान्त निर्जरा के लिए ही तप करना चाहिये । जिस प्रकार अनाज की खेती करने वाले किसान को अनाज के साथ-साथ पराल (खाकला) तो स्वतः प्राप्त हो जाता है । उसी प्रकार साधक को तप करने से भौतिक उपलब्धियाँ तो पराल की तरह प्राप्त होती ही हैं, लेकिन अनाज की तरह मोक्ष रूपी परमपद की प्राप्ति भी होती है । इसलिए तप निर्जरा की कामना से ही किया जावे। अन्य किसी भी प्रकार के फल की इच्छा करना तप के गौरव को कम करना है ।

तप में महिलाएँ अग्रणी हैं-

वर्तमान समय में महिलाओ मे तप की रूचि अधिक पायी जाती है । यद्यपि पुरुष वर्ग मे भी तपस्याएँ होती है, तथापि महिलाएँ इस क्षेत्र मे अग्रणी है । सामान्य तपस्याओ के अलावा अठाई,

मासखमण, वर्षीतप एवं अन्य वडी तपस्याएँ भी महिलाएँ काफी संख्या में करती हैं । कई महिलाएँ मासखमण से भी अधिक तप करती हैं । हमारे गुणवान साधु एवं विदुषी साध्वीयाँ भी इस क्षेत्र मे बहुत आगे हैं । लगभग 2-2 माह की तपस्या करने वाले अनेक सन्त-सतियाँ विद्यमान है । वे श्रमण संस्कृति के चमकते सितारे हैं।

तप आडम्बर रहित हो-

यद्यपि तप में वृद्धि हो रही है, लेकिन खेद है कि इसमें विकृति भी बढ रही है । आज-कल तप मे आडम्बर, प्रदर्शन एव कुरूढियाँ बढती जा रही है । तपस्या में मधुर गाने-बाजे बजाना, प्रभावनाएँ वितरित करना तथा सुन्दर वस्त्राभूषण का प्रयोग इसकी विकृतियाँ हैं । मुख्यतया बहनो मे इस मनोवृत्ति का प्राबल्य है किन्तु यह बात अच्छी नही है। तप को प्रदर्शन और आडम्बर से मुक्त रखा जाना चाहिये । तपस्वी बहनो को आडम्बर का त्याग करना चाहिये । बहुमूल्य वस्त्राभूषण की अपेक्षा सादगी अपनाना चाहिये । तप के वास्तविक स्वरूप को समझना चाहिये । कभी-कभी तपस्वी सन्त-सतियो पर भी इस प्रदर्शन एवं आडम्बर का प्रभाव हो जाता है । वे भी इस चक्कर में फँस जाते हैं । कुछ भी हो यह अच्छा नही है । तपस्या मे आडम्बर नहीं होकर साधना होनी चाहिये ।

कषाय का उपषम करो-

तप का जीवन मे बहुत महत्व है । पर्युषण पर्व के पावन दिवस हमे सम्यग्तप के लिए प्रेरित करते है । कषायो को उपशान्त करना, इन पर नियन्त्रण रखना तथा इन्द्रियो पर नियन्त्रण करना तप है । वास्तव में कषाय विजय आन्तरिक तप है । कहा है-

क्रोड वर्ष तक तप तपे, एक सहे कोई गाल ।
वामे नफो है गणो, मेटो मन की जाल ॥

समर्थ होते हुए भी गाली सहन करता, निन्दा सहन करना,

क्रोध नहीं करना, अनशन आदि की अपेक्षा महान तप है । कषाय को उपशान्त करना दूभर कार्य है । करकण्डु अणगार का उदाहरण आपने सुना होगा । क्षुधा वेदनीय कर्म का ऐसा उदय था कि नवकारसी तप करना भी अत्यन्त कठिन था । सवत्सरी महापर्व का दिवस आ गया । करकण्डू अनगार ने अपने गुरु से गोचरी लाने की आज्ञा मागी । उनके साथी सन्तो ने निन्दा की परन्तु गुरु बहुत गम्भीर थे। उन्होने सम्वत्सरी का महत्व समझाते हुए मुनि को समझाया भी सही पर मुनि ने क्षुधा वेदनीय को सहने मे असमर्थता बतलायी तो 'अहासुहं देवाणुप्पिया' के रूप मे अनुमति दे दी। करकण्डु अणगार को गोचरी में शीत तथा रूक्ष खिचडी प्राप्त हुई । वे खिचडी गुरु को दिखाकर आहार करने बैठे । अन्य सन्तो को करकण्डु अणगार की यह प्रवृत्ति पसन्द नही आई । उन्होने मुँह पर ही उन्हे भला-बुरा कहा । कुछ तपस्वी सन्तो ने रोटीराम, पेटू आदि तक कह दिया । उन्होंने कहा- अरे करकण्डु ! आज तो सम्वत्सरी महापर्व है, छोटे-छोटे बच्चे भी उपवास करेगे और तू आहार करेगा । घर छोड दिया तो रसना इन्द्रिय पर कोई नियन्त्रण नहीं किया । करकण्डु अणगार ने समभाव पूर्वक सब कुछ सहन किया । एक तपस्वी सन्त ने कहा- 'देखूँ तो क्या आहार लाया है ? मुझे दिखा ।' करकण्डु ने सहज भाव से आहार का पात्र तपस्वी सन्त को दिखा दिया । तपस्वी सन्त ने ग्लानिपूर्वक उस आहार को देखा और खिचडी मे थूँक दिया ।

करकण्डू अणगार ने सोचा- ये तपस्वी सन्त कितने महान है । मेरी खिचडी मे घी का अभाव था उन्होंने उसकी पूर्ति कर दी है। सब कुछ समभाव पूर्वक सहन करने के बाद वे एकान्त मे आहार करने बैठे । उन्हे अपने साथी सन्त की बाते याद आ गई । विचार किया-मुझे धिक्कार है, आज छोटे-छोटे बच्चे उपवास करेगे और मैं कैसा अभागा हूँ कि आज भी आहार का त्याग नही कर सका । मेरे साथी सन्त धन्य है, जो बडी-बडी तपस्याएँ करते है । उन्होने चिन्तन किया, विचार किया एव पश्चाताप किया । अपने क्षुधा

वेदनीय कर्म के उदय से अत्यन्त खेद हुआ । अपने आप पर ग्लानि हुई । बार-बार अपने आपको धिक्कारते हुए खिचडी का एक कवल हाथ में लिया । उसे मुँह मे रखना चाहते है, साथ ही पश्चाताप भी हो रहा है । पश्चाताप की अग्नि में उन्होने अपने कठोर घाति कर्मो को क्षय करना प्रारम्भ किया । गुणस्थानो में आरोहण करते हुए तेरहवे गुणस्थान मे पहुँच गये, सर्वज्ञ बन गये, केवलज्ञान, केवलदर्शन प्राप्त कर लिया । करकण्डु अणगार केवली बन गये ।

यह आभ्यन्तर तप का स्वरूप है । अन्य सन्तो ने तप तो किया पर जीवन में तप को उतारा नहीं । तप के स्वरूप को समझा नही ।

उपवास की व्याख्या निम्न प्रकार से की गई है -

'विषय कषाय आहारः, त्यागो यत्र विधियते ।
स उपवासः विज्ञेयः, शेष लंघन विदुः ॥

जब विषय कषाय और आहार इन तीनो का एक साथ त्याग किया जावेगा तब वह उपवास कहलायेगा । अन्यथा वह केवल लघन की कोटि मे आ सकता है, जिसमे आहार मात्र का त्याग है । करकण्डु अणगार ने अनशन भले ही न किया हो पर विषय और कषायो को तिलाजलि दे दी ।

अन्त मे यही कहना उपयुक्त होगा कि तपस्या के माध्यम से इस पावन पवित्र अवसर पर अपनी आत्मा से कषाय भावना को हटावे । महापुरुषो का जीवन वृतान्त सुनकर तप की प्रेरणा प्राप्त करें । तप की अद्‌भुत शक्ति को पहचाने और कर्मो को काटने का प्रयत्न कर, इस दुर्लभ मानव भव को सफल बनावे । देवता भी इस मानव भव के लिए तरसते है। उन्हे वैभव, ऋद्धि-समृद्धि तो बहुत प्राप्त है लेकिन त्याग-तप की आराधना उनके लिए अशक्य है । सम्यग्तप की आराधना मुख्यतया मानव भव मे ही सम्भव है । इसलिए इस महान अवसर का लाभ उठाएँ । तप के माध्यम से

कर्मो को नष्ट करें । कवि भी प्रार्थना के माध्यम से यही कहना चाहता है कि सुविधि जिनेश्वर की प्रार्थना कर मै मोक्ष का वरण करूँ ।

दान की महिमा

दान देने से धन घटता नहीं है, वरन बढता है । प्रकृति भी हमें दान की शिक्षा देती है । भूमि में कृषक एक दाना डाल कर अनेक दाने प्राप्त करता है, आम की गुठली बोने से बोने वाले को हजारों-हजार आम मिलते हैं । जिस कुए का पानी उपयोग में लाया जाता है उसमें निर्मल जल भरा रहता है तथा इसके विपरीत जिस कुए में पानी भरा ही रहता है वह कुआ गंदा हो जाता है, पानी दुर्गन्ध युक्त हो जाता है । वृक्ष संसार को फल एवं छाया प्रदान करते हैं, नदी तालाब आदि जल प्रदान करते हैं । अतः मानव को भी उदार होना चाहिये ।

श्री अभिनन्दन, दु:ख निकन्दन, वन्दन पूजन योगजी ।
आशा पूरो, चिन्ता चूरो, आपो सुख आरोगजी ॥ श्री.
'संवर' राय 'सिधारथ' राणी, तेहनो आतमजातजी ।
प्राण पियारो साहिब सांचो, तुँ ही मात ने तातजी ॥ श्री...
कइयक सेव करे शंकर की, कइयक भजे मुरारजी ।
गणपति सूर्य उमा कइ सुमरे, हुँ सुमरूँ अविकारजी ॥ श्री.
देव कृपा सूँ पामे लक्ष्मी, सो इण भव को सुखजी ।
तू तूठा इण भव परभव में, कदी न व्यापे दु:खजी ॥ श्री.

श्री अभिनन्दन प्रभु के चरणो मे प्रार्थना की कडियो के माध्यम से मंगलाचरण का प्रसंग उपस्थित हुआ है । भक्त किस आशा से भगवान की प्रार्थना करता है । भक्त कहता है- प्रभु आप दु:खो का नाश करने वाले हो । जो दु:खो का नाशक होगा वही वन्दन-पूजन करने योग्य हो सकता है । भगवान् अभिनन्दन दु:खो को नष्ट करने वाले है इसलिए उनकी प्रार्थना की गई है ।

विचारणीय यह है कि दु:ख क्या है ? जिसके विनाश के लिए भक्त प्रभु से प्रार्थना करता है । प्रमुख दु:ख है, जन्म, जरा और मरण । ससार परिभ्रमण ही दारूण दु:ख है । यदि जीव का जन्म मरण समाप्त हो जावे, ससार परिभ्रमण नष्ट हो जावे, भव चक्र मिट जावे तो दु:खो का विनाश हो सकता है । जीव जब कर्मो से मुक्त हो जाता है तो शाश्वत, अव्याबाध सुख मे स्थित हो जाता है ।

सच्चा सुख-

संसार के बाह्य सुख तो क्षणिक हैं, नश्वर है । ये सुख तो पुन: दु:ख मे परिवर्तित हो जाने वाले हैं । लेकिन मोक्ष का सुख अनन्त है, पूर्ण एव शाश्वत है । इसलिए भक्त भगवान से प्रार्थना करता है-

'आशा पूरो, चिन्ता चूरो, आपो सुख आरोगजी ।'

हे भगवन् ! मेरी सांसारिक चिन्ताओं को मिटाकर मेरी

आशा पूर्ण करो, मुझे आरोग्य सुख प्रदान करो ।

भक्त भगवान से बाह्य सुख धन-वैभव, सम्पत्ति-सत्ता की मॉग नही करता । वह तो मांगता है आरोग्य सुख अर्थात् जिस सुख मे दुःखद्वन्द्व आदि किसी तरह का रोग न हो, मात्र सुख ही सुख हो। ऐसा दुःखद्वन्द रहित शाश्वत सुख वीतराग देवों ने प्राप्त कर लिया है । उनका आदर्श सन्मुख रखकर उनके द्वारा बतलाये गये मार्ग पर चलने से भक्त भी उस शाश्वत सुख को प्राप्त कर सकता है । भगवान् का आदर्श साधक के सन्मुख बना रहे इस दृष्टिकोण से आदर्श महापुरुषों की प्रार्थना आदि का प्रसंग उपस्थित किया जाता है ।

याचना करते समय, मॉगते समय इस बात के विवेक की भी आवश्यकता है कि किससे क्या वस्तु मांगी जावे ? यदि कोई जोहरी की दुकान पर जाकर सब्जी की मांग करे या चने आदि की माग करे तो यह उसकी अज्ञानता होगी । जोहरी की दुकान पर तो रत्न ही मिल सकते हैं । यदि रत्नों की आवश्यकता है और सब्जी विक्रेता से मांग करे तो वह कहाॅ से देगा । इसलिए जिन्होने सिद्धत्व को प्राप्त कर लिया, उन्हीं से सिद्धत्व की माग करना उचित होगा ।

भक्त कवि विनयचन्दजी आगे कहते है-

'कइयक सेव करे शंकर की, कइयक भजे मुरारजी ।
गणपति सूर्य उमा कई सुमरे, हुँ सुमरूँ अविकारजी ॥

वे कहते है कि ससार के कई प्राणी ऐसे विभिन्न देवो की सेवा करते है, जो वीतराग नहीं है, अविकारी नहीं है । लेकिन मै तो निर्विकार प्रभु की भक्ति करता हूॅ । जिसे वीतराग बनना है, वह वीतराग की भक्ति करेगा और जिसे ससार मे रहना है वह राग-द्वेष युक्त देवो की भक्ति करेगा । नाव स्वय तिरती है अतः दूसरो को तिराने मे सक्षम है । पत्थर का स्वभाव डूबना है, इसलिए वह अन्य को तिराने मे सक्षम नही है । उत्तराध्ययन सूत्र के 20वे अध्ययन मे

महाराजा श्रेणिक और अनाथी मुनि का संवाद है। महाराजा श्रेणिक से अनाथी मुनि कहते हैं- राजा ! तु स्वयं अनाथ है, फिर दूसरो का नाथ कैसे हो सकता है।

पर्वराज पर्युषण का यह पावन प्रसंग संसार सागर से पार होने की प्रेरणा देता है। जीवन में ऐसे प्रसग बार-बार नही आते। इस प्रसग से विचार करना है, चिन्तन करना है कि किस प्रकार दु:खो से मुक्ति मिले। मुक्ति के लिए पुरुषार्थ करने से ही मुक्ति मिल सकती है। ससार के लिए पुरुषार्थ करने पर भौतिक अभिवृद्धि सम्भव है, पर सच्चा सुख मिलना असम्भव है। वर्तमान युग मे मानव सामान्यतया यह सोचता है कि जिसके पास धन-सम्पत्ति और वैभव अधिक है, सुख सुविधा के भौतिक साधन अधिक है, वह अधिक सुखी है। पर वास्तव मे ऐसा नहीं है। प्रथम तो तृष्णा की सीमा न होने से हर मानव अपने से अधिक धनी व्यक्ति की ओर देखता है तथा उसकी ऋद्धि देखकर दु:खी होता है। स्वय भी वैसा बनना चाहता है। फिर धनी व्यक्तियो को कहाँ सुख है ? यदि हम उनका अन्तर मन टटोले तो उन्हे दु:खी ही पावेगे। उन्हे रात-दिन पैसा कमाने की चिन्ता बनी रहती है। रात को ठीक से नीद नही आती। कई व्यक्तियो को तो नींद की गोलियाँ खाकर नीद लेनी पडती है। टेलीफोन पास मे लगा कर सोने से कही टेलिफोन ने नीद खोल दी तो पुन: नींद आना कठिन हो जाता है। कई सेठ तो भोजन भी आराम से नही कर पाते। अब आप ही विचार करे कि जो व्यक्ति ठीक से खा नही सकता, सो नही सकता, फिर उसे क्या सुख है ? वह तो धन का सग्राहक है, धन का रक्षक है, उपभोक्ता नही। इसीलिए सम्यक् विचार करना चाहिये, सुख के वास्तविक स्वरूप को समझना चाहिये।

किसी कवि ने कहा है-

गौ धन, गज धन, वाजि धन, और रतन धन खान।
जब आवे सन्तोष धन, सब धन धूलि समान॥

दान दिवस-

पर्युषण पर्व का आज छठा दिवस है । आज दान पर कुछ सुनाने का प्रसंग है । कल तप के विषय मे कुछ विचार रखे गये थे । तप और दान का घनिष्ठ सम्वन्ध है । दोनो मे ममत्व घटता है और समत्व की अभिवृद्धि होती है । शरीर एवं भोजन सामग्री पर ममत्व घटने पर तप करने की भावना होती है तो भौतिक पदार्थो पर ममत्व घटने पर दान देने की इच्छा होती है । तप की शोभा दान से है ।

दान का अर्थ-

दान का अर्थ है- देना । 'दीयत इति दानम्' अर्थात् जो दिया जाता है वह दान है । अधिक स्पष्ट शब्दो मे दान की व्याख्या है-

'अनुग्रहार्थ स्वस्याति सर्गो दानम्'

(तत्वार्थ सूत्र- अ 7, गा 33)

अर्थात् अपने और दूसरे के अनुग्रह के लिए जो धन का त्याग किया जाता है, उसे दान कहते है ।

दान का महत्व-

मोक्ष मार्ग मे दान का विशेष महत्व है ।

'दाणं, सीलं च तवो भावो एवं चउव्विहो धम्मो'

अर्थात् दान, तप, शील और भाव यह चार प्रकार का धर्म है ।

इनमे दान को प्रथम स्थान पर लिया गया है । गृहस्थ के लिए दान की प्रधानता है तथा साधुओ के लिए तप एवं सयम की प्रधानता है । दान देना गृहस्थ धर्म का परम कर्तव्य है । महाकवि तुलसीदासजी ने भी दान को अत्यन्त आवश्यक बताया है-

तुलसी जग में आय के, कर लीजे दो काम ।
देने को टुकड़ो भलो, लेने को हरिनाम ॥

विश्व के सभी दर्शन एव धर्मो मे दान की महत्ता को स्वीकार किया गया है । आज के इस भौतिक युग मे दान का विशेष महत्व है । विश्व मे आर्थिक असमानता, असतोष एव परिग्रह वृत्ति अधिक बढी हुई है । अतः इस पर काबू पाने के लिए धन के समान वितरण की आवश्यकता है, धन के सग्रह की नहीं । समान वितरण से सुख शान्ति का अनुभव होता है । दान अपरिग्रह का सुन्दर रूप है ।

ससार मे व्याप्त लगभग सभी मतो ने करूणा (अहिसा) को स्वीकार किया है । करूणा से दान की प्रेरणा मिलती है । यदि करूणा होगी तो दान स्वतः होगा । दान के अभाव मे दया अपूर्ण है । दान मानवता का स्वभाव है । दान देने मे सक्षम होते हुए भी (दुःखी को देखकर) नही देना मानवता के विपरीत है । रहीमदासजी कहते है-

रहिमन वे नर मर चुके, जे कहुँ मांगन जाई ।
उनते पहले वे मुए, जिन मुख निकसत नाहिं ॥

दान देने से दोहरा लाभ है- जिसे दिया जाता है उसका सकट दूर होता है तथा दान-दाता को आत्मशान्ति प्राप्त होती है, पुण्य का बन्ध होता है, मानवता की अभिवृद्धि होकर देवत्व की भावना प्रबल होती है । वेद मन्त्र मे कहा है-

'शत हस्तं समाहर, सहस्त्र हस्तं सकिर'

अर्थात् सो हाथों से एकत्रित करो और हजार हाथो से बॉट दो ।

दान से खोया नहीं पाया जाता है-

दान देने से धन घटता नहीं वरन् वढता है । ससार मे जड कहलाने वाले पदार्थो से भी दान की शिक्षा मिलती है । आम की गुठली बोने पर व्यक्ति को हजारो हजार आम मिलते है, भूमि मे

कृषक एक दाना डालकर अनेक दाने प्राप्त करता है । इसी प्रकार शुभ भाव से दान देने पर पुण्य की अभिवृद्धि होती है । इसके विपरीत यदि केवल सग्रह वृत्ति मे आसक्त होता हुआ, कर्म मल से आवृत्त हो जाता है । जैसे निरन्तर वाहर निकलता हुआ कुए का पानी स्वच्छ एवं निर्मल रहता है तथा निरन्तर उपयोग में न लिया जाने वाला कुए का पानी गन्दा एवं दुर्गन्ध युक्त हो जाता है । यही नही, जिस नदी, कुए, तालाब आदि का पानी सिंचाई आदि में काम आता रहता है उनमे पुनः जल्दी पानी भर भी जाता है तथा पानी स्वच्छ-निर्मल रहता है, लेकिन समुद्र का पानी निरन्तर भरे रहने से खारा हो जाता है । बादल संसार को पानी देते है तो उच्च आकाश मे निवास करते हैं और समुद्र संग्रहित करता रहता है तो उसे नीचे रहना पडता है । इसीलिए देने वाला महान होता है । दान से सम्पत्ति घटती नही अपितु बढती है । कवि ने भी कहा है-

चिड़ी चोंच भर ले गई, नदी न घटिये नीर ।
देता दौलत ना घटे, कह गये दास कबीर ॥

दान कभी व्यर्थ नही जाता । देना, खोना नही, पाना है ।

किसी कवि ने कहा है-

दीन को दीजिये होत दयावन्त, मित्र को दीजिये प्रीत बढ़ावे ।
सेवक को दीजिये काम करे बहु, शायर को दीजिये आदर पावे ।
शत्रु को दीजिये वैर रहे नहीं, याचक को दीजिये कीरति गावे ।
साधु को दीजिये मुक्ति मिले पिण, हाथ को दीधो एलो नहीं जावे।

यह दानवीरों की भूमि है-

भारत की पवित्र वसुन्धरा पर सदैव उदार मनीषियो का अवतरण होता रहा है । यहाँ पर उत्पन्न दानियो के नाम गिनाना यद्यपि सम्भव नही है । तथापि महाराजा मेघरथ, दानवीर कर्ण, राजा भोज, महाराजा हरिश्चन्द्र, भामाशाह, जगडूशाह आदि अनेक दानवीरो के नाम उल्लेखनीय है, जिन्होने अपने शरीर का ममत्व

हटाकर जीवन की बाजी लगाकर भी दान के महत्व को सर्वोच्च शिखर पर प्रस्थापित कर दिया ।

कहा जाता है, इन्द्र ने दानवीर कर्ण से, ब्राह्मण का रूप बनाकर कुण्डल और कवच की याचना की । कुण्डल एवं कवच का दान करने का अर्थ था मौत को आमन्त्रित करना । फिर भी कर्ण ने अपने जीवन का मोह त्यागकर याचक की याचना पूरी की । महाराजा मेघरथ ने शरणागत कबुतर को अभयदान देन के लिए जीवन की बाजी लगा दी। राजा भोज, सम्राट हर्ष की दानप्रियता इतिहास प्रसिद्ध है ।

मेवाड के महाराणा प्रताप जब धन के अभाव में देश छोडकर जाने को उद्यत हुए तो भामाशाह ने अपनी सम्पूर्ण सम्पत्ति महाराणा के चरणो मे समर्पित कर दी । इतिहास आज भी उनकी गौरव गाथाएँ गाता है । खेमाशा-देदरानी ने देश मे अकाल के समय अपने अन्न के भण्डार खोलकर दान वीरता का परिचय दिया, शाह पद की रक्षा की तथा ह्रदय की विशाल करूणा का परिचय दिया । अन्न का दान करके प्राणियो को काल कवलित होने से बचाया । जिस कार्य को बादशाह नहीं कर पाये, उस कार्य को अकेले खेमाशा ने कर दिखाया ।

दान से अनन्तगुणा लाभ-

आप सोचते होगे कि दान देने से तो धन कम हो जाता है, परन्तु ऐसा सोचना उचित नहीं है । दान देने से पुण्य मे वृद्धि होती है तथा पुण्य के प्रभाव से सब प्रकार की ऋद्धि सहज रूप से प्राप्त हो जाती है ।

संगम ग्वाले को आस-पास की पडोसिन महिलाओ ने सामग्री देकर खीर उपलब्ध कराई । वह खीर खाना चाहता था कि मासखमण के तपस्वी मुनिराज पारणे के लिए गोचरी पधारे । संगम ने उत्कृष्ट भावना पूर्वक खीर मुनिराज को दे दी । मुनिराज को खीर वहराने

के बाद संगम का आयुष्य पूर्ण हो जाता है और गोभद्र सेठ के घर जन्म लेता है । संगम का जीव सहज ही अतुल धन सम्पत्ति का स्वामी बन गया । खीर का शुद्ध आहार दान मे देकर संगम ने शालिभद्र का भव पाया जिसने मगध सम्राट श्रेणिक को भी अपनी सम्पत्ति से विस्मित कर दिया ।

दान कर्तव्य है-

सामाजिक व्यवस्था के अनुसार भी दान आवश्यक तत्व है । समाज मे जिन प्रमुख व्यक्तियों के पास सम्पत्ति बढ जाती है तो उन्हें समाज के हित मे लगाना चाहिये । दान का अपना कर्तव्य समझना चाहिये । जब ऐसा नही होता है तो क्रान्ति होने का भय रहता है । इसलिए कवि ने कहा है-

जो जल बाढ़े नाव में, घर में बढ़े दाम ।
दोऊ हाथ ऊलीचिये, यही सयानो काम ॥

धन के बढने पर उसे मुक्त हस्त से दान में लगा देना चाहिये । जिसकी सम्पत्ति दान और भोग में नही लगती तो वह नष्ट हो जाती है । कहा भी है-

धन की गतियाँ तीन है, दान, भोग और नाश ।
दान भोग में ना लगे तो, निश्चय होवे विनाश ॥

दान, भोग और नाश में सबसे उत्तम उपयोग दान है। दानी व्यक्ति सदैव अमर रहता है । दान बहुत बडा परोपकार है ।

सम्राट हर्षवर्धन के लिए ऐसा कहते है कि वे प्रयाग मे कुम्भ के मेले पर अपना सर्वस्व दान मे देते थे । यहाँ तक कि अपने पहिनने के वस्त्र भी अपनी तपस्विनी बहन राज्यश्री से लेते थे । यह दान का अद्भुत उदाहरण है ।

सत्यवादी महाराजा हरिश्चन्द्र ने भी अपना सम्पूर्ण साम्राज्य दान मे दे दिया और स्वयं चंडाल के हाथो बिक गये, अनेक कष्ट

उठाये परन्तु घबराये नही ।

राजा भोज की दानप्रियता भी इतिहास प्रसिद्ध है । राजा रन्तिदेव ने भी दान में सम्पूर्ण राज्य दे दिया । देव ने रन्तिदेव के दान की परीक्षा ली । उन्हे लगभग 49 दिन तक आहार नही मिला उसके बाद भी जो थोडा-सा रूखा आहार मिला तो वह भी देव की माया से बने भिखारियो ने मागा और रन्तिदेव ने सहर्ष दे दिया । भारतीय इतिहास ऐसे अनेक महापुरुषो के जीवन से भरा पडा है । यह यहॉ की सुसंस्कृति का प्रभाव है ।

नवाब रहीम के लिए भी कहा जाता है कि वे भी विशिष्ट प्रकार के दाता थे । मुक्त हस्त से दान देते । याचक को कभी रिक्त नहीं जाने देते थे । देते समय भी नैत्र नीचे रखते थे । कहा जाता है कि उनकी सम्पूर्ण सम्पत्ति दान में समाप्त हो गई । उनके पास कुछ भी नहीं रहा, ऐसी अवस्था मे भी एक याचक आ गया और वे उसे कुछ देना चाहते थे, परन्तु क्या दें ? यह समस्या थी । उन्हे याद आया कि उनके खाट मे एक चादी की कील लग रही है । तुरन्त चॉदी की कील निकालकर नीचे नैत्रो से याचक को दे दी । इसी समय उनके मित्र कवि गंग आ गये । उनसे रहा नही गया, पूछ ही लिया कि दान दे रहे हो फिर भी नैन नीचे क्यो ?

सीखे कहाँ नवाब जू, देनी ऐसी देन ।
ज्यों-ज्यों कर ऊँचो चढे, त्यों-त्यों नीचे नैन ॥

नवाब रहीम ने जवाब दिया-
देने वाला और है, देता है दिन रेन ।
मानव भ्रम मुझपे करे, या ते नीचे नैन ॥

दान देने का कैसा विशिष्ट तरीका था । दान देते हुए भी शर्म से मस्तक झुक रहा था । सोचते थे कि दान देने का मैं तो माध्यम हूँ, देता तो मालिक है लेकिन मै अपने हाथ से दे रहा हूँ इसलिए लोग समझते हैं कि दान मैने दिया है । यह सोचकर वे शर्म

से मस्तक झुका देते थे ।

आज की परिस्थितियों का विचार करे तो बात ठीक इसके विपरीत दृष्टिगत होगी । आज लोग अपनी प्रतिष्ठा के लिए दान देते हैं । देना तो कम चाहते हैं और दिखावा अधिक चाहते हैं । प्रदर्शन चाहते हैं । ज्ञानियों ने तो यहॉ तक कहा है कि दान ऐसा गुप्त देना चाहिये कि एक हाथ से दिये गए दान का दूसरे हाथ को भी पता नहीं चले । परन्तु आज के युग में ऐसे दानी अत्यन्त दुष्कर है । अधिकांश व्यक्ति अपने मान-सम्मान, प्रतिष्ठा के लिए दान देते हैं । दानदाताओं की सूची में सबसे ऊपर अपना नाम लिखाना चाहते है । समाज मे इने-गिने व्यक्ति ऐसे होंगे जो बिना प्रतिष्ठा की भावना से दान के स्वरूप को समझते है ।

दान को जीवन का अंग बनाया जावे । जिस प्रकार भोजन आवश्यक है, निहार आवश्यक है, अन्य शारीरिक एवं सांसारिक कार्य आवश्यक है, उसी प्रकार नित्य प्रति दान भी आवश्यक है । सभी को प्रतिदिन नियमित रूप से कुछ न कुछ दान देने का अभ्यास करना चाहिये । भगवान महावीर के श्रावक पूणिया जो प्रतिदिन किसी सहधर्मी को भोजन कराने के बाद पारणा करते थे, भोजन ग्रहण करते थे । अर्थ का सग्रह नही करके सदुपयोग करते थे । धन सम्पत्ति साथ मे आने वाली नही है । मम्मण सेठ ने करोडो की सम्पत्ति एकत्रित की, फिर भी तृष्णा शान्त नही हुई । अन्त मे क्या हुआ ?

मम्मन सेठ धन संचियो छप्पन क्रोड़ ।
नहीं खायो, नहीं खरचियो, मुवो माथो फोड ॥

ऐसे व्यक्ति व्यर्थ मे मानव भव खो देते है । किसी कवि ने कहा है-

अन्त समय द्रव्य कुछ, काम नहीं आयेगा ।
दोनों हाथ खाली किये, जगत से जायेगा ॥

दान पुण्य बिना आगे, कुछ भी न पायेगा ।
शीश धुन-धुन लोभी, तब पछतायेगा ॥

विश्वविजेता सिकन्दर ने जीवन भर धन संग्रहित किया, परन्तु अन्त समय क्या साथ ले गया ? केवल पश्चाताप !

दान किसके लिए लाभदायक-

दान दोनों के लिए लाभदायक है । दाता को पुण्य बन्ध होता है, सम्यग् दृष्टि भाव युक्त दाता केवल पुण्य बन्ध ही नही करता अपितु शुभ भाव से अपने अशुभ कर्मो की निर्जरा भी करता हुआ आत्मशुद्धि करता है । क्योंकि दान दिये जाने वाले पदार्थो के प्रति जो ममत्व भाव होता है उसका भी दान देते समय परित्याग होता है । ममत्व के परित्याग से आशक्ति-तृष्णा कम होती जाती है । इस दृष्टि से दाता को दान ग्रहण करने वाले की अपेक्षा अधिक लाभ प्राप्त होने की सम्भावना रहती है । इसलिए तत्वार्थ सूत्र मे कहा गया है- 'अनुग्रहार्थ स्वस्थातिसर्गो दानम्' स्वय के अनुग्रह के लिए स्वाधीन वस्तु का उत्सर्ग करना दान है । इससे आत्म-शान्ति भी मिलती है और प्राप्त कर्ता को कष्ट मुक्ति होती है । कष्ट मुक्ति के साथ ग्रहणकर्ता आर्त एव रौद्र ध्यान के परिणामो से भी मुक्त होता है । किसी को आर्त्त एव रौद्र ध्यान के परिणामो से मुक्त करना सम्यग्दृष्टि का परम कर्तव्य है ।

एक कवि ने कहा है-

जननी जणे तो ऐसो जण के दाता के शूर ।
नहीं तो रहिजे बाँझड़ी, मति गँवाजे नूर ॥

प्रकृति मानव को दान का पाठ पढाती है । वृक्ष स्वयं सर्दी, गर्मी सहन करते है, फिर भी सभी को आश्रय प्रदान करते हैं, छाया प्रदान करते है । यही नहीं पत्थर फैकने वाले को भी फल देते है । जीवो को जीवन प्रदायी वायु आक्सीजन भी मिलती है । वृक्ष के जड, तने, पत्ते, फूल आदि प्रत्येक अंग दूसरो के काम आते हैं । नदियाँ प्यासे की प्यास शान्त करती है । सूर्य सभी को विना

भेदभाव के रोशनी एवं उष्णता प्रदान करता है । चन्द्रमा रात्रि के घोर अन्धकार को नष्ट करता है फिर हमारा क्या कर्तव्य है ? इसका चिन्तन हमें गहराई से करना चाहिये ।

श्रावक के व्रतों में अन्तिम व्रत अतिथि संविभाग है । अतिथि का अर्थ- जिनके आने का समय निश्चित नहीं हो । ऐसे संयमी महापुरुषों को श्रावक 14 प्रकार का दान प्रदान कर सकते है । यह श्रावक का 12वां व्रत है । ये 14 वस्तुएँ निम्न है-

1. असण 2. पाण 3. खादिम 4 स्वादिम 5. वस्त्र 6 पात्र 7. कम्बल 8. रजोहरण 9 पीढ 10. फलक 11. सय्या 12 संस्तारक 13. औषध और 14. भेषज ।

श्रावक का द्वार दान के लिए हमेशा खुला रहना चाहिये । करुणा बुद्धि से अन्य असहाय, गरीब, दु:खी व्यक्ति को भी दान देना चाहिये । सभी तीर्थङ्कर दीक्षा ग्रहण करने से पूर्व एक वर्ष तक दान देते हैं ।

गुरुबुद्धि से दान तो श्रमण निर्ग्रन्थ को दिया जाता है, अनुकम्पा बुद्धि से समस्त जीवों को दान दिया जा सकता है। तुगिया नगरी के श्रावको के घरों के द्वार दान देने के लिए सदा खुले रहते थे । श्रावको के लिए करणीय कार्यो में दान, शील, तप भावना मे दान का प्रथम स्थान है । अनुकम्पा बुद्धि से दान का निषेध करना शास्त्रानुकूल नहीं है । अत: प्रतिदिन दान देना विशिष्ट पुण्य बन्ध मे सहायक है ।

हम ऐसा न सोचे कि दान केवल गृहस्थ ही देते है, संयमी मुनिराज भी दान देते हैं । हमारी तरह द्रव्य का दान नही देते । वे संसार के सभी प्राणियों को अभयदान देते है, फिर ज्ञान एवं धर्म **दान** देते हैं । समाज को धर्म का निरन्तर मार्गदर्शन देते है । **परस्पर एक** दूसरे श्रमण को आहार वस्त्र आदि प्रदान करना भी **आहार एवं वस्त्र** दान आदि की सज्ञा मे आता है ।

दान में भाव प्रधान है-

दान में वस्तु का इतना महत्व नहीं है जितना भावो का है। देते समय मन की शुद्धि, वस्तु का दोष रहित होना एव पात्र की शुद्धता तीनों आवश्यक है। संगम ने मुनिराज को उत्कृष्ट भावो से खीर बहराई, जिसके फलस्वरूप शालिभद्र का भव पाया। राजा शख ने तपस्वी साधु को दाख का धोवन पानी देकर तीर्थङ्कर गौत्र का बन्ध किया। महासती चन्दनबाला ने गृहस्थ जीवन में भगवान् महावीर को उडद के बाकुले बहराये और देवो ने स्वर्ण मुद्राओ की वर्षा की। स्पष्ट है कि दान में दाता की शुद्ध भावना महत्वपूर्ण है। बिना शुद्ध भाव से दिया गया दान लाभप्रद नही होता। दान देते समय दाता को याचक के प्रति व्यवहार भी अच्छा रखना चाहिये।

दान के भेद-

स्थानांग सूत्र के दसवे ठाणे मे दस प्रकार के दानों का उल्लेख है। 'दसविहे दाणे पण्णत्ते तंजहा'

दान दस प्रकार के होते है, जो निम्न हैं-

1. अनुकम्पा दान 2. संग्रह दान 3 भय दान 4 कारूण्य दान 5. लज्जा दान 6. गर्व दान 7. अधर्म दान 8 धर्म दान 9 काहीह दान (प्रतिफल की आशा से दिया गया दान) 10 कपति दान (बदला चुकाने की भावना से)

उपरोक्त दानों मे धर्म दान सर्वोत्तम दान है। दया की भावना से करूणा, बुद्धि से दिया गया दान अनुकम्पा दान है।

धर्म दान-

धर्म दान विभिन्न प्रकार का है। इनमे अभयदान श्रेष्ठ है।

'दाणाण सेट्ठं अभयप्पपाणं'

भगवान ने कहा है-

सव्वे जीवावि इच्छन्ति जीविउं न मरिज्जिउं।

(दशवै अ 6 गा0 10)

सभी जीव जीना चाहते हैं, मरना कोई नही चाहता । मरण भय सब भयों से बढकर है । अतः अभयदान श्रेष्ठ है ।

मृत्यु दण्ड के किसी अपराधी को महाराजा की तीन रानियो ने उत्तम प्रकार से भोजन कराया, स्वर्ण मुद्राएँ दान में दी । चौथी महारानी ने उसे सादा भोजन कराया, दान में कुछ नहीं दिया, लेकिन राजा से निवेदन कर मृत्युदण्ड से मुक्त करा दिया तो अपराधी ने राजा के सामने चौथी महारानी का सर्वाधिक उपकार स्वीकार किया । महाराजा मेघरथ ने कबूतर को अभयदान दिया और तीर्थङ्कर गौत्र का बन्ध किया। बाइसवें तीर्थङ्कर प्रभु अरिष्टनेमी ने विवाह के प्रसंग पर मासाहारी व्यक्तियों के भोजन हेतु एकत्रित पशु-पक्षियों को मुक्त कर अभयदान दिया । संसार से विरक्त, रत्नत्रय की आराधना करने वाले मुनिराज स्वयं अभयदान देते हैं तथा दूसरो से अभयदान दिलाते हैं ।

सुपात्रदान-

दूसरी प्रकार का धर्म दान है - सुपात्र दान । सुपात्रदान भी तीन प्रकार का है-1. उत्कृष्ट 2 मध्यम और 3. जघन्य।

1 उत्कृष्ट दान- जिन भव्य प्राणियो ने संसार से नाता तोड लिया, कनक और कामिनी का सर्वथा त्याग कर दिया, समस्त प्राणियो को अभयदान दिया, जो जिनमार्गानुसार पंच महाव्रत, पॉच समिति तीन गुप्ति का शुद्ध पालन करते है वे अणगार उत्तम पात्र है । ऐसे महापुरुषो को भाव पूर्वक दान देने से ससार परित किया जा सकता है । कवि कहता है-

देता भावे भावना, लेता करे सन्तोष ।
वीर कहेए गोयमा, दोनों जावे मोक्ष ॥

2 मध्यम दान- व्रतधारी श्रावक को दिया गया दान मध्यम श्रेणी का सुपात्र दान है । वे आगार धर्म का पालन करते है ।

इसलिए ऐसे व्रतधारी श्रावक को दिया जाने वाला दान भी लाभदायक है ।

3. जघन्य दान- सम्यग्दृष्टि, साधर्मी को दान देना भी सुपात्रदान है ।

भावदान-

सामान्यतया दान की चर्चा करते समय द्रव्य दान की ही चर्चा की जाती है । परन्तु भाव दान इससे भी अधिक महत्वपूर्ण है । भावदान मे द्रव्य दान भी समाहित है । कई व्यक्ति यह कहते है कि हमारे पास क्या है सो हम दान मे दे ? उनसे कहना है कि दान मे वस्तु का दिया जाना ही आवश्यक नही है । दान की शुभ भावना करना, अज्ञानियो को धर्म मार्ग पर लगाना भी महत्वपूर्ण दान है । सेठ सुदर्शन ने अर्जुन माली को दान मे क्या दिया ? आप कहेगे कुछ नही । पर मै कहता हूँ कि उन्होने अर्जुन को प्रभु महावीर के पावन चरणों मे उपस्थित कर धर्म के सम्मुख किया । यह उनका भाव दान है ।

समता प्रचार संघ के सदस्य देश के विभिन्न कोनो मे जाकर वहाँ के निवासियो को धर्म का उपदेश सुनाते है । समता प्रचार संघ ही क्यो ? अन्य सभी स्वाध्याय सघो के सदस्य पर्व पर्युषण मे धर्म का उपदेश देते है । भगवान की वाणी श्रवण कराते है, वे भी धर्म की दलाली करते है, यह भी धर्मदान है । दान के विषय मे कवि कहता है-

अरे मुसाफिर जग में जाकर कर जाना कुछ दान ।
दान की महिमा बडी महान ॥टेर॥
तीन लोक में होते रहते, दानी के गुणगान । दान की....
दान, शील, तप, भाव बताया, नाम दान का पहले आया ।
जिसने भी जो वैभव पाया, पूर्व दान की है सब माया ।
ऊँची गतियों में जाने का, यही प्रथम सोपान, दान... ॥1॥
नदियाँ सागर को दे देवे, सागर से बादल पा लेवें ।
फिर बादल जग पर बरसावे, वही पुनः नदियाँ में आवे ।

कमी नहीं होने देते हैं, दानी के भगवान्, दान... ॥2॥
क्षण भंगुर यह कच्ची काया, इससे भी चंचल यह माया ।
खाली हाथ यहाँ था आया, पूर्व दान फल से कुछ पाया ।
यहीं रह जावे ये सब वैभव, दो दिन का मेहमान, दान... ॥3॥
अपना पेट सभी भरते हैं, अपने लिए सभी पचते हैं ।
धन से जो पर हित करते हैं, नाम अमर जग में करते हैं ।
जनम-जनम तक हो जाता है, दानी का एहसान, दान... ॥4॥
कर्ण महान कहाया कैसे, नाम दधिचि ने पाया कैसे ।
भामाशाह पुजाया कैसे, नाम चमकते मोती जैसे ।
तन की शोभा शील धर्म है, धन की शोभा दान, दान... ॥5॥

पर्युषण पर्व के प्रसंग से दान के माहत्म्य को आपने श्रवण किया है । यह दान मुख्यतः स्वयं के लिए हितकर है । तत्वार्थ सूत्र के सूत्र की व्याख्या आपके समक्ष पूर्व में रखी की जा चुकी है । अतः दान के माध्यम से स्वयं के ममत्व को कम करके, पर के आर्त्त परिणामों को धर्म ध्यान के रूप मे परिवर्तन करने का प्रयास करेगे तो हम श्रावक धर्म की परिपालना के साथ अपनी आत्मशुद्धि का प्रसग उपस्थित कर सकेंगे ।

अनुग्रहार्थं स्वस्यातिसर्गो दानम् ।

(तत्वार्थ सूत्र 7/33)

अनुग्रह के लिए दूसरो के हित के लिए अपनी वस्तु का त्याग करना दान है ।

आस्रव निरोधः संवर ।

(तत्वार्थ सूत्र 9/1)

आस्रव (पाप के मार्ग) का निरोध ही सवर है ।

सामायिक : एक साधना

समभाव की प्रवृत्ति करना सामायिक है । जिस प्रवृत्ति से समता की, समभाव की प्राप्ति हो वह सामायिक है । शुद्ध आत्मा का स्वभाव है-समभाव । अतः आत्मा की स्व-परिणति सामायिक है । सामायिक आत्मा को शुद्ध बनाने की प्रवृत्ति है, मोक्ष का साधन है । शत्रु-मित्र पर, लाभ-हानि में समभाव रखना, विषम से विषम परिस्थिति में भी विचलित न होना सामायिक की साधना है । ऐसी उत्तम प्रवृत्ति को जीवन से जोडा जाय ।

जय जय जय भगवान् ।
अजर अमर अखिलेश निरंजन, जयति सिद्ध भगवान् ॥
अगम अगोचर तूँ अविनाशी, निराकार निर्भय सुखराशि ।
निर्विकल्प निर्लेप निरामय, निष्कलंक निष्काम । जय...
कर्म न काया, मोह न माया, भूख न तिरखा रंक न राया।
एक स्वरूप, अरूप अगुरु लघु, निर्मल ज्योति महान ॥
जय... जय...

प्रार्थना की कुछ कडियों का उच्चारण आपके सम्मुख किया गया है । यह सिद्ध परमात्मा की प्रार्थना है । कवि ने अल्प शब्दो मे सिद्धों के अनन्त गुणों को कहने का प्रयास किया है । वैसे सिद्धो के गुणों को हमारे शब्दों मे कह देना असम्भव है, फिर भी भक्त अपनी शक्ति के अनुसार कुछ गुणो को कहने को प्रयास करता है । सिद्धावस्था आत्मा की सर्वोच्च अवस्था है । जब संसारी आत्मा चार घाति कर्मो को नष्ट करता है तो अरिहंत बन जाता है, सर्वज्ञ बन जाता है फिर भी चार कर्म शेष रह जाते है । जब शेष कर्म भी अर्थात् समस्त आठो कर्म क्षय हो जाते है, तो आत्मा मोक्ष (सिद्धावस्था) को प्राप्त कर लेती है ।

कर्म आठ है- 1 ज्ञानवरणीय 2 दर्शनावरणीय 3 वेदनीय 4 मोहनीय 5. आयुष्य 6 नाम 7 गौत्र और 8. अन्तराय । इनमे ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय और अन्तराय ये चार घाति कर्म हैं । जो आत्मा के निज गुणो को विकसित नही होने देते है । इन सबमे मोहनीय कर्म सबसे प्रबल है । यह सब कर्मो का राजा है। जब आत्मा मे आत्म शक्ति का विकास होता है तो गुणस्थानो के आरोहण क्रम का प्रारम्भ करती है और आगे बढते-बढते चारो घाति कर्मो को नष्ट कर तेरहवें गुणस्थान को प्राप्त कर लेती है । वह सर्वज्ञ सर्वदर्शी अरिहत बन जाती है । देह युक्त आत्मा की यह सर्वश्रेष्ट अवस्था है । यो चौदहवॉ गुणस्थान भी है लेकिन उसकी स्थिति अत्यन्त अल्प है । जहॉ पर मन, वचन एव काया के योगो को

अवरूद्ध कर आत्मा अयोगी बन जाती है और तत्काल सिद्ध अवस्था को प्राप्त कर लेती है । इसलिए तेरहवे गुणस्थान को सर्वश्रेष्ठ कहा है । 13वे व 14वें गुणस्थान मे योगों की प्रवृत्ति का ही अन्तर है । यद्यपि 13वे गुणस्थान मे योगो द्वारा केवल सातोवदनीय के अतिरिक्त कर्म बन्ध नहीं होता ।

आठों कर्मो को नष्ट कर आत्मा शाश्वत एवं अव्याबाध सुख को प्राप्त कर लेती है । कवि भी यही कहता है कि सिद्ध प्रभो ! आप अनन्त है फिर भी आप सभी का स्वरूप एक है, आपके स्वरूप मे किंचित् भी अन्तर नहीं है । आप अरूपी है, निरंजन निराकार हैं, निर्भय है, अजर हैं, अमर हैं, अविनाशी है, अगोचर है । ऐसे निर्मल ज्योति स्वरूप सिद्ध परमात्मा की जय हो, सदा विजय हो ।

इसी प्रार्थना मे कवि आगे कहता है-

गुरु निर्ग्रन्थों ने समझाया, सच्चाप्रभु का रूप बताया।
तुझमें मुझमें भेद न पाऊँ, ऐसा दो वरदान ॥ जय..

सूर्य भानु है शरण तिहारी, प्रभु करना मेरी रखवाली ।
अब तुम में ही मिल जाऊँ मैं ऐसा हो संधान ॥ जय...

प्रभो ! मै आपकी शरण मे आया हूँ आप मेरी रक्षा करे और मुझे भी ऐसी शक्ति प्रदान करे जिससे मै आपके स्वरूप को आपकी उस अव्याबाध अवस्था को प्राप्त कर सकूँ, आप और मै दोनो एक रूप बन जावे । आप जैसे है वैसा ही मै भी बनना चाहता हूँ इसलिए आप मुझे आपके समान बनने की क्षमता प्रदान करे ।

पारस को लोहे के सम्पर्क मे लाने से लोहा भी स्वर्ग मे परिवर्तित हो जाता है । पारस लोहे को स्वर्ण वना सकता है लेकिन वह पारस नही बना सकता । परन्तु प्रभु तो भक्त को भी भगवान वना देता है । यह प्रभु की विशेषता है । प्रभु भक्ति का सारा यही है कि भक्त और भगवान का अन्तर समाप्त हो जावे, भक्त भी प्रभुता को प्राप्त कर लेवे । सच्चा सेठ वही है जो अपने अधिनरथ मुनीम

को भी अवसर आने पर सेठ वना देता है । इसलिए कवि भी सिद्ध परमात्मा की स्तुति कर स्वयं सिद्ध बनने की भावना व्यक्त करता है । वीतराग मार्ग की यही विशेषता है कि भगवान् से भौतिक सुख-समृद्धि की याचना नहीं की जाती वरन् वीतरागता की माग की जाती है । सिद्ध भगवान् किसी को कुछ देते नही पर उनका आदर्श साधना काल मे सम्मुख रखने से साधक को वीतरागता प्राप्ति मे सहायक होता है ।

वीतराग के लिए पहले जीवन में समभाव आना आवश्यक है । समभाव (सामायिक) की स्वस्थ भूमिका पर मोक्ष रूपी महल का निर्माण होता है । इसलिए सामायिक के स्वरूप को समझ लेना आवश्यक है ।

सामायिक का अर्थ-

एक वाक्य मे सामायिक का अर्थ है-समता । अर्थात् विषमता से दूर रहना, समता को धारण करना । समता का नाम सामायिक है । हानि-लाभ मे, शत्रु-मित्र पर समभाव रखने को सामायिक कहते है ।

सामायिक के द्रव्य एव भाव इस प्रकार दो भेद भी होते हैं । मुँहपत्ती, चादर आदि सामायिक की पौशाक को धारण करना द्रव्य सामायिक कहलाती है । उसी के आगे बढकर जिस समय व्यक्ति विधियुक्त सामायिक स्वीकार कर लेता है तब वह भाव सामायिक कही जाती है ।

'समता सर्वभूतेषु, संयम शुभ-भावना ।
आर्त रोद्र परित्याग स्तद्धि, सामायिकं वृत्तम ॥

अर्थात् समस्त जीवो पर समभाव रखना, पॉचो इन्द्रियो पर सयम (नियन्त्रण) रखना, अन्तर मे शुभ भावना रखना, तथा आर्त्त रौद्र ध्यान का त्याग करना सामायिक है ।

भगवती सूत्र मे सामायिक के लिए कहा है-

'आया सामाइए, आया सामाइयस्स अट्ठे ।

अर्थात् आत्मा ही सामायिक है और आत्मा ही सामायिक का अर्थ है, सामायिक का फल है । सामायिक का अर्थ है- समभाव, समताभाव, जीवन मे समता का संचार, आत्मा की विकार एव कषाय रहित शुद्ध अवस्था, स्व-स्वरूप परिणति ।

शब्दार्थ-

सर्व जीवेषु मेत्री साम, साम्बो आय = लभ सामायः स एव सामायिकम् ।

1 सामायिक दो शब्दों से बना है- सम+आय । सम का अर्थ है सभी जीवों के साथ मैत्री भाव, आयका अर्थ लाभ । तात्पर्य यह है कि समस्त प्राणियो के साथ मैत्री भाव रखने से जिस लाभ की प्राप्ति हो उसे सामायिक कहते है ।

सम्यक् शब्दार्थः समशब्दः सम्यगयनं वर्तनम् समयः स एव सामायिकम् ।

2. सम यानि अच्छा अयन यानि आचरण अर्थात् अच्छा आचरण करना सामायिक है ।

3 सम+आय अर्थात् समता भाव की प्राप्ति जिस क्रिया द्वारा हो उसे सामायिक कहते है ।

4. सम+अयन अर्थात् ज्ञान दर्शन एवं चारित्र मे प्रवृत्ति करना सामायिक है ।

सक्षेप मे यह कहा जा सकता है कि समभाव की प्रवृत्ति ही सामायिक है । शुद्ध आत्मा का स्वभाव है- समभाव। सामायिक आत्मा को शुद्ध बनाने की प्रवृत्ति है, मोक्ष का साधन है ।

सामायिक के भेद-

यों तो सामायिक का सम्बन्ध आत्मा से है परन्तु त्याग की

न्यूनाधिकता की अपेक्षा से सामायिक दो प्रकार की है-

'आगार सामाइए चेव, अणगार सामाइए चेव'

स्थानाग सूत्र स्था

श्रावक की सामायिक एवं साधु की सामायिक की ; सामायिक के दो भेद किया है । श्रमण निर्ग्रन्थ के लिए स याावज्जीवन के लिए होती है, जबकि श्रावक की सामायिक म काल के लिए होती है । साधु तीन करण, तीन योग से जीवन के लिए पाप युक्त कार्यो का त्याग करते है, सामायिक ग्रहण हैं, जबकि गृहस्थ श्रावक दो करण, तीन योग से पाप युक्त का मर्यादित समय के लिए ही त्याग करते हैं । एक सामा लिए 48 मिनट की काल मर्यादा है, जिसे दो घडी या एक मु कहते हैं ।

सामायिक को ग्रहण करने के लिए 'करेमि भते' व है। श्रावक और साधु के पाठो में थोडा अन्तर है । श्रावक व जहाँ 'सावज्जं' शब्द आता है वहाँ साधु के लिए 'सव्वं स शब्द है, 'जाव नियमं' के स्थान पर 'जावज्जीवाए' है, तिविहंण' के स्थान पर 'तिविहं तिविहेणं' शब्द है तथा स लिए 'करंतपि अन्नं न समणुज्जाणामि' पद अधिक बोला जा इस प्रकार दोनों की सामायिक मे बहुत अन्तर है । फि सामायिक के काल में गृहस्थ आशिक रूप से साधना का अ करता है, साधु जीवन जैसा निज जीवन बनाने का कुछ करता है । इसलिए उसे प्रतिदिन आवश्यक रूप से साम करनी चाहिये ।

सामाइयम्मिउकए, समणोइव सावओ हवई जम्हा ।
एएण कारणेणं, बहुसो सामाइयं कुज्जा ॥

(विशेषावश्यक

मोक्ष का सर्वोत्तम साधन-सामायिक-

संक्षेप मे आज इस उत्तम प्रवृत्ति की जानकारी भी क

सामायिक मोक्ष का अग है । सर्वज्ञ परमात्मा ने कहा है कि जिस प्रकार चन्दन काटने वाले शस्त्र को भी सुगन्धित कर देता है, उसी प्रकार सामायिक भी जीवन को उच्चता के शिखर पर पहुँचा सकती है ।

सामायिकं च मोक्षांग, परं सर्वज्ञ भाषितम् ।
वासी चन्दन-कल्पनामुक्तमेतन्महात्मनाम् ॥

(अष्ट प्रकरण-29/1)

सामायिक का महत्व बताते हुए आचार्य हरिभद्र ने कहा है-

सामायिक विशुद्धात्मा सर्वथा घाति कर्मण: ।
क्षमात्केवलमाप्नोति, लोकालोक प्रकाशकम् ॥

अर्थात् सामायिक के द्वारा आत्मा घाति कर्मो का सर्वथा नाश कर केवलज्ञान प्राप्त कर सकती है । मोक्ष प्राप्ति मे सहायक साधन के महत्व को स्पष्ट करने के लिए कुछ और उदाहरण प्रस्तुत है ।

'जे केवि गया मोक्खं, जेवि य गच्छन्ति जे गमिस्सति ।
ते सव्वे सामाइय पभावेण मुणे यव्वं ॥'

अर्थात् भूत काल मे जो मोक्ष गये हैं, वर्तमान मे जा रहे है और भविष्य मे जो जावेगे वे सभी सामायिक के प्रभाव से ही ऐसा कर पाये है ।

दिवसे-दिवसे लक्खं देई, सुवण्णस्य खंडियं एगो ।
एगो पुण सामाइयं, करेई न पहुप्पए तस्स ॥

सामायिक से होने वाले पुण्य की समानता प्रतिदिन लाख स्वर्ण मुद्राएँ दान मे देने से भी नही हो सकती । वास्तव मे सामायिक मोक्ष प्राप्ति का एक सर्वोत्तम, अनुपम एव विशिष्ट साधन हे । चरम तीर्थङ्कर भगवान महावीर स्वामी ने महाराजा श्रेणिक को नरक गति से बचने के लिए पूर्णिया श्रावक की केवल एक सामायिक क्रय करने

के लिए कहा । परन्तु ऐसे उत्तम आध्यात्मिक साधन को क्या कभी द्रव्य द्वारा क्रय किया जा सकता है ? कदापि नही । क्रय करना तो दूर रहा महाराजा श्रेणिक जैसा ऋद्धि सम्पन्न व्यक्ति सामायिक की दलाली का मूल्य चुकाने मे भी समर्थ नही हो सकता । ऐसी शुद्ध सामायिक यदि जीवन मे उतर जावे तो द्रव्य पदार्थो से उसकी तुलना नही की जा सकती ।

किं तिव्वेण तवेणं कि च जवेण कि चरिस्सेणं ।
समयाई विण मुक्खो न हु हुओ कहवि न हु होई ॥

समभाव के अभाव मे बाह्य क्रियाएँ भी विशेष लाभप्रद नही होती । जीवन मे वास्तविक सामायिक आए बिना कठोर तप निरन्तर जप एवं चारित्र का पालन भी मोक्ष प्राप्ति मे सक्षम नही है ।

दैनिक जीवन में सामायिक का महत्व-

मोक्ष प्राप्ति के साधन के रूप मे सामायिक के महत्व को अतिसक्षेप मे समझाने का प्रयत्न किया है । लेकिन सामायिक के वास्तविक स्वरूप को समझना चाहिये । दो घडी के लिए किसी स्थान पर केवल मुख वस्त्रिका मुँह पर बॉध कर या सामायिक का उपक्रम कर लेने मात्र से वास्तविक लाभ सम्भव नही है । सामायिक जीवन मे उतरनी चाहिये । सम्पूर्ण जीवन ही सामायिकमय होना चाहिये । जब सामायिक जीवन मे आ जावेगी तब साधक प्रति समय, प्रत्येक स्थान पर समभाव मे रमण कर सकेगा ।

खाना-पीना, व्यापार-व्यवसाय एव अन्य सासारिक कार्य करते समय मे भी सामायिक का प्रभाव बना रहना चाहिये । जब सामायिक जीवन मे आ जावेगी तब साधक प्रति समय, प्रत्येक स्थान पर समभाव मे रमण कर सकेगा ।

किसी नगर मे एक झगडालु बुढिया रहती थी । पास-पडोसी ही नही वरन् नगर के सभी परिवार बुढिया के झगडने की आदत से

तग आ गये । इसलिए उन्होने बुढिया से लडाई करने के लिए शहर मे सभी परिवारो के ओसरे तय कर दिये । बुढिया अपने क्रम के अनुसार प्रतिदिन एक परिवार के घर जाकर झगडा करती जिससे उस दिन के लिए अन्य परिवार तो शान्तिमय जीवन व्यतीत कर सके । परन्तु जिस परिवार से वह झगडा करने जाती उनका सारा परिवार उस दिन दुःखी हो जाता था ।

एक बार एक परिवार मे नवविवाहिता आई । उसके आने के ठीक दूसरे ही दिन बुढिया से झगडने का ओसरा इसी परिवार का था । परिवार के सदस्य चिन्तित हो गए । उन्हे इस बात की विशेष चिन्ता थी कि नई बहू क्या समझेगी? बहू के जीवन पर इसका बुरा प्रभाव पडेगा । उन्होंने अपनी चिन्ता बहू से नही कही लेकिन बहू समझदार थी । उसके जीवन में सामायिक का प्रभाव था इसलिए उसने सम्पूर्ण परिस्थिति का पता लगा लिया । बहू ने परिवार वालों से विनम्र शब्दो मे कहा-'आप चिन्ता त्यागे । बुढिया से कल झगडा मै करूँगी ।'

सास ने कहा- 'नही, तुम झगडना क्या जानो ? वह बुढिया बहुत झगडालू एवं खराब है । उससे झगडना बहुत कठिन काम है ।'

बहू- 'नहीं माताजी ! आप चिन्ता न करे । कल तो बुढिया से मुझे ही निपटने दे । मै उसे सदैव के लिए झगडना भुला दूँगी । बहू ने समझा-बुझाकर परिवार वालो से सहमति प्राप्त कर ली ।

दूसरे ही दिन प्रातः बहू ने बुढिया से झगडने की तैयारी कर ली । हाथ मे माला एवं एक पुस्तक लेकर मकान के मुख्य द्वार पर बैठ गई । इतने मे बुढिया भी आ गई । उसने देखा कि इस परिवार मे नई बहू आई है और वही लडने-झगडने के लिए तैयार है, तो उसे बहुत प्रसन्नता हुई । बुढिया ने सोचा कि आज झगडने का विशेष मजा आयेगा । बुढिया ने दरवाजे के निकट आकर बहू का

गालियॉ देना प्रारम्भ किया । कुछ देर तक बुढिया गालियॉ देती रही ।

वहू ने पहले ही निर्णय कर लिया था कि आज सामायिक की परीक्षा है । समभावपूर्वक सहन करना है । अतः माला फिराती रही और मौन रही । जव बुढिया ने देखा कि बहू उसकी गालियो का कोई उत्तर नही दे रही है तो उसने बहू के परिवार वालो को सम्वोधित किया एवं गालियॉ देना प्रारम्भ किया । फिर भी बहू मौन थी ।

झगडा तब ही ठीक चलता है जब दोनों पक्षो के व्यक्ति झगडे मे सम्मिलित हो । लेकिन यहॉ बात भिन्न थी । बुढिया अकेली बोल रही थी, अकेली झगड रही थी इसलिए बुढिया थक गई । तब बहू ने कहा- मॉजी ! आपका कार्य हो गया ? तब बुढिया पुनः उसी प्रकार क्रोधित होकर बोलने लगी । लेकिन आखिर कब तक बोलती । इधर भोजन का समय भी हो गया । सास ने बहू को भोजन करने के लिए बुलाया तो बहू ने भोजन उसके पास भेज देने के लिए कहा। भोजन की थाली बहू के पास रख दी गई । इधर बुढिया पुनः थक कर चुप हो गई तो बहू ने बुढिया को भोजन करने के लिए कहा ।

बस फिर क्या था ? बुढिया का पारा पुनः गर्म हो गया एव गालियॉ देने लगी ।

बुढिया निरन्तर अकेली ही बोल रही थी इसलिए बहुत थक गई, उससे बोला भी नहीं जा रहा था फिर भी ताकत लगाकर बोल रही थी । झगडने का उसे आनन्द नही आया, क्योकि वहू पूर्ण शान्त थी । इसलिए आखिर अकेली कब तक झगडती । अन्त मे स्थिति ऐसी हो गई कि बोलते-बोलते बुढिया बेहोश होकर भूमि पर गिर गई । बुढिया के गिरते ही बहू ने उसे सम्भाल लिया । अपनी गोद मे बुढिया का मस्तक रख कर पखे से धीरे-धीरे हवा करने लगी, ठडे पानी का प्रयोग किया । थोडी ही देर मे बुढिया की

बेहोशी दूर हो गई । बहू ने प्रेमपूर्वक बुढिया की ओर देखा, उसे ठण्डा पानी पिलाया, पखे से हवा की । यह दृश्य देखकर बुढिया चकित हो गई । उसे स्वप्न मे भी ऐसी आशा नही थी ।

बहू ने समझाया- 'माताजी ! आप इतना क्रोध क्यों करती है ? झगडा करने से आपका स्वास्थ्य भी खराब हो रहा है । आप बहुत कमजोर हो गयी है । आज यदि मैं आपको न सम्भालती तो बेहोश अवस्था मे आपकी क्या स्थिति होती ? झगडा करने से आपको भयंकर कर्मो का बन्ध भी होता है ।' इस प्रकार उचित अवसर देखकर बहू ने बुढिया को समझाने का प्रयत्न किया । बुढिया को बहू की बात अच्छी लगी परन्तु वह कब हार मानने वाली थी । बुढिया ने कहा- 'अच्छा मै अब चली जाती हूँ तथा तुझसे झगडा नही करूँगी, परन्तु इस घटना की चर्चा कही मत करना अन्यथा कल मैं झगडा कैसे करूँगी ?'

बहू ने कहा- 'माताजी ! यह बात तो सारे शहर मे फैल जायेगी, सभी व्यक्ति इस घटना से परिचित हो जावेगे तथा कल भी यही दशा होगीं जो आज हुई । मै कल के ओसरे वाले परिवार से भी मेरी तरह व्यहवहार करने को कहूँगी ।'

वहू ने शान्तिपूर्वक बुढिया को समझाया । बुढिया के समझ मे आ गया तथा उसने सदैव के लिए झगडा करना त्याग दिया । इस उदाहरण से हमे समझना यह है कि वहू ने सामायिक के स्वरूप को समझ लिया था इसलिए वह बुढिया पर विजय प्राप्त कर सकी, उसे परिवर्तित कर सकी ।

अन्य आवश्यक बातें-

कई भाई-वहिन प्रतिदिन सामायिक करते हे । सामायिक करना नितान्त आवश्यक हे । लेकिन मै चाहता हूँ कि आप कुछ परिवर्तन लावे एव शुद्ध सामायिक करने का अभ्यास बनावे । न

आपकी सामायिक की प्रवृत्ति की आलोचना नही करता, परन्तु उसमें संशोधन देना चाहता हूँ, सुधार चाहता हूँ ।

सामायिक सदैव शान्त, एकान्त स्थान पर करे । यथासम्भव यह पवित्र कार्य स्थानक (धर्मस्थान) मे अधिक उपयुक्त रहेगा । एकान्त स्थान मे मन पर अधिक नियन्त्रण सम्भव है । सामायिक के वस्त्र भी सादे, अल्पमूल्य वाले एव शुद्ध हों । सामायिक मे सादगी नितान्त आवश्यक है । चमकीले वस्त्र एवं आभूषण सामायिक की साधना के लिए उपयुक्त नही है । अल्प आरम्भ से बने हुए साधारण स्वच्छ वस्त्र का प्रयोग करना अधिक उपयोगी होगा । बहिने धर्मस्थान में बहुमूल्य वस्त्र एवं आभूषण धारण करके आती हैं यह उचित नही है ।

सामायिक किसी भी समय की जा सकती है । फिर भी प्रातःकाल ब्रह्ममुहूर्त इस कार्य के लिए बहुत बच्छा है । रात्रि को भी सामायिक करना उचित है । सामायिक का काल ऐसा हो जब चित्त मे शान्ति हो ।

स्वाध्याय करें-

सामायिक को बेगार या भार समझकर नहीं करे, वरन् जीवन का आवश्यक अग समझकर आत्मोत्थान के लिए सामायिक करे । सामायिक मे व्यर्थ की बातों का त्याग करें एवं स्वाध्याय करे। स्वाध्याय, ध्यान, चिन्तन आदि को सामायिक का आवश्यक अग बनावे । सामायिक हम किसी और के लिए नही वरन् स्वय अपने ही लिए करते है । इसलिए उल्लास एवं उत्साह पूर्वक सामायिक करे । सामायिक मे विकथा का त्याग करे । परन्तु साथ ही स्वाध्याय अवश्य करे । केवल माला फिराना, प्रार्थना-भजन बोल लेना या आनुपूर्वी आदि गिन लेना ही पर्याप्त नही होगा । मै इनका निषेध नही करता लेकिन सामायिक मे स्वाध्याय, ध्यान, चिन्तन, मनन अत्यन्त आवश्यक है ।

दैनिक जीवन-

सामायिक का प्रभाव दैनिक जीवन पर भी स्पष्ट दृष्टिगत होना चाहिये । खान-पान सात्विक हो, रहन-सहन सदा एव कुल मर्यादा के अनुकूल हो । तात्पर्य यह है कि दूसरो के देखा-देखी फैशन के बहाव मे न बहे । साथ ही जीवन को प्रमाणिक बनावे । सामायिक जैसी पवित्र एव उत्तम साधना करने के बाद भी जीवन मे परिवर्तन न आवे, जीवन मे सत्य, अहिसा, अचौर्य आदि का प्रादुर्भाव न हो ऐसा कभी सम्भव नही है । विषय और कषायो मे मदता लावे, जीवन उन्नत बनावे-अनुकरणीय बनावे, समता का विकास करे । जिस प्रकार थोडे से समय मे किया गया भोजन दिन भर शक्ति प्रदान करता है, घडी मे थोडे से समय मे भरी गई चाबी दिन भर चलती है । ठीक उसी प्रकार दो या चार घडी की सामायिक जीवन को प्रामाणिक बनावे तथा उत्थान की ओर अग्रसर करे ।

जीवन को बदलो-

यदि सामायिक से निवृत्त होने के बाद पुनः काले धन्धे चालू रहे, झूॅठ प्रपच चालू रहे, इर्षा-द्वेष बना रहे तो यह शोभास्पद बात नही है । इसलिए सामायिक के प्रभाव से जीवन सुधरना चाहिये । सामायिक के प्रभाव से जीवन मे सरलता, प्रेम मानवता उभरे, सन्तोष की अभिवृद्धि हो ।

आचार्य अमितगति के शब्दो मे-

**'सत्वेषु मैत्री गुणिषु प्रमोदं, क्लिष्टेषु जीवेषु कृपापरत्वम्।
माध्यस्थ भावं विपरीत वृत्तौ, सदा ममात्मा विध्धातुदेव॥'**

ऐसी भावनाएँ वने । ससार के समस्त प्राणियो के प्रति हमारा मेत्री भाव हो, गुणीजनो के प्रति प्रमोद भाव हो, दुःखीजनो के प्रति करूणा भाव हो तथा विपरीत परिस्थितियो मे भी विरोधियो के प्रति भी माध्यस्थ भाव हो, यह सामायिक का प्रतिफल हे ।

लेकिन आजकल परिस्थितियाँ कुछ विचित्र है । ऐसे उदाहरण भी देखने मे आते है कि सामायिक करते-करते कई वर्ष हो गए, मुँह पर मुँहपत्ति के धागे के निशान भी वन गये, परन्तु मनोवृत्तियो मे सुधार नहीं हुआ, जीवन मे प्रमाणिकता नही आई । क्लेश और कदाग्रह नही छूटा । ऐसे व्यक्ति धार्मिक क्रियाओं को भी बदनाम करते हैं ।

एक बार किसी नगर मे सन्त पधारे । प्रतिदिन व्याख्यान होने लगे । एक दिन एक महिला व्याख्यान में देर से आई तथा दो रेत घडियाँ साथ में लाई । व्याख्यान का समय कम रह गया था फिर भी बाई ने सामायिक ग्रहण कर ली । अब रेत वाली घडियो को वह बार-बार हिलाती । इस प्रकार उस महिला ने समय से पूर्व सामायिक पूर्ण करने का प्रयत्न किया । लगभग 40 मिनिट मे सामायिक पूर्ण हो गई और महिला ने सामायिक पार ली । सन्तो मे से एक सन्त यह सब देख रहे थे । उन्होने व्याख्यान के बाद पूछ ही लिया । महिला ने स्पष्ट कह दिया कि समय कम रहने से रेत को हिलाकर जल्दी खिरादी जिससे सामायिक जल्दी पूरी हो गई। सन्त ने पूछा- 'बाई ! आप कभी इस रेत घडी को ओर कभी उस रेत घडी को क्यो हिलाती थी ?' बाई का उत्तर था- 'महाराज सा ! मै प्रत्येक घडी से एक-एक सामायिक ग्रहण की इस प्रकार एक ही काल मे दो सामायिक पूरी हो गई ।' आप ही विचार करे क्या यह उचित है? कदापि नही ! यह तो अपने आपको धोखा देना है । सामायिक को ब्लेकमेल करना है । महिला ने पवित्र सामायिक को समझा ही नही । उसने तो रेत की घडियो को ही सामायिक समझ लिया होगा। धर्मस्थान मे आकर भी मनोवृत्तियो को न बदलना कहाँ तक उचित है ।

'अन्य स्थाने कृतं पापं, धर्मस्थाने विमुच्यते ।
धर्मस्थाने कृतं पापं, वज्र लेपो भविष्यति ॥'

अन्यत्र किये गये पापो को धर्मस्थान मे जाकर धर्म क्रियाओ द्वारा नष्ट किया जाता है, परन्तु जो पाप धर्म स्थान मे जाकर किये

जाते है उनकी निवृत्ति कैसे होगी ? सामायिक के द्वारा अपनी आत्मा को शुद्ध बनावे एव मोक्ष मार्ग पर अग्रसर करे । कवि कहता है-

जीवन उन्नत करना चाहो तो सामायिक करलो ।
आकुलता से बचना चाहो तो सामायिक करलो ॥
तन-धन, परिजन सब सपने हैं, नश्वर जग में नहीं अपने हैं ।
अविनाशी सद्‌गुण पाना चाहो तो, सामायिक करलो ॥
चेतन निज घर को भूल रहा, पर-धन माया में झूल रहा ।
सद्‌चित आनन्द पाना चाहो तो, सामायिक करलो ॥
विषयों में निज गुण मत भूलो, अब काम क्रोध में मत झूलो ।
समता सर में नहाना चाहो तो, सामायिक करलो ॥

नि:सदेह सामायिक चिन्तामणि रत्न से भी बढकर है जिसके द्वारा अपने गन्तव्य स्थान-मोक्ष की प्राप्ति कर सकते है ।

विधि-

सामायिक ग्रहण करने की विधि की जानकारी सक्षेप मे कर लेवे ।

1 <u>उपकरण-</u> आसन, मुँहपत्ति, पूजणी, माला, आनुपूर्वी, धार्मिक पुस्तक आदि । निर्वद्य एकान्त एव शान्त स्थान पर पूजणी से प्रमार्जन कर आसन बिछाया जावे । पगडी, कोट, कुर्ता आदि वस्त्रो को उतार कर श्वेत शुद्ध दुपट्टा एवं चोलपट्टा धारण कर, मुँह पर मुखवस्त्रिका बॉधकर, उत्तर या पूर्व की दिशा मे मुँह करके खडे होवे । फिर नवकार मन्त्र का तीन बार उच्चारण किया जावे ।

तीन बार गुरु वन्दना सूत्र (तिक्खुतो) से विधियुक्त वन्दना कर आलोयणा सूत्र (इरियावहिय अर्थात् इच्छाकारेण का पाठ) एक बार कायोत्सर्ग सूत्र (तस्स उत्तरी) एक बार, आगार सूत्र (अन्नत्थ) एक बार बोलकर कायोत्सर्ग-ध्यान करना है । ध्यान खडे रहकर या बेठे- ठे किया जा सकता है । जिन मुद्रा मे ध्यान किया जावे ।

ध्यान मे लोगस्स (ध्यान मे इच्छाकारेणं की भी परम्परा प्रचलित है, परन्तु लोगस्स अधिक उपयुक्त है) के पाठ का चिन्तन करे तथा 'नमो अरिहताण' कहकर ध्यान खोलना चाहिये । प्रगट मे 'नमस्कार मन्त्र' बोलकर ध्यान पालने का पाठ एव एक बार 'लोगस्स' का पाठ बोलना । फिर गुरुजन हों तो उनकी ओर मुख करके और गुरुजन न हो तो उत्तर या पूर्व दिशा की ओर मुँह करके गुरु वन्दन के पाठ से विधियुक्त तीन बार वन्दन करे तथा प्रतिज्ञा सूत्र (करेमि भते के पाठ) से सामायिक ग्रहण करे एव दो बार नमोत्थुण का पाठ बायां घुटना ऊँचा रखकर बोले । पाठ के अन्त मे पहली बार 'ठाण सम्पत्ताण' बोले और दूसरी बार ठाण 'सपाविउ कामाण' बोले ।

फिर सामायिक के काल मे स्वाध्याय, धर्म चर्चा, प्रार्थना आदि धर्म क्रियाएँ करे तथा समीक्षण ध्यान के माध्यम से अन्तरप्रवेश का प्रयास करे ।

दोष–

यद्यपि सामायिक बहुत शुद्ध एव पवित्र साधना है तथा उसमे पूर्ण सावधानी रखना आवश्यक है । सामायिक के काल मे मन, वचन एव काया के योगो पर नियन्त्रण रखना आवश्यक है । पूर्ण सावधानी रखते हुए भी सामायिक मे दोष लगने का अदेशा रहता है । दोषो से बचना चाहिये । सामायिक मे मन, वचन एव काया के 32 दोषो का उल्लेख आता है । साधक को इन दोषो से बचना चाहिये । दोषो की जानकारी होने पर बचने का प्रयत्न किया जा सकता है । इसलिए सक्षेप मे 32 दोषो की जानकारी इस प्रकार है-

1 अविवेक- सामायिक मे सावद्य-निर्वद्य, उचित-अनुचित का विवेक न रखना।

2 यशकीर्ति- यश या प्रशसा की इच्छा से सामायिक करना ।

3. लाभार्थ- धन आदि के लाभ की भावना से सामायिक करना ।

4 गर्व- जाति, कुल आदि या अन्य किसी प्रकार का अभिमान करना ।

5 भय- लोकनिन्दा का भय, राजकीय भय या अन्य किसी भी प्रकार के भय के कारण सामायिक करना ।

6 निदान- भौतिक फल की इच्छा से यथा- मेरी सामायिक का यदि कोई फल होता हो तो मुझे अमुक सामग्री मिले । जैसे ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती ने अपने पूर्व के सभूति के भव मे निदान किया था।

7 सशय- सामायिक के फल मे शका करना ।

8. रोष- सामायिक मे राग-द्वेष, क्रोध आदि करना ।

9 अविनय- देव, गुरु, धर्म का विनय न करना या विनय भाव रहित सामायिक करना ।

10. अबहुमान- अनादर भाव से बेगार समझकर सामायिक करना ।

वचन के दस दोष-

1 कुवचन- गन्दे और कषायजनक शब्द बोलना ।

2. सहसाकार- सहसा, बिना विचारे असत्य वचन बोलना।

3 स्वच्छन्द- धर्म विरुद्ध मनमाने वचन बोलना ।

4. संक्षेप- पाठों को सक्षेप मे बोलना ।

5. कलह- क्लेशकारी वचन बोलना ।

6 विकथा- स्त्रीकथा, भक्तकथा, देशकथा एव राजकथा आदि करना ।

7. हास्य- व्यंग्य पूर्ण वोलना, हँसी मजाक करना ।

8. अशुद्ध- पाठों का अशुद्ध उच्चारन करना ।

9. निरपेक्ष- उपयोग रहित, सिद्धान्त की उपेक्षा करके वचन वोलना ।

10. मुम्मुन- पाठों को गुनगुनाते हुए अस्पष्ट वोलना।

काया के बारह दोष-

1 कुआसन- अभिमान एव अविनय के आसन से बैठना ।

2. चलासन- वार-वार आसन वदलना ।

3. चल दृष्टि- दृष्टि को स्थिर नहीं रखना ।

4 सावद्य क्रिया- पापकारी कार्य करना ।

5. आलम्बन- अकारण दिवाल आदि का सहारा लेना।

6 आकुचन प्रसारण- बिना कारण शरीर के अगो को फैलाना और समेटना ।

7 आलस्य- अगडाई लेना, आलस्य मे समय व्यतीत करना।

8. मोडन- अगुलियॉ चटकाना ।

9 मल- शरीर का मेल उतारना ।

10 विमासन- शोक युक्त आसन से बैठना, बिना पूजे खुजलाना ।

11 निद्रा- ऊँघना या नीद लेना ।

12 वैयावृत्य- निष्कारण दूसरो से सेवा कराना ।

सामायिक मे उपरोक्त दोषो से बचना चाहिये ।

मन पर नियन्त्रण-

कई भाई प्रश्न करते है कि मन पर नियन्त्रण करना अत्यन्त दुष्कर है और जब मन चचल रहता है तो सामायिक करने से क्या लाभ है ?

प्रश्न महत्वपूर्ण है परन्तु इसे समझना चाहिये । मन वास्तव मे बहुत चचल है । इस पर नियन्त्रण करना कठिन है फिर भी असम्भव नही है । यदि सामायिक के काल मे स्वाध्याय किया जावे, मन पर नियन्त्रण पाने का प्रयत्न किया जावे तो सफलता अवश्य मिलती है । जो व्यक्ति सामायिक मे स्वाध्याय नही करते या फालतु बैठे रहते है उनका मन तो इधर-उधर भटक सकता है, अन्यथा मन स्थिर भी किया जा सकता है । अभ्यास से कठिन से कठिन कार्य सम्भव है । कवि ने कहा है-

करत करत अभ्यास के, जड़मति होत सुजान ।
रसरी आवत जात ते, सिल पर परत निशान ॥

रस्सी के बार-बार लगने से पत्थर जैसा कठोर पदार्थ भी घिस जाता है तो फिर मानव के मन मे परिवर्तन आना क्या कठिन है ? इसलिए मन पर विजय पाने के लिए निरन्तर अभ्यास करना चाहिये । यदि आरम्भ मे मन पर नियन्त्रण नही रहे तो घबराने या निराश होने की आवश्यकता नही है ।

स्वाध्याय रूपी लगाम से मन रूपी घोडे पर नियन्त्रण पाना सरल है । जो मन को वश मे कर लेता है वह महान है । कहा है-

'मनोविजेता जगतोविजेता'

अर्थात् मन को जीतने वाला ससार को जीतने वाला होता है । सब का लक्ष्य है, मुक्त होना । सामायिक मुक्त होने का साधन है । इसलिए साधुवर्ग तो जीवन पर्यन्त की सामायिक करता है और हम भी पर्युषण पर्व के इस पावन प्रसग पर प्रतिदिन नियमित सामायिक करने का सकल्प करें । हमारा जीवन सामायिक के द्वारा उज्ज्वल बनेगा । किसी कवि ने कहा है-

करलो सामायिक रो साधन, जीवन उज्ज्वल होवेला ।
सत्संगत और शान्त स्थान दोष बचावेला ।
फिर सामायिक साधन करने, शुद्धि मिलावेला ॥ करलो...

दोय घडी निज रूप रमण कर जग विसरावेला ।
धर्म ध्यान में लीन होय, चेतन सुख पावेला ॥ करलो...
सामायिक से जीवन सुधरे, जो अपनावेला ।
निज सुधार से देश जाति सुधरी हो जावेला ॥ करलो...

आप समझ गये होंगे कि सामायिक की साधना का क्या महत्त्व है ? इसलिए आप भी सामायिक को जीवन का अग बनावें एव इसकी शुद्ध आराधना करे । शुद्ध सामायिक द्वारा मोक्ष प्राप्ति सभव है । प्रार्थना की कडियो मे कवि भी कहता है कि हे प्रभो ! मै भी आपके ही समान बनूँ । प्रभु के समान बनने के लिए समता को जीवन मे लाना होगा । अतः प्रमाद का त्याग करे और समय का सदुपयोग करे ।

कवि ने कहा है-

काल करे सो आज कर, आज करे सो अब ।
पल में प्रलय होयगो, बहुरी करेगे कब ॥

भगवान महावीर ने भी कहा है-

'समयं गोयम ! या पमायए ।'
अर्थात् हे गौतम ! समय मात्र का भी प्रमाद मत करो।

यदि आत्मा का उत्थान करना चाहते हों तो सामायिक को अपनाये, समता धारण करे । अन्तर हृदय से सामायिक को ग्रहण करे । मोती प्राप्त करने के लिए गोताखोर समुद्र के भीतर प्रवेश करते है । केवल उपर तैरने से मोती नही मिलते । इसलिए कहा है-

जिन खोजा तिन पाईया, गहरे पानी पेठ ।

यादृशी भावना यस्य, सिद्धिर्भवति तादृशी ।
जैसी भावना होती है, वैसे ही फल की प्राप्ति होती है ।

महान पर्व संवत्सरी

आत्मोत्थान का यह पर्व शान्ति एवं समता का स्त्रोत है, पापों को नष्ट करने वाला है । आज का यह महान पर्व किसी वर्ग, जाति या समाज विशेष का नहीं है, यह तो मानव मात्र का है । चन्द्र, सूर्य, पृथ्वी आदि के समान यह पर्व प्राणी मात्र के लिए उपयोगी है । कषाय रूपी अग्नि को शान्त करने के लिए, मनोमालिन्य को धोने के लिए यह पर्व स्वच्छ, शीतल जल के समान है । यह शान्ति एवं साधना का पर्व है, क्षमा और आलोचना का पर्व है । अतः आज के पावन अवसर पर सभी अन्तःकरण से क्षमायाचना करें एवं क्षमा प्रदान करें ।

खामेमि सव्वे जीवा, सव्वे जीवा खमंतु मे ।
मित्ति मे सव्व भूएसु, वेरं मज्झं ण केणई ॥

पंथडो निहालुं रे, वीजा जिन तणो रे, अजित अजित गुण धाम।
जे ते जीत्या रे, तेणे हुं जीतियो रे, पुरुष किश्युं मुझ नाम ?

यह जिनेश्वर प्रभु अजितनाथजी की प्रार्थना है । भक्त कवि श्री आनन्दघनजी कहते है कि वर्तमान चौवीसी के दूसरे तीर्थकर श्री अजितनाथजी के मार्ग को जानना चाहता हूं । हे प्रभु ! आप नाम से भी अजित हैं और कार्य से भी अजित है । आपको जीतने की शक्ति संसार के किसी पदार्थ मे नही है । यही नही, आपने राग-द्वेष रूपी महान शत्रुओ पर विजय प्राप्त कर ली है । अतः आप समस्त गुणों के भण्डार हैं । आपके गुणो का वर्णन करना मेरे बस का कार्य नही है ।

आगे कवि कहता है कि हे प्रभु ! बडी विचित्र स्थिति है । आपने जिन कर्मो को जीत लिया है, उन्ही कर्मो ने मुझे दबोच रखा है, मुझ पर अपना आधिपत्य जमा रखा है । अब आप ही बताएँमै पुरुष किस प्रकार हूं ? अर्थात् मेरा पौरुष कुण्ठित हो चुका है । अरे, आपश्री ने तो पुरुषोचित कार्य कर राग-द्वेष को परास्त कर दिया, परन्तु मै तो इनसे हारा हुआ हू । इसलिए मेरा पुरुष कहलाना व्यर्थ है, एक विडम्बना है, मिथ्या दम्भ है । आपने अपना पौरुषत्व जागृत कर दिया है, आप आत्मा से परमात्मा बन चुके है । लेकिन मै तो अब भी प्रगाढ निद्रा मे सोया हुआ हू इसलिए परम पद को प्राप्त नही कर पाया हू । किसी कवि ने भी कहा है-

जो सोया सिंह जगायेगा, नर नारायण बन जायेगा ।
जो आत्म ज्योति जगायेगा, नर नारायण बन बन जायेगा ॥

अध्यात्म योगी आनन्दघनजी भी यही कहते है कि हे प्रभु अजित जिनेश्वर ! मै अपनी आत्म ज्योति को जगाकर आपके मार्ग का अनुगामी बनना चाहता हू । वे आगे कहते है-

चरम नयण करी मारग जोवतां रे, भूल्यो सयल संसार।
जेणे नयणे करी मारग जोइये रे, नयण ते दिव्य विशाल ॥

हे प्रभु ! मैने इन चर्म चक्षुओ से आपका मार्ग देखना चाहा तो संसार मे परिभ्रमण किया । इन चर्म चक्षुओ से आपके मार्ग को पहचानना सभव नही है । उसके लिए तो आपके जैसी दिव्य-दृष्टि होना आवश्यक है । वीतराग मार्ग को समझने के लिए अपनी दृष्टि बदलनी होगी । जब अन्तरदृष्टि से देखेगे तो दिव्य विचार उत्पन्न होगे, भेद विज्ञान होगा । अभी मै ससार मार्ग मे आसक्त हू । धन, कुटुम्ब-परिवार, शरीर आदि को मै अपना समझ रहा हू, लेकिन जब मेरी अन्तर-दृष्टि जागृत होगी तो तत्त्व निर्णय कर सकूगा, आत्मा और शरीर के भेद को समझ सकूगा । मै सिद्ध स्वरूप शुद्ध आत्मा हू, यह धन, वैभव, हाट, हवेलिया, पारिवारिक जन, यहा तक कि यह शरीर भी मेरा अपना नही है । मै चेतन हू, ये जड पदार्थ है । मै जीव हू, ये सभी पुद्‌गल है । मै इन सबसे भिन्न हू । यह आपका दिव्य मार्ग है और चर्म चक्षुओ से ऐसा दिव्य मार्ग नही देखा जा सकता । इसके लिए तो आपके जैसी अन्तर-दृष्टि की आवश्यकता है । हे प्रभु ! मुझे भी अन्तर-दृष्टि प्राप्त हो ।

आज पर्युषण पर्व का अन्तिम दिवस है । इसे क्षमा दिवस के रूप मे मनाते है । गत सात दिनो की साधना द्वारा आज लक्ष्य प्राप्त करना चाहते है । आध्यात्म योगी आनन्दघनजी ने प्रभु की प्रार्थना करते हुए कहा है कि आपने जिन कषायो पर विजय प्राप्त की है, उन कषायो को मुझे जीतना है । कषाय का प्रथम अग क्रोध है । क्रोध को क्षमा से परास्त किया जा सकता है ।

आत्मा को आलोकित करने का अपूर्व अवसर–

पर्युषण का यह पावन प्रसग आत्म-शान्ति प्रदान करने के लिए प्रति वर्ष उपस्थित होता है । गत सात दिनो से आज के इस सवत्सरी महापर्व की प्रतीक्षा कर रहे थे । आज पर्व का शिखर दिवस है । यो तो आठो ही दिवस आध्यात्मिक दृष्टि से, आत्मोत्थान

की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है, परम मगलकारी है । लेकिन गत सात दिवस की अपेक्षा आज के दिवस का विशेष महत्त्व है । जिस प्रकार हम लोग दिपावली के पूर्व घरो की सफाई करते है, मकानो मे सफेदी करते है, कूडा-कचरा बाहर फेक देते है तथा दीपावली के दिन दीपक जलाकर घरों को प्रकाश से आलोकित करते है, उसी प्रकार आज का दिवस आध्यात्मिक दीपावली का पावन दिवस है । गत सात दिनों में सुज्ञ व्यक्ति, भव्य प्राणी अपनी आत्मा रूपी मकान मे रहे हुए कषाय रूपी कचरे को निकालने का प्रयत्न करते हैं, आत्म शुद्धि करते है तथा आज के दिवस मे उपवास धारण कर सम्यग् ज्ञान-दर्शन-चारित्र और तप की आराधना द्वारा आत्मा को आलोकित करते हैं । यह पर्व संदेश देता है कि अनादि काल से हे जीव तेरी यह आत्मा कषाय से रंजित है, आत्मा पर कर्म रूपी कचरा-मैल लगा हुआ है और अब इसे स्वच्छ कर, तपस्या के माध्यम से जला दे, जीवन मे समता रस का संचार कर और अपने शाश्वत सुख के मार्ग पर कदम बढा ।

वार्षिक लेखा-जोखा देखें-

व्यापारी-व्यवसायी वर्ष मे एक बार वर्ष भर का हिसाब तैयार कर हानि-लाभ का लेखा-जोखा करते है । आज के इस पावन प्रसंग से आत्मा के हानि-लाभ का लेखा-जोखा देखने का अवसर है । आज के दिन हम भी अपने वर्ष भर के अपराधो का अवलोकन करे, त्रुटियो को ढूढने का प्रयास करे और उनके लिए प्रायश्चित करे, प्रायश्चित ले, क्षमायाचना करें । कर्म मल को जलाकर आत्मा को शुद्ध बनाने का यह पावन अवसर है । लेखा-जोखा देखने से आशय केवल यह नही है कि वर्ष मे हमने कितनी सामायिक की, उपवास, पौषध, दया की, कितने प्रवचन सुने या किन-किन मुनिराजो-महासतियो के दर्शन किये ? ये तो हम करे ही, लेकिन आज हम यह विचार करे कि हमने कषाय को (राग-द्वेष) कितना घटाया है ? प्रवचनो को कितने अश मे जीवन मे उतारा है ? अपने

जीवन मे प्रेम, करूणा, सहिष्णुता, मैत्री, दया-दान, सरलता, मधुरता आदि गुणो को कहाँ तक विकसित किया है ? प्रवचनो को सुनने मात्र से विशेष लाभ नही होगा। उन्हे जीवन मे स्थान देने से ही सुनने की सार्थकता है । राजकुमार गजसुकुमाल और अर्जुनमाली ने केवल एक ही बार प्रभु का उपदेश सुना और जीवन को राजमार्ग-मोक्षमार्ग पर लगा दिया । कवि ने कहा है-

चन्दन की चुटकी भली, गाड़ी भरी न काठ ।
चतुर तो एक ही भली, मूरख भले न साठ ॥

अर्थात् हजारो मन लकडी की अपेक्षा चन्दन का एक टुकडा अच्छा है । यद्यपि दोनो लकडियाँ है । पत्थर, कङ्कर भी भूमि से प्राप्त होते है तथा स्वर्ण, रत्न आदि भी पृथ्वी से ही । परन्तु महत्व पत्थरों का नही, रत्नों का है, स्वर्ण का है । इसी प्रकार प्रवचन का जीवन मे उतारने का महत्व है ।

आज का यह दिवस आत्मा का पर्व है । आत्मोत्थान का यह पर्व शान्ति का सन्देश वाहक, समता का सचार करने वाला है । पापो को नाश करने वाला है । यह किसी वर्ग जाति या समाज विशेष का नही है, वरन सबका है, मानव मात्र का है । जिस प्रकार चन्द्र सूर्य, पृथ्वी आदि सभी को यथायोग्य समान रूप से अपनी सामग्री प्रदान करते है, उसी प्रकार यह पर्व भी समग्र मानव समाज के लिए उपयोगी है । केवल जैन समाज ही इसका अधिकारी नही है, वरन् जो भी अपने आन्तरिक अन्धकार को दूर हटाना चाहता है, आत्मशोधन करना चाहता है, सुप्त आत्मा को जागृत करना चाहता है, वह इस पावन अवसर का लाभ उठा सकता है । कषाय रूपी अग्नि को शान्त करने के लिए मनोमालिन्य धोने के लिए यह शीतल स्वच्छ जल के समान है । विषय विकारो के निवारण के लिए अमृत के समान है तथा मोह रूपी अन्धकार को नष्ट करने के लिए देदिप्यमान सूर्य के सदृश्य है । मुमुक्षुओ के लिए चिन्तामणि रत्न एव कल्पवृक्ष से भी बढकर है ।

शास्त्रीय प्रमाण–

संवत्सरी महापर्व का इतिहास अनादि काल से जुडा रहा है । यह अनादिकालीन पर्व है । इस पर्व का सम्वन्ध किसी एक युग से नही है । वर्तमान युग में भगवान् महावीर ने इस पर्व की आराधना की । समवायांग सूत्र मे लिखा है-

'समणे भगवं महावीरे वासाणं सवीसइराए मासे वइक्कंते। सत्तरिएहिं राइंदिएहिं सेसेहिं वासावासं पज्जोसवेई ।

श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने वर्षावास के एक माह और बीस दिन व्यतीत होने पर तथा सत्तर दिन शेष रहने पर पर्युषण पर्व अर्थात् सम्वत्सरी पर्व की आराधना की ।

कल्पसूत्र मे भी ऐसा ही उल्लेख आता है कि चातुर्मास के पचास दिन व्यतीत होने पर तथा सत्तर दिन शेष रहने पर भगवान् ने सम्वत्सरी पर्व की आराधना की थी ।

इससे स्पष्ट है कि चरम तीर्थङ्कर भगवान् महावीर ने वही प्ररूपित और आचरित किया जो पूर्व के तीर्थङ्करो ने किया । सभी तीर्थङ्करो की मौलिक प्ररूपणा एक समान होती है । सभी सर्वज्ञो का ज्ञान समान होता है । पूर्व के तीर्थङ्करो के आचारो का प्रतिबिम्ब हमे भगवान् महावीर मे दृष्टिगत होता है । ये हमारे अन्तिम तीर्थङ्कर है इसलिए उनका आचरण और उपदेश हमारे लिए आधारभूत है । वैसे है वे पूर्व तीर्थङ्करो के समान ही । इसलिए यह पर्व भी अनादिकालीन है ।

सम्वत्सरी की मतभिन्नता का कारण चातुर्मास काल मे अधिक मास का आ जाना है । भादवा सुदी पचमी को ही सम्वत्सरी का आग्रह करने से पचास दिन एव सत्तर दिन दोनो नियमो के टूटने का प्रसग बन सकता है । जब आसोज दो होगे तब भादवा सुदी पचमी को सम्वत्सरी मनाने पर 100 दिन बचते है जवकि पीछे 70 दिन रहना चाहिये । जब सावन मास दो होगे तो भादवा

सुदी पचमी को सम्वत्सरी मनाते है, जिससे 50वे दिन मनाने का विधान टूट जाता है। ऐसी स्थिति मे नीति का वाक्य है कि सारे नियम भग करने की अपेक्षा आधे सुरक्षित रख लेना बुद्धिमता है । अत. चातुर्मास लगने के पचासवे दिन सवत्सरी मनाना अधिक उपयुक्त है । सम्वत्सरी के मतभेदो को समाप्त करने के लिए समता विभूति आचार्य प्रवर श्री नानालालजी म सा ने तो वर्षो पूर्व यह घोषणा कर रखी है कि यदि सारा जैन समाज या श्वेताम्बर समाज एक होकर किसी भी तिथि को संवत्सरी मनाने की घोषणा करे तो मै अपनी परम्परा की तिथि गौण करके उस तिथि को सम्वत्सरी मनाने को तैयार हूॅ । यही नही, सम्वत्सरी एकता के लिए आपने सरदारशहर एव चित्तौडगढ चातुर्मास मे अपनी निर्णित तिथि गौण करके सामूहिक तिथियो को महत्व दिया था । यदि सारे आचार्य, मूर्धन्य मुनिराज सम्वत्सरी एकता के लिए अपने पक्ष को छोडकर कोई भी एक तिथि का निर्णय ले तो वह निर्णय जैन समाज के लिए स्वर्णिम होगा । सम्वत्सरी एकता मे किसी के महाव्रतो के पालन मे भी कोई दोष नही है । अत. मंचस्थ एकता के पहले सम्वत्सरी एकता आवश्यक है ।

आराधना पर्व-

आज का दिवस शान्ति का पर्व है, साधना का पर्व है । आज का दिवस चतुर्विद सघ - साधु, साध्वी, श्रावक एवं श्राविका के लिए आराधना करने का है । प्रत्येक साधु एवं साध्वी को वर्ष भर मे ज्ञान, दर्शन एवं चारित्र मे लगे दोषो की आलोचना करना तथा समस्त प्राणियो से क्षमायाचना करना आवश्यक है । जो ऐसा नही करता उसे प्रायश्चित आता है । श्रावक एव श्राविकाओ के लिए भी आज पापो की आलोचना एव क्षमायाचना आवश्यक हे । इस पर्व की आराधना अन्तरमन से होनी चाहिये । अन्तरमन से आलोचना करेगे, क्षमायाचना करेगे तो, वास्तविक शान्ति का अनुभव होगा । कवि कहता है-

यह विषय कषाय घटाने, यह आतम गुण विकसाने ।
जिनवाणी का वल लाया है रे ॥ यह पर्व...

आज अधिकांश व्यक्तियो के उपवास है, यह इस पर्व की विशेपता है । अन्य पर्वो पर आमोद-प्रमोद, राग-रंग एव भोग विलास की प्रमुखता रहती है परन्तु इस पर्व पर इन सवसे मुँह मोडा जाता है । आज का पर्व त्याग प्रधान है जो छोटे वालक अन्य पर्वो पर या सामान्य दिनो मे खान-पान की वस्तुओ के लिए झगडते है, वे ही आज उपवास के लिए लालायित हैं । तात्पर्य यह है कि आज का दिवस शरीर लक्ष्यी, नही आत्म लक्ष्यी है, लौकिक नही लोकोत्तर है, भौतिक नहीं आध्यात्मिक है । कवि कहता है-

सर्व पर्वों का ताज, पुण्य दिन आज संवत्सरी आई ।
सब जन लो हर्ष मनाई ॥
चौरासी लाख जीव योनि से, जो वैर किया मन, वच, तन से ।
भूलो वह और लो, मैत्री भाव बसाई ।
हाँ आज सम्वत्सरी आई...
जो खमता और खमाता है, वह प्राणी आराधक बन जाता है ।
आराधक की होती है गति सुखदायी ।
हाँ आज सम्वत्सरी आई....

इसलिए हम सब मिलकर इस महान् पर्व की आराधना करे । आज के दिन सभी जीवो से क्षमायाचना करे ।

खामेमि सव्वे जीवा, सव्वे जीवा खमंतु मे ।
मित्ति में सव्वभूएसु, वेरं मज्जं ण केणई ॥

मै ससार के समस्त प्राणियो से क्षमा चाहता हूँ और सभी जीवों को क्षमा प्रदान करता हूँ । सभी जीवो से मेरा मैत्री भाव है, किसी से भी वैर भाव नही है ।

कैसा महान आदर्श है, कैसा विशिष्ट सिद्धान्त है ? साधक अपनो त्रुटियों के लिए स्वय क्षमायाचना करता है तथा अपनी ओर

से सभी को क्षमा प्रदान भी करता है, सभी जीवो से मित्रता रखता है। 'मेरी भावना' नामक कविता मे कवि कहता है-

मैत्री भाव जगत में मेरा, सब जीवों से नित्य रहे ।
दीन दु:खी जीवों पर मेरे, उर से करूणा स्त्रोत बहे ॥

आत्मवत् सभी जीवो को समझने का यह सिद्धान्त पवित्र और कल्याणी है । क्षमा मागना और क्षमा करना वीरो का काम है। कहा है- 'क्षमा वीरस्य भूषण' ।

महर्षि वेद व्यास ने कहा है-

'ससार मे दो प्रकार के व्यक्ति स्वर्ग के ऊपर भी स्थित होते है - एक तो वे जो दरिद्र होकर भी कुछ दान करते है, और दूसरे वे जो शक्तिशाली होकर भी क्षमा करते है । क्षमा प्रदान करना साधारण बात नही है ।

कुलपुत्र एक क्षत्रिय था । बाल्यावस्था मे ही उसके पिता की किसी शत्रु ने हत्या कर दी थी । विधवा माता ने उसे बडी कठिनाई से बडा किया । यौवन अवस्था मे एक बार कुलपुत्र ने युद्ध मे विशेष वीरता दिखाई जिससे राजा ने उसे सम्मानित किया एव सेना मे उच्च पद प्रदान किया ।

कुल पुत्र से उल्लास घर आया और अपनी माता के पास इस आशा से गया कि मॉ इस घटना को सुनकर हर्षित होगी । परन्तु उसने पाया कि मॉ उदास है तथा अश्रुपात कर रही है । मॉ की यह दशा देखकर कुलपुत्र मॉ के चरणो मे गिर गया और विनम्र शब्दो मे दु:ख का कारण पूछा । मॉ ने रोते हुए कहा- 'बेटा, तूने सग्राम मे शत्रुओ को तो परास्त कर दिया परन्तु जव तक तेरे पिता का हत्यारा जीवित है तव तक मेरी आत्मा को शान्ति कैसे मिल सकती है ? तेरी वीरता और पद का क्या लाभ ?'

पुत्र ने पूछा- 'मॉ, जल्दी वताओ मेरे पिता का हत्यारा कोन है ? मे उसे जीवित या मृत पकड कर तेरे पास लाऊँगा । मॉ जल्दी करो !'

मॉ ने पिता के हत्यारे का परिचय दिया । पुत्र ने भीष्म प्रतिज्ञा की 'पिता के हत्यारे को जीवित या मृत लेकर ही घर मे प्रवेश करूँगा ।'

वात विजली की तरह शहर में फैल गई । पिता का हत्यारा भी भयभीत हो गया । कुलपुत्र तलवार लेकर घर से निकल गया । उसके पिता का हत्यारा भी क्षत्रिय था । परन्तु अव कुछ उम्र भी ढ़ल रही थी तथा कुलपुत्र के समान शक्तिशाली नही था । इसलिए प्राण बचाने के लिए छिप कर जगल मे चला गया । कुलपुत्र अपने पिता के हत्यारे को जीवित पकडने में सफल हुआ । शत्रु को बन्धक बनाकर बारह वर्ष बाद कुलपुत्र अपने घर आया । मॉ के चरणों मे पिता के हत्यारे को डालते हुए कुलपुत्र ने पूछा कि मॉ ! बताओ इसको किस प्रकार का दण्ड दिया जाय ? आज मै अपने पिता की हत्या का बदला लेना चाहता हूँ ।

मॉ ने देखा कि शत्रु उदास है उसकी ऑखो मे पानी था । मॉ भी यह चाहती थी कि अपने पति के हत्यारे को उचित शिक्षा दी जावे, हत्या का बदला लिया जावे । मॉ ने शत्रु को ललकारा और पूछा कि बोल अब तेरे साथ कैसा व्यवहार किया जावे ।

शत्रु ने साहस बटोर कर कहा- 'मॉ ! मै भी तेरा पुत्र हूँ । मेरे से अपराध हो गया, मै क्षमा चाहता हूँ । मेरे भी अपना परिवार है । मेरी मृत्यु से सब दु खी हो जावेगे । मेरी मॉ रो-रोकर प्राण त्याग देगी । तुम मुझे अभयदान प्रदान करो । मुझे अपने कुकृत्य पर वास्तव मे पश्चाताप है ।' यह कहते-कहते उसकी ऑखो मे अश्रु बह चले ।

कुलपुत्र ने ललकार कर कहा- अरे हत्यारे ! मेरे पिता को मारते समये तुझे ये बाते याद नही आई । अब अपनी मृत्यु देखकर घबराता है ।

मॉ का हृदय तो मातृभाव से परिपूर्ण था । उसका मातृत्व

जागृत हो गया । उसने सोचा- 'जिस प्रकार मेरे पति के मरने पर बडी दुर्दशा हुई, जीवन दूभर हो गया, कष्टो का अम्बार आ गया, उसी प्रकार इसके परिवर की भी दुर्दशा होगी । फिर, वैर से वैर नष्ट नही होता वरन् बढता है ।

चिन्तन के बाद माँ ने अपने पुत्र से कहा कि इसे मुक्त कर दो, यह तुम्हारा बडा भाई है । मै भोजन वनाती हूँ और तुम दोनो साथ मे भोजन करो ।' पुत्र हैरान था । उसने कहा- 'माँ ! क्या कह रही हो ? यह पिता का हत्यारा है । फिर मैने तुम्हारे आदेश से बीहड वनो मे पूरे बारह वर्ष गुजारे है । विचार करो, कितने कष्टो के बाद मैने इसे पाया है ।'

'बेटा ! अब यह पिता का हत्यारा नही मेरा पुत्र है । मुझे प्रसन्नता है कि बारह वर्ष के बाद भी मुझे एक के स्थान पर दो पुत्र मिले है । तू वीर है, और वीरता इसे मारने मे नही क्षमा प्रदान करने मे है ।'

'माँ यह म्यान से निकली तलवार प्रतीक्षा कर रही है, शीघ्र आदेश दो ।'

'बेटा मेरा आदेश है कि इस तलवार से तुम्हारे इस भ्राता के वन्धन काट दो । बदला लेने की अपेक्षा क्षमा महान् है । क्षमा मानवीयता का लक्षण है ।

Forgiveness is better than revenge, forgiveness is the sign of gentle nature.

किसी कवि ने कहा है-

जो ताको कॉटा बुए, ताहि बोय तू फूल ।

कुलपुत्र आज्ञाकारी था । शीघ्र शत्रु को बन्धन मुक्त कर दिया । शत्रु माँ के चरणो मे लौटने लगा । प्रेम की गगा बह चली। माँ ने भोजन वनाया और प्रेम से दोनो को खिलाया । दोनो शत्रु आज गले मिल गए ।

यह है आज के दिवस का महत्व, सम्वत्सरी मनाने का सार । कवि कहता है-

धन्य धन्य है दिवस आज का, सुनो सभी इन्सान,
सम्वत्सरी आया पर्व महान् ।
राग-द्वेष को त्याग के सारे, गाओ प्रभु के गान ।
सम्वत्सरी आया पर्व महान् ।
गुरु चरणों में सारे आके, विनय से अपना शीश झुकाके ।
रगडे-झगड़े सभी मिटाके, अपने दिल को साफ बनाके ।
प्राणीमात्र से मिलकर सारे, माँगो क्षमा का दान ।
सम्वत्सरी आया पर्व महान् ।
यही पर्व उद्धार करेगा, नवजीवन संचार करेगा ।
जो जन इसको पार करेगा, उसके सब संताप हरेगा ।
इसी पर्व से मिलेगा तुझको, मुक्ति का वरदान ।
सम्वत्सरी आया पर्व महान् ।

कभी आप से भी पूछ लिया जाय कि क्या आप भी ऐसा पर्व मनाना चाहते है ? कुलपुत्र की मॉ की तरह या केवल पर्व का प्रदर्शन करना चाहते है ? क्षमापना पर्व आप भी प्रतिवर्ष मनाते है लेकिन आज यह समझना है कि क्षमायाचना किससे की जावे ? क्षमायाचना पर्व को परिपाटी और औपचारिकता के रूप मे मनाने से वास्तविक लाभ नही होगा । इसे सच्चे क्षमापना पर्व के रूप मे मनावें ।

यदि क्षमायाचना करनी है तो उन व्यक्तियो से अवश्य करे जिनसे आपका कभी झगडा हो गया है, लडाई हो गई, वैर-विरोध हो गया है । मेरा यह अभिप्राय नही है कि आप अन्य व्यक्तियो से क्षमायाचना न करे । आज के इस प्रसग पर हम सभी व्यक्तियो से और सभी जीवो से क्षमा याचना करे । लेकिन उनसे क्षमायाचना करना अत्यन्त आवश्यक है, जिनसे हमारा झगडा हुआ है । आज सामान्यतया होता यह है कि हम क्षमायाचना उनसे करते है जिनसे

कभी झगडा हुआ भी नही और जो सम्बन्धी है, प्रियजन है । यद्यपि प्रियजनो से भी क्षमायाचना करना बुरा नही है क्योकि कभी मन मे उनके प्रति भी जाने-अनजाने मे अशुभ विचार उत्पन्न हो गए हो । लेकिन जिनसे वैर-विरोध है, वास्तव मे उनसे क्षमा मॉगना आवश्यक है । उनसे तो क्षमा नही मॉगी जाती है और अन्य से क्षमा मॉगी जाती है । यह उचित नही है, केवल औपचारिकता है । यदि हम अन्त:करण से सम्वत्सरी मनाना चाहते है तो सर्वप्रथम उनसे जाकर क्षमा मागी जाय, जिनसे विरोध है, कभी छोटा-मोटा विवाद हो गया है । जो क्षमायाचना करने मे पहल करता है वह छोटा नही, बडा है, महान् है । विशाल हृदय वाला ही क्षमा माग सकता है और क्षमा प्रदान कर सकता है । कवि कहता है-

यह वैर-विरोध विसार, अरे सबसे खमाले रे ।
अरे दिल से खमाले रे ।
है आज बड़ा त्यौहार, करले भाई-भाई से प्यार,
अरे सबसे खमाले रे, अरे दिल से....

यह सुअवसर आया है वैर-विरोध मिटाने का अन्त:करण को शुद्ध बनाने का । इस अवसर पर हम पूर्व के झगडो को समाप्त कर सकते है । यदि अवसर खो दिया तो वर्ष भर तक वापस ऐसा सुयोग नही मिलेगा । इसलिए अवसर का लाभ उठाले । परिवार मे जिन सदस्यो को वर्ष भर मे कष्ट पहुँचाया है, चाहे वे छोटे ही क्यो न हो, उनसे भी क्षमायाचना आवश्यक है । इसी प्रकार समाज, राज्य या देश के सभी व्यक्तियो से, समस्त प्राणियो से वैर-विरोध दूर कर मैत्री भाव स्थापित करे, भ्रातृत्व भाव जागृत करे ।

क्षमा के अवतार भगवान् महावीर

हम महावीर के अनुयायी हैं । अतः विचार करे कि हमारे पूर्वज कैसे क्षमाशील थे । भगवान् महावीर के पैरो मे खीर पकाई गई, कानो मे कीले ठोके गये, चण्डकौशिक ने हलाहल विष उगला,

सगम ने एक ही रात्रि मे भयकर कष्ट पहुँचाये, पर वे क्षमावीर अडोल और अकम्पित रहे, क्रोध नहीं किया वरन् विष उगलने वाले को भी अमृत सम उपदेश दिया । क्या हमने उनकी क्षमा का चिन्तन किया है ?

गजसुकमाल मुनि-

मुनि गजसुकमाल के मस्तक पर धधकते अगारे रखे गये, पर समता और शान्ति की प्रतिमूर्ति ने क्षमा का सागर लहरा दिया । कैसी अपार क्षमता थी उनमें ? यदि गजसुकमाल मुनि सोमल ब्राह्मण की ओर दृष्टिपात करते तो सम्भव है सोमिल के प्राण पखेरू उड जाते, जैसा कि दूसरे दिन श्रीकृष्ण को देखकर हुआ । लेकिन समता के अवतार गजसुकमाल मुनि ने क्षमा धारण की एवं शाश्वत सुख को प्राप्त किया ।

अर्जुनमाली अणगार-

पर्युषण के दिनो मे हम अन्तगड सूत्र निरन्तर सुन रहे है । अर्जुनमाली अणगार का वृतान्त भी सुना । सात प्राणियो को प्रतिदिन मौत के घाट उतारने वाला अर्जुन भगवान् महावीर के पास अणगार बन जाता है और उसी राजगृही नगरी मे भिक्षा के लिए घर-घर मे गोचरी हेतु जाता है । गोचरी मे क्या मिला अर्जुन अणगार को ? पत्थरो की मार, लाठियो की बौछार, गालियो का अम्बार । फिर भी अर्जुन अणगार शान्त थे । क्षमा को धारण किया और अल्पकाल मे ही कर्मो को नष्ट कर सिद्ध-बुद्ध मुक्त हो गये ।

क्षमा मानवीय गुण-

मैतार्य मुनि ने भी प्राणो का उत्सर्ग कर कुक्कुट की रक्षा की, भीषण कष्टो को सहन किया परन्तु स्वर्णकार को एक शब्द भी नही कहा । धन्य है ऐसे क्षमा के अवतार । जैन साहित्य क्षमा मूर्तियो से भरा पडा है । उन सबका वर्णन यहाँ करना सभव नही है । हम उन्ही महापुरुषो के अनुयायी है । लेकिन आज इस अवसर

पर चिन्तन यह करना है कि हमने क्षमा के स्वरूप को समझा या नही ? उपयुक्त अवसर आने पर तो प्रकृति भी अपना कार्य करती है । वसन्त आने पर वृक्षो मे नई बहार आ जाती है, वर्षा के आगमन पर गगन मे मेघ गरजने लगते है, ससार को शीतल जल प्रदान करते है । फिर सवत्सरी के पावन प्रसग पर यदि मानव हृदय मे क्षमा का स्रोत नही बहा तो फिर जैन तो क्या मानव कहलाने के भी अधिकारी नही ? आम्र मे मजरिया आने पर यदि कोयल मधुर गान नही सुनाती तो वह कोयल नही काग होगा । सावन के सुनहरे मौसम मे यदि मेघ गरजने पर मोर नाचता नही तो वह मोर नहीं कुछ और होगा और यदि सम्वत्सरी के इस महान पर्व पर मानव का हृदय प्रेम, करूणा, वात्सल्य और मैत्री से परिपूरित नही होता तो मानव श्रावक कहलाने का अधिकारी कैसे हो सकते है । सरल हृदय वाले ही क्षमा माग सकते है या क्षमा प्रदान कर सकते है ।

नमे आम्बा आमली, नमे दाड़म दाख ।
एरण्ड बिचारा क्या नमे, जिसकी ओछी जात ॥

झुकना बडप्पन का लक्षण है और अकडना ओछेपन का सूचक है । आम रसदार फल देता है, गहरी छाया देता है, शीतल पवन वहाता है फिर भी उसकी शाखाएँ धरती की ओर झुकी रहती है । फल आने पर अधिक झुक जाती है । हमारे झुकाने पर भी झुक जाती है । मगर एरण्ड का पेड अकड कर खडा ही रहता है, यहाँ तक कि झुकाने पर टूट जाता है । ससार भी आम को पसन्द करता है, एरण्ड को नही । अव हम विचार करे कि हमको क्या वनना है-आम या एरण्ड ? जन-जन का प्रिय वनने के लिए क्रोध का त्याग कर विनय को जीवन मे अपनाना पडता है ।

कौशाम्वी नरेश महाराजा उदायन भगवान् महावीर के श्रावक थे । उज्जयनी के महाराजा चण्डप्रद्योत ने छल द्वारा महाराजा उदायन की दासी स्वर्णगुलिका को चुरा ली । महाराजा उदायन यद्यपि श्रावक थे, फिर भी राज्योचित व्यवहार आवश्यक समझकर

चण्डप्रद्योत पर आक्रमण कर, उसे वन्दी वना लिया । चण्ड को लेकर महाराजा उदायन अपने राज्य में आ रहे थे कि पर्युषण पर्व का पावन प्रसग उपस्थित हो गया । आठों दिन एक ही स्थान पर व्यतीत करने के विचार से दशपुर (वर्तमान मे मन्दसौर) नामक स्थान पर पडाव डाला गया । यही पर आठो दिन की आराधना की और अन्त मे संवत्सरी पर्व आ गया । महाराजा उदायन ने उपवास युक्त पौषध किया । उदायन के आदेश से चण्डप्रद्योत को पूछा गया कि वे क्या भोजन करना चाहेगे ?

चण्डप्रद्योत को सन्देह हुआ कि आज भोजन के लिए उसकी इच्छा क्यो पूछी गई । सेवको ने वताया कि सम्वत्सरी महापर्व होने से महाराजा पौषध उपवास करेगे इसलिए उनके लिए भोजन नही बनेगा ।

चण्डप्रद्योत ने सोचा कि कही विषयुक्त भोजन न खिला दिया जावे । क्योकि प्रतिदिन तो दोनों राजाओ के लिए एक-सा भोजन बनता है और आज केवल उसके लिए भोजन बनायेगे । इसलिए चण्ड ने उपवास करने का निश्चय कर कहा- आज मै भी उपवास करूँगा । मेरे भी पूर्वज जैनधर्म के अनुयायी थे ।

सायकालीन सावत्सरिक प्रतिक्रमण करके महाराजा उदायन चण्डप्रद्योत के पास गये और उनसे क्षमायाचना की । चण्डप्रद्योत ने समझ लिया कि यह अच्छा अवसर है मुक्त होने का । उसने महाराजा उदायन से हॅस कर कहा- 'महाराज ! क्यो क्षमा याचना का आडम्बर करते हैं ? नाटकीय क्षमायाचना करने से क्या लाभ है ?'

महाराजा उदायन ने कहा- 'मै आपको अपना सहधर्मी बन्धु मानकर अन्त:करण से क्षमायाचना कर रहा हूँ ।'

चण्डप्रद्योत ने कहा- राजन ! मै नही समझ पा रहा हूँ कि यह कैसी क्षमायाचना है ? मै आपका बन्दी हूँ तथा मेरे सिर पर भी 'ममदासीपति' शब्द लिख रखे है और मुझसे क्षमायाचना कर रहे

है । यह तो इस पर्व की हॅसी उडाना है । आप वास्तव मे क्षमायाचना करना चाहते है, सम्वत्सरी मनाना चाहते है तो पहले मुझे मुक्त करे। बन्दी अवस्था मे मै आपको कैसे क्षमा कर सकता हूॅ ?

महाराजा उदायन ने चिन्तन किया, आत्म निरीक्षण किया तो उन्हे चण्ड की बात मे सत्यता लक्षित हुई । उन्होने कहा- अभी तो धार्मिक अनुष्ठान पौषध मे हूॅ इसलिए सासारिक कार्य नही किया जा सकता है । उदायन महाराजा के वचनो पर श्रद्धा करता हुआ चण्डप्रद्योत अपनी गलती महसूस कर क्षमायाचना करता है ।

दोनो ने अन्त:करण से एक दूसरे से क्षमायाचना की एव क्षमा प्रदान की । शत्रु भी मित्र बन गया । महाराजा उदायन दूसरे दिन पौषध पालने के पश्चात् चण्ड को क्षमा करने के साथ राज्योचित सम्मान के साथ उसे अपनी राजधानी ले गया और अपनी पुत्री के साथ उनकी शादी कर दी तथा दहेज मे स्वर्णगुलिका नामक दासी को भी दे दिया ।

यह क्षमा का एक उच्च आदर्श है । क्या हम भी ऐसी सम्वत्सरी मनाते है ? क्या हम भी शत्रुओ से क्षमायाचना करते है? वैर को नष्ट करने के लिए नम्रता आवश्यक है, शत्रुता मिटाने के लिए क्षमा आवश्यक है । टूटकर पुन: वही मिल सकता है जिसमे नम्रता है ।

सोना, चाँदी, सुघड नर, टूटे जुडे सौ वार ।
फूटी हांडी कुम्हार की, जुडे न दूजी वार ॥

जिस प्रकार सोना, चॉदी जैसे पिघलने वाले नम्र एव मूल्यवान पदार्थ टूटकर पुन: मिल सकते है कुम्भकार की कठोर हडिया फूटने के वाद मिलती नही है । हमने भी उच्च कुल मे जन्म लिया हे, उत्तम जैन धर्म प्राप्त किया, इसलिए हमारे हृदय मे भी प्रेम, करुणा, सहृदयता क्षमा का स्रोत बहना चाहिये । उत्तम गुण सामान्य व्यक्ति

गे नही पाये जा सकते । उत्तम वस्तु उत्तम पात्र मे ही टिक सकती है । सिंहनी का दूध स्वर्ण पात्र मे ही टिक सकता है ।

यदि हम आज के पावन पवित्र अवसर पर भी अन्तःकरण से क्षमा प्रदान नही कर सकते या क्षमायाचना नही कर सकते तो फिर हमारा सम्यक्त्व गुण किस प्रकार सुरक्षित रह सकता है ? इसलिए आज के इस सुअवसर पर आत्मनिरीक्षण करे, वैर विरोध निवारें, पापों की आलोयणा करे एवं प्रायश्चित द्वारा अपनी आत्मा को परिमार्जित कर सच्चे जैन बने ।

यह पावन प्रसंग वर्ष मे एक ही बार आता है । सवत्सर का अर्थ है एक वर्ष, और यह पर्व वर्ष मे एक बार ही मनाया जाता है । आज के दिन कषायों को शान्त करे । अनन्तानुबन्धी कषाय की उपस्थिति मे सम्यक्त्व भी नही रहता । इसलिए हम भी सच्चे हृदय से क्षमा पर्व मनावे, पर्व को सार्थक करे एव सम्यक्त्व की रक्षा करे।

कवि भी प्रार्थना की कडियो मे यही कहता है कि-

कितना त्याग सका पर-निन्दा, कितना अपना अन्तर देखा ।
कितना रख पाया हूँ अब तक, अपने पाप-पुण्य का लेखा ॥

कृत्स्नकर्म क्षयो मोक्षः ।

(तत्वार्थ सूत्र 10/3)

सम्पूर्ण कर्मो का सर्वथा क्षय होना ही मोक्ष है ।

क्षान्ति तुल्यं तपो नास्ति ।

क्षमा के समान दूसरा तप नही है ।

भावना-भव नाशिनि

मोक्षमार्ग में भावना का विशेष महत्व है। भावना ही कर्म-बन्ध का कारण है और भावना ही मुक्ति का साधन है । विशुद्ध भावों से निर्वाण प्राप्त होता है और अशुभ भावों से संसार परिभ्रमण बढता है ।

भावना का सम्बन्ध मन से है । मन अत्यन्त चंचल है । इस पर नियन्त्रण करना दुष्कर है । मन पर विजय प्राप्त करने वाला महान होता है, जगत विजयी होता है । दुर्गति से बचने के लिए मन पर नियन्त्रण आवश्यक है । भावना के अनुरूप ही फल होता है ।

धर्म जिनेश्वर मुझ हिवड़े बसो, प्यारो प्राण समान ।
कबहूँ न विसरूँ हो चितारूँ,
सदा अखण्डित ध्यान ॥ धर्म......
ज्युं पनिहारी कुम्भ न विसरे, नटवो नृत्य निदान ।
पलक न विसरे हो पद्मिनी पिय भणी,
चकवी न विसरे हो भान ॥ धर्म......

पन्द्रहवें तीर्थकर प्रभु धर्मनाथ भगवान की प्रार्थना की कडियो का उच्चारण किया गया । कवि विनयचन्दजी की प्रार्थनाएँ बहुत भक्ति-भाव से परिपूर्ण है । कवि भगवान को अपने हृदय मे स्थापित करना चाहता है । कवि विनयचन्द जी कहते हैं कि हे प्रभु ! आप मेरे प्यारे प्राणों के समान मेरे हृदय मे बसो । भक्त भगवान को अपने प्राणो से भी अधिक चाहता है । कवि कहता है कि हे प्रभु ! मुझे अखण्डित रूप से सदैव आपका ही ध्यान रहे तथा मै कभी भी आपको नही भूलूँ । भक्त प्रभु-भक्ति मे पूर्ण तल्लीन होना चाहता है । प्रभु के प्रति भक्त की भक्ति कैसी हो, इसके लिए उदाहरण प्रस्तुत किया जाता है कि जिस प्रकार पनिहारी मस्तक पर दो-तीन घडे रखकर साथिन पनिहारी से बाते करती हुई, हँसी-मजाक करती हुई पनघट से अपने घर आती है, लेकिन वह कभी अपने घडे को भूलती नही है । नट, बांस पर विभिन्न प्रकार के नाच करता है, करतब दिखाता है, परन्तु बास को नही भूलता । प्रेमिका अपने प्रियतम को एक क्षण के लिए भी नही भूलती, चकवी चन्द्रमा को नही भूलती । कवि कहता है कि हे प्रभु ! मेरी भक्ति भी ऐसी हो कि मै कभी भी आपको नही भूलूँ ।

भगवान की भक्ति शुद्ध भावो से हो, अन्तःकरण से हो, मन की एकाग्रता से हो, तो ही लाभदायक है । केवल प्रदर्शन के लिए की गई भक्ति लाभदायक नही है । कवि ने कहा है-

माला तो कर में फिरे, जीभ फिरे मुख माहीं ।
मनुआ तो दस दिस फिरे, यह तो सुमिरन नाहीं ॥

प्रभु-भक्ति मे भी भावना तत्त्व प्रधान है । भावना के अभाव मे की गई भक्ति सारहीन है ।

मोक्ष-मार्ग का प्रमुख साधन-भाव-

मोक्ष-मार्ग के चार साधन- दान, शील तप एवं भाव कहे गए है । इनमे भाव का प्रमुख स्थान है । दान शील एवं तप की आराधना भाव पर आधारित है । आत्मा मे समय समय पर उत्पन्न होने वाले विचारो को भाव कहा जाता है । ये अच्छे एव बुरे दोनो प्रकार के हो सकते है । दान, शील एव तप के भाव उत्कृष्ठ है । आत्मा मे ऐसे उत्कृष्ठ भावों का आना ही श्रेयस्कर है । पहले भावो का निर्माण होगा तव ही उन पर आचरण सम्भव है । इसीलिए कहा गया है-

'भाव विसोहिए निव्वाण चाभिगच्छहू'

अर्थात् शुद्ध भावो से निर्वाण प्राप्त होता हे ।

निःसदेह शुभ भावो से ससार परित होता है तो अशुभ भावो से संसार विस्तृत होता है । भावो के महत्व को समझने के लिए कहा है-

'परिणामे बंधो परिणामे मोक्खो'

अर्थात् भाव ही कर्म-वध के कारण हैं और भाव ही मुक्ति दाता हैं ।

मनोविजेता जगतो विजेता-

मन विचारो का केन्द्र विन्दु है । मन पर नियंत्रण करना अत्यत दुष्कर है । मन की चचलता के लिए कवि कहता है-

मन तोहे किस विध मे समझाऊँ ।

घोडा होय तो लगाम लगाऊं, ऊपर जीन कसाऊँ ।

होय सवार तेरे पर बैठू, चाबुक देय चलाऊं ॥ मन

हाथी होय तो जंजीर मंगाऊं, पावों पर बंधवाऊँ ।

होय महावत [illegible]

ज्ञानी होय तो ज्ञान सिखाऊँ, सत्य की राह चलाऊँ ।
कहत कबीरा सुन भाई साधौ, अमरापुर पहुँचाऊँ ॥ मन

मन, वचन एवं काया को योग कहते है । जिसमे मन सबसे अधिक प्रवल योग है । अनियन्त्रित मन:योग विनाश का कारण है । इसलिए ज्ञानी जन मन को आत्मा के नियत्रण मे रखकर उसे सन्मार्ग में लाते हैं । 'मनो विजेता जगतो विजेता' अर्थात् मन को विजय करने वाला सर्व विजेता होता है । वचन एव काया की प्रवृत्तियां मन पर आधारित है । कई दुष्कर कार्य जो वचन एवं काया द्वारा सम्भव नही होते है उन्हें मन अपने विचारो द्वारा पूर्ण कर लेता है । इसलिए मन पर नियन्त्रण अत्यन्त आवश्यक है ।

'मन एव मनुषाणां कारणं बंध मोक्षयो:'

अर्थात् मन ही मनुष्य के बन्ध और मोक्ष का कारण है । इस सन्दर्भ में पोतनपुर के महाराजा राजर्षि प्रसन्नचन्द्र का दृष्टान्त दृष्टव्य है । राजकाज से पूर्ण निवृत्त होकर राजर्षि प्रसन्नचन्द्र एकान्त साधना मे लग गये । मगधेश महाराजा श्रेणिक अपनी चतुरङ्गिणी सेना सहित श्रमण भगवान महावीर के दर्शनार्थ उस मार्ग से गुजरे जहॉ से कुछ ही दूर पर राजर्षि अपनी तप साधना मे तल्लीन थे । राजर्षि ने कठोर साधना अङ्गीकार की थी । तप के कारण उनका शरीर दुर्बल हो चुका था । फिर भी मुखमण्डल देदिप्यमान था । महाराजा श्रेणिक की पैदल सेना के दो सैनिक कुछ वार्तालाप करते हुए आगे चल रहे थे । एक सैनिक की दृष्टि साधनारत राजर्षि पर पडी । उसने अपने साथी सैनिक से कहा कि धन्य है वे राजर्षि प्रसन्नचन्द्र जो राजपाट कुटुम्ब परिवार, धन, ऐश्वर्य आदि सभी त्याग कर कठोर साधना मे लीन हो गए । इन्हे बारम्बार धन्य है । प्रथम सैनिक द्वारा राजर्षि की प्रशसा सुनकर दूसरे सैनिक ने तपाक से कहा- 'अरे यह राजर्षि तो कायर है, अपने अवयस्क पुत्र पर राज्य का कार्य भार डालकर साधु बन बैठा है । इसे यह भी भान नही कि इसके राज्य पर शीघ्र आक्रमण होने

वाला है । आक्रामक राजा पोतनपुर को तहस-नहस कर देगा, इसके पुत्र को वन्दी बना देगा, उसके राज्य को अपने राज्य मे मिला लेगा, इसके राज्य पर आक्रामक राजा की ध्वजा-पताका फहरायेगी ।'

इस प्रकार तिरस्कार पूर्ण शब्द राजर्षि के कर्ण-पटल पर जा टकराये । दूसरे सैनिक के अपयश पूर्ण शब्दो ने राजर्षि को झकजोर दिया । साधना मे तल्लीन मानस पर शब्द बाणो की करारी चोट हुई । मन विचलित हो गया । विचारो ने मोड लिया । राजर्षि यश-अपयश की लहरो मे गोते लगाने लगे । विचार आया- कौन है जो मेरे होते हुए मेरे राज्य पर ऑख उठाकर देख सके ? मेरे राज्य पर आक्रमण! मेरे पुत्र को वन्दी बनाना । मेरे राज्य पर अन्य राजा का शासन ! नही-नही, ऐसा मै कभी नही होने दूॅगा । खून की नदियॉ बहा दूॅगा । क्या आक्रामक मेरे पराक्रम से अनभिज्ञ है ? इस प्रकार राजर्षि के मन मे विचारो का उथल-पुथल होने लगा । विचारो की धारा आगे प्रवाहित होती रही । धर्म ध्यान, रौद्र-ध्यान मे परिवर्तित हो गया । महाराजा श्रेणिक की चतुरङ्गिणी सेना भगवान् महावीर के समवसरण के समीप पहुॅच चुकी थी । इधर राजर्षि विचार प्रवाह से नरक के द्वार खटखटाने लगे । राजर्षि ने विचारो मे रणभेरी बजवा दी, भीषण सग्राम होने लगा, शत्रु सैनिक धराशायी होने लगे । हिंसा का ताण्डव नृत्य उपस्थित हो गया ।

उधर महाराजा श्रेणिक चरण वन्दन हेतु प्रभु के समक्ष पहुॅच गये । विधियुक्त वन्दन किया । मार्ग मे साधना मे तल्लीन राजर्षि को देखा था एव उनकी साधना से अत्यन्त प्रभावित हुए थे । इसलिए जिज्ञासावश प्रभु महावीर से प्रश्न किया- [illegible] भगवन् ! यदि इस समय राजर्षि प्रसन्नचन्द्र कालधर्म को प्राप्त हो तो किस गति मे जायेंगे ? [illegible]
[illegible]

ज्ञानी होय तो ज्ञान सिखाऊँ, सत्य की राह चलाऊँ ।
कहत कबीरा सुन भाई साधौ, अमरापुर पहुँचाऊँ ॥ मन

मन, वचन एवं काया को योग कहते है । जिसमे मन सबसे अधिक प्रबल योग है । अनियन्त्रित मन:योग विनाश का कारण है । इसलिए ज्ञानी जन मन को आत्मा के नियत्रण मे रखकर उसे सन्मार्ग में लाते हैं । 'मनो विजेता जगतो विजेता' अर्थात् मन को विजय करने वाला सर्व विजेता होता है । वचन एव काया की प्रवृत्तियां मन पर आधारित है । कई दुष्कर कार्य जो वचन एव काया द्वारा सम्भव नही होते है उन्हें मन अपने विचारो द्वारा पूर्ण कर लेता है । इसलिए मन पर नियन्त्रण अत्यन्त आवश्यक है ।

'मन एव मनुषाणां कारणं बंध मोक्षयो:'

अर्थात् मन ही मनुष्य के बन्ध और मोक्ष का कारण है । इस सन्दर्भ में पोतनपुर के महाराजा राजर्षि प्रसन्नचन्द्र का दृष्टान्त दृष्टव्य है । राजकाज से पूर्ण निवृत्त होकर राजर्षि प्रसन्नचन्द्र एकान्त साधना में लग गये । मगधेश महाराजा श्रेणिक अपनी चतुरङ्गिणी सेना सहित श्रमण भगवान महावीर के दर्शनार्थ उस मार्ग से गुजरे जहाँ से कुछ ही दूर पर राजर्षि अपनी तप साधना मे तल्लीन थे । राजर्षि ने कठोर साधना अङ्गीकार की थी । तप के कारण उनका शरीर दुर्बल हो चुका था । फिर भी मुखमण्डल देदिप्यमान था । महाराजा श्रेणिक की पैदल सेना के दो सैनिक कुछ वार्तालाप करते हुए आगे चल रहे थे । एक सैनिक की दृष्टि साधनारत राजर्षि पर पडी । उसने अपने साथी सैनिक से कहा कि धन्य है वे राजर्षि प्रसन्नचन्द्र जो राजपाट कुटुम्ब परिवार, धन, ऐश्वर्य आदि सभी त्याग कर कठोर साधना मे लीन हो गए । इन्हे बारम्बार धन्य है । प्रथम सैनिक द्वारा राजर्षि की प्रशसा सुनकर दूसरे सैनिक ने तपाक से कहा- 'अरे यह राजर्षि तो कायर है, अपने अवयस्क पुत्र पर राज्य का कार्य भार डालकर साधु बन बैठा है । इसे यह भी भान नही कि इसके राज्य पर शीघ्र आक्रमण होने

वाला है । आक्रामक राजा पोतनपुर को तहस-नहस कर देगा, इसके पुत्र को बन्दी बना देगा, उसके राज्य को अपने राज्य मे मिला लेगा, इसके राज्य पर आक्रामक राजा की ध्वजा-पताका फहरायेगी ।'

इस प्रकार तिरस्कार पूर्ण शब्द राजर्षि के कर्ण-पटल पर जा टकराये । दूसरे सैनिक के अपयश पूर्ण शब्दो ने राजर्षि को झकजोर दिया । साधना मे तल्लीन मानस पर शब्द बाणो की करारी चोट हुई । मन विचलित हो गया । विचारो ने मोड लिया । राजर्षि यश-अपयश की लहरो मे गोते लगाने लगे । विचार आया- कौन है जो मेरे होते हुए मेरे राज्य पर ऑख उठाकर देख सके ? मेरे राज्य पर आक्रमण! मेरे पुत्र को बन्दी बनाना । मेरे राज्य पर अन्य राजा का शासन ! नही-नही, ऐसा मै कभी नही होने दूॅगा । खून की नदियॉ बहा दूॅगा । क्या आक्रामक मेरे पराक्रम से अनभिज्ञ है ? इस प्रकार राजर्षि के मन मे विचारो का उथल-पुथल होने लगा । विचारो की धारा आगे प्रवाहित होती रही । धर्म ध्यान, रोद्र-ध्यान मे परिवर्तित हो गया । महाराजा श्रेणिक की चतुरङ्गिणी सेना भगवान् महावीर के समवसरण के समीप पहुॅच चुकी थी । इधर राजर्षि विचार प्रवाह से नरक के द्वार खटखटाने लगे । राजर्षि ने विचारो मे रणभेरी बजवा दी, भीषण सग्राम होने लगा, शत्रु सैनिक धराशायी होने लगे । हिसा का ताण्डव नृत्य उपस्थित हो गया ।

उधर महाराजा श्रेणिक चरण वन्दन हेतु प्रभु के समक्ष पहुॅच गये । विधियुक्त वन्दन किया । मार्ग मे साधना मे तल्लीन राजर्षि को देखा था एव उनकी साधना से अत्यन्त प्रभावित हुए थे । इसलिए जिज्ञासावश प्रभु महावीर से प्रश्न किया- 'हे भगवन् ! यदि इस समय राजर्षि प्रसन्नचन्द्र कालधर्म को प्राप्त हो तो किस गति मे जायेगे ?' जिस समय यह प्रश्न किया था उस समय राजर्षि भयङ्कर युद्ध के विचारो मे खोए हुए थे । ऐसे दुष्ट

विचारों मे मग्न थे कि अपने आप को भूल चुके थे । विचारों मे ही उन्होंने अनेकों का सहार कर दिया था । सर्वज्ञ प्रभु ने राजर्षि के मनोगत भावों को देखा, तव महाराजा श्रेणिक को प्रश्न के उत्तर मे कहा- 'हे श्रेणिक ! यदि राजर्षि इस समय कालधर्म को प्राप्त हो तो वे सातवी नरक के अधिकारी होगे ।' उत्तर सुनकर महाराजा श्रेणिक विचारो मे निमग्न हो गये । सोचने लगे- अहो ! ऐसे साधनारत महामानव भी सातवी नरक जैसी जघन्य स्थिति को प्राप्त हो सकते है तो मेरी क्या स्थिति होगी ? ऐसा क्यो ? विचारो का प्रवाह चालू था । उधर वैचारिक युद्ध मे निमग्न राजर्षि का एक हाथ मस्तक पर मुकुट के बहाने जा पहुँचा । राजर्षि तो मुण्डित मुनि थे । मस्तक पर राजचिह्न-मुकुट तो दूर रहा सिर पर बाल भी नही थे । मुण्डित मस्तक पर हाथ लगते ही राजर्षि को अपने मुनिपन की स्मृति हो आई । विचारो ने पुनः मोड लिया । वे अंधकार से प्रकाश की ओर अग्रसर हो गए। विचार किया- 'अरे ! मै तो निर्ग्रन्थ संयमी हूँ । मेरा इस ससार से क्या सरोकार ? न मेरा कोई राज्य है, न मेरा कोई पुत्र है, न परिवार ही । अरे ! मैने अनर्थ कर डाला । कितने अशुभ विचार मेरे मन मे आ गये । धिक्कार है मुझे ।' इस प्रकार राजर्षि कुछ ही क्षणो पूर्व किये गये अपने दुष्ट विचारो का पश्चाताप करने लगे । रोद्रध्यान पुन. धर्म ध्यान मे परिवर्तित हो गया । अब वे शुक्ल ध्यान की ओर अग्रसर हुए । अशुभ विचारो की स्वय ने निन्दा की, पश्चाताप किया और परिणामो (भावो) की धारा अत्यन्त उज्ज्वल हो गई । निर्मल विशुद्ध भावो के सम्मुख कर्म दलिक टिक नही सके । राजर्षि ने पश्चाताप की अग्नि मे कर्मो को भस्मिभूत कर दिया । गुणस्थानो की श्रेणी आरम्भ हुई और विचारो ही विचारो मे छठे गुणस्थान से दसवे तक पहुँच गये और दसवे से बारहवॉ और तेरहवॉ गुणस्थान प्राप्त कर लिया । राजर्षि अरिहन्त बन गये । केवलज्ञान, केवलदर्शन प्राप्त किया । सातवी नरक के अधिकारी बनने वाले राजर्षि को अरिहन्त बनने मे कितना समय लगा ? वहुत अल्प ।

प्रभु महावीर के समक्ष खडे हुए मगधपति श्रेणिक राजर्षि के बारे मे भगवान् के बताये गए निर्णय पर विचार कर ही रहे थे कि राजर्षि अरिहन्त बन गये । केवली महोत्सव मनाने के लिए देवतागण आये । देव दुन्दुभियाँ बजने लगी ।

केवली महोत्सव ने मगधेश का ध्यान भङ्ग किया । विचार हुआ कि किसी महापुरुष ने घनघाति कर्मो को छिन्न-भिन्न कर केवली पद को प्राप्त किया है, यह महापुरुष कौन है ? प्रभु से पूछ ही लिया- 'भगवन् ! यह केवली महोत्सव किस महान् आत्मा का मनाया जा रहा है ?' उत्तर मे ज्ञात हुआ कि राजर्षि प्रसन्नचन्द्र को केवलज्ञान प्राप्त हो गया है । पुनः मगधपति विचार निमग्न हो गये। अरे ! यह क्या? अभी-अभी तो राजर्षि के सातवी नरक मे जाने की बात थी और अभी ही उन्हे केवलज्ञान प्राप्त हो गया । प्रभु महावीर ने राजर्षि के मनोभावो को प्रकाशित कर महाराज श्रेणिक के सशय को दूर किया ।

उपरोक्त घटना से स्पष्ट है कि शुभ भाव किस प्रकार उच्च पद दिलाने मे सहयोगी है । वास्तव मे इस लोक और परलोक के निर्माण मे भावो का प्रमुख स्थान है । इसलिए हमे सदैव शुभ भावो मे रमण करना चाहिये । शुभ भावो के लिए कुछ भी काम नही करना पडता है । केवल विचारो को मोड देना होता है । दान के लिए कुछ न कुछ भौतिक पदार्थो का त्याग करना पडता है, तप आराधना मे शरीर को कुछ कष्ट का अनुभव हो सकता है एव शील पालन मे नियन्त्रण करना पडता है लेकिन शुभ भाव परिणमन मे यह सब कुछ नही करना पडता, केवल विचार बदलने पडते है ।

दान, शील एवं तप की अपेक्षा भाव को सहज बनाया जा सकता है । यह अधिक लाभकारी एवं प्रभावकारी भी है । आवश्यकता है मन पर नियन्त्रण कर कुमार्ग से सन्मार्ग पर लाने की । शुभ भावो का प्रत्यक्ष लाभ आत्म शान्ति एव सन्तोष के रूप मे प्राप्त हो ही जाता है ।

जैसी भावना वैसा फल-

शुभ भावो का प्रतिफल भी शुभ होता है और अशुभ भावो का प्रतिफल भी अशुभ होता है । जैसे भाव हम दूसरो के लिए चिन्तन करते हैं, वैसी ही भावनाएँ दूसरे भी हमारे लिए रखते है । महाकवि तुलसीदास जी ने तो यहाँ तक कहा है-

'जाकि रही भावना जैसी, प्रभु मूरत पाई तिन तैसी ।'

हम जिस रङ्ग का चश्मा ऑखो पर लगाते हैं, संसार हमे उसी रङ्ग का दिखाई देता है । हम अपने भावों के अनुरूप अपने चारों ओर के वातावरण का निर्माण करते है । भावना के अनुरूप ही उसका फल होता है । कहा भी है-

'यादृशी भावना यस्य, सिद्धिर्भवति तादृशी ।'

अर्थात् जैसी भावना होती है वैसा ही फल मिलता है।

अशुभ भावो को प्रकाशित करने वाला एक और उदाहरण उल्लेखनीय है । एक बडे मच्छ की ऑखों की भोहो पर निवास करने वाला छोटा-सा चॉवल के आकार वाला तन्दुल मच्छ था । बडे मच्छ के सास लेने के साथ ही समुद्र की छोटी-बडी मछलियॉ बडे मच्छ के मुँह मे प्रवेश कर जाती है तथा सास निकालने के साथ ही सभी मछलियॉ जीवित ही बाहर आती है । यह क्रिया स्वाभाविक रूप से होती है । बडे मच्छ की इस क्रिया को देखकर तन्दुलमच्छ विचार करता है- 'यह मच्छ कैसा पागल है ? मुँह मे आए हुए शिकार को जीवित छोड देता है । यदि इसके स्थान पर मैं होता तो इनमे से एक भी मछली को जीवित नही छोडता । सभी को भक्ष कर जाता ।' इस प्रकार के अशुभ विचार वह छोटा-सा प्राणी करता है । यद्यपि उसने किसी भी मछली को खाया नही और न वह सक्षम ही है । फिर भी अशुभ भावो के कारण तन्दुल मच्छ अपनी अल्प आयु पूरी कर नरक गति मे चला जाता है । यह है अशुभ भावो का अशुभ परिणाम ।

भावों की प्रधानता–

शुभ भावो के द्वारा जीव आश्रव के स्थान पर रहकर भी संवर कर सकता है और अशुभ भावो के द्वारा सवर के स्थान पर पापों का बन्ध कर सकता है । इसे हम थोडा दृष्टान्त द्वारा समझने का प्रयास करे ।

एक बार एक नगरमे नृत्य और मधुर संगीत से परिपूर्ण किसी नाटक मण्डली का प्रदर्शन चल रहा था । संयोगवश उसी नगर मे एक त्यागी महात्मा मुनिराज भी पधारे । नाटक मण्डली के नाटक और मुनिराज के प्रवचन का समय लगभग एक ही था । दो मित्र उसी नगर मे एक साथ रहा करते थे । एक मित्र ने नाटक देखने की इच्छा प्रकट की तो दूसरे ने कहा कि आज तो मुनिराज पधारे है उनका प्रवचन सुनना चाहिये । उन्होने यह निर्णय किया कि दोनो अपनी-अपनी रूचि के अनुसार आज अलग-अलग ही जावे । प्रथम मित्र नाटक देखने गया और दूसरा मित्र प्रवचन सुनने ।

सन्त महात्मा का आध्यात्मिक विचारो से परिपूर्ण, मार्मिक प्रवचन चल रहा था । महात्मा के विचार उच्च कोटि के, आत्मलक्ष्यी थे । परन्तु प्रवचन मे गये उस मित्र का मन चञ्चल था । प्रवचन के उत्तम भावो को ग्रहण नही कर पाया । उसके मन में विचार आया कि 'मैं कहाँ फॅस गया ? ये शुष्क, नीरस बातें मेरी समझ मे नही आ रही है । मेरा वह मित्र धन्य है, जो मधुर सगीत सुन रहा होगा, रगीले नृत्यो का आनन्द ले रहा होगा । मैंने व्यर्थ में ही यहाँ आकर अपना समय नष्ट किया ।' इस प्रकार धर्म के स्थान पर आकर भी वह स्वय को धिक्कार रहा है ।

उधर दूसरा मित्र नाटक तो देख रहा है परन्तु सोचता है- 'मै कैसा अभागा हूँ, कैसा पतित हूँ ? जो महान उपकारी सन्तो का प्रवचन छोडकर यही नाच-गान मे उलझ रहा हूँ । मेरा मित्र धन्य है जो महापुरुषो की पावन वाणी सुन रहा है ' उ

धर्म के स्थान पर भी पुण्य नही अर्जित कर पाया और इस मित्र ने पाप के स्थान पर भी पुण्य का अर्जन किया। यह सव भावना का अन्तर है। कई लोग धर्म स्थानो पर भी दुर्भावनाएँ लेकर आते है। जो धर्म आराधना का स्थान है, आत्मा के कल्याण का स्थान है वहाँ पर आकर भी चोरियाँ करते है, अशुभ भावनाएँ रखते है। यद्यपि स्थान का भी अपना महत्व है। शुभ, पवित्र, धर्म स्थान पर जाने से सामान्य व्यक्तियो के विचार निर्मल बन जाते है, फिर भी कुछ अशुभ प्रकृति के व्यक्ति होते है, जो वहाँ भी पाप का बन्धन करते है और ज्ञानीजन पाप के स्थान पर रहकर भी पुण्य अर्जित करते है। इसलिए कहा है-

'जे आसवा ते परिस्सवा, जे परिस्सवा, ते आसवा'

अर्थात् जो बन्धन के हेतु है वे ही कभी मोक्ष के हेतु भी हो सकते है और जो आश्रव के हेतु है वे कभी आश्रव के हेतु नही भी हो सकते है।

हम भी अपने विचारो को मोड दे, भावना मे सुधार लावे और उत्तम उत्कृष्ट भावना को हृदय मे विकसित करे। कवि कहता है-

भावना दिन रात मेरी, सब सुखी संसार हो ।
सत्य संयम शील का, प्रचार घर-घर द्वार हो ॥
शान्ति और आनन्द का, हर एक में वास हो ।
वीर वाणी पर सभी, संसार का विश्वास हो ॥

प्रत्येक मानव यदिआज अपने विचारो को बदलकर स्व-पर कल्याण की बात सोचे, सदैव दूसरो के हित की बात सोचे तो आज जो विषमता का भयङ्कर वातावरण बना हुआ है उसे शुभ भावना द्वारा दूर कर विश्व और समाज मे समता रस की सरिता वहा सकते है। सन्त कवि तुलसीदासजी ने कहा है-

परहित सरिस धर्म नहीं भाई ।
पर पीड़ा सम नहीं अधमाई ॥

इसलिए जो अपना हित चाहते है, समाज का हित चाहते है, जीवन मे आनन्द की अनुभूति चाहते है, तो वे अनिष्ट विचारो का त्याग कर जगत के कल्याण की भावना बनावे । 'मेरी भावना' नामक कविता के पदो का चिन्तन करे तो भी बहुत लाभ की सम्भावना है । कविता के कुछ पदो का मै यहॉ उच्चारण कर रहा हूॅ-

नहीं सताऊँ किसी जीव को, झूॅठ कभी नहीं कहा करूॅ ।
पर धन वनिता पर न लुभाऊॅ, सन्तोषामृत पिया करूँ ॥
अहङ्कार का भाव न रक्खूं, नहीं किसी पर क्रोध करूॅ ।
देख दूसरों की बढ़ती को, कभी न ईर्ष्या भाव धरूॅ ॥
रहे भावना ऐसी मेरी, सरल सत्य व्यवहार करूॅ ।
बने जहाँ तक इस जीवन में, औरों का उपकार करूँ ॥

भावना की श्रेष्ठता से ही प्रथम चक्रवर्ती श्री भरत महाराज ने शीशमहल मे केवल ज्ञान प्राप्त किया । माता मरुदेवी ने हाथी पर बैठे-बैठे ही केवल ज्ञान प्राप्त किया, महामुनि गजसुकुमाल ने श्मशान भूमि मे मुक्ति को वरण किया । इसके विपरीत कालु कसाई ने दुर्भावना के कारण बिना द्रव्य हिसा किये ही पाप का बन्ध किया । इसलिए अशुभ भावो पर नियन्त्रण लगावे, उन्हे मोड देवे और शुभ भावना बनावे ।

भावनाओं के प्रकार-

ज्ञानियो ने स्थूल रूप से भावना के चार भेद किये है- 1 दानवीय भावना 2 मानवीय भावना 3 देवी भावना और 4 ब्रह्म भावना ।

1. दानवीय भावना

सामान्य रूप से जो दूसरो की सम्पत्ति पर अपना अधिकार चाहता है, वह दानव कहलाता है । पशु दूसरे के हिस्से को पहले खाना चाहता है । कुछ व्यक्ति भी इस प्रकृत्ति के होते है, जो दूसरो

के हिस्से पर अधिकार चाहते है । कभी-कभी अपने थोडे से लाभ के लिए दूसरो का अहित भी करने को तत्पर हो जाते है । यही नही कुछ व्यक्ति दूसरो का अहित करने के लिए अपना अहित भी करने को तैयार हो जाते है । कहावत है- 'अपनी नाक कटे तो कटे, दूसरों के सकुन तो विगडेगे ।' ये दानवीय भावना के लक्षण है, पशुता के चिह्न है ।

एक वार किसी व्यक्ति ने किसी देव की आराधना कर उसे प्रसन्न किया । देव ने प्रसन्न होकर उसे वरदान दिया कि जो वह मांगेगा वह मिलेगा लेकिन उससे दुगुना पडौसी को भी प्राप्त होगा । उस व्यक्ति ने एक सुन्दर बगले की मांग की । उसके वैसा ही बंगला वन गया । पडौसी को दुगुना लाभ हुआ, दो बंगले बन गये । उसने एक बढिया मोटरकार की मांग की । बगले के बाहर सुन्दर कार खडी हो गई । यह क्रम चलता रहा । लेकिन एक दिन इस व्यक्ति के मन में दुर्भावना ने जन्म लिया । विचार किया कि यह तो ठीक नही है । मेरे साथ-साथ पडौसी को भी लाभ होता है और वह भी मुझसे दुगुना । उससे यह सहन नही हुआ । वह ईर्ष्या की अग्नि मे जलने लगा । परेशान हो गया । कोई उपाय नही दिख पडा। आखिर दूसरे व्यक्तियो से राय भी लेने का विचार किया । आप जानते है कुछ व्यक्ति बुरे कार्यों के लिए नि:शुल्क वकालत करने को तैयार हो जाते है । ऐसा ही वकील इस व्यक्ति को भी मिल गया । उसने राय दी- तू अपनी ऑख फूटने का वरदान मांग ले, जिससे तू तो काणा ही होगा लेकिन तेरा पडौसी अन्धा हो जायेगा । फिर तू दूसरा वरदान मागना कि तेरे घर के बाहर एक बडा सा खड्डा तैयार हो जावे । बस, तेरा काम बन जाएगा । पडौसी के घर के बाहर दो बडे खड्डे हो जावेगे ।

ऐसा ही हुआ । अब कल्पना करे कि एक तो व्यक्ति अन्धा हो और फिर मकान के बाहर खड्डे हो तो उसकी क्या दशा होगी ? बेचारा पडौसी दु:खी हो गया । देव ने विचार किया कि

उसके वरदान का दुरुपयोग हो रहा है, इसलिए वरदान वापस ले लिया और दोनो अपनी पूर्व की स्थिति मे आ गए ।

इस उदाहरण से आप यह स्पष्ट समझ गए होगे कि जो सदैव दूसरो का अशुभ चिन्तन करते है, ऐसी दुष्ट प्रकृति के लोग दानव कहलाते है । वे सोचते है- मेरा तो मेरा है ही, तेरा सो भी मेरा है ।

2. मानवीय भावना-

दूसरी भावना है मानवीय ! जो न्यायप्रिय होता है, सतोषी होता है, समता रस का पान करता है, अपनी वस्तु अपनी समझता है तथा दूसरो की वस्तु दूसरो की ही समझता है, कभी किसी का अनिष्ट नही चाहता, शुभ चिन्तन करता है, वही मानव है - उसकी मानवीय भावना है ।

3. देवी भावना-

तीसरी देवी भावना है । जो सदैव दूसरों के हित का चिन्तन करता है, परोपकार करता है, दूसरो के हित के लिए अपने हित की बलि दे देता है, शुभ भावो मे रमण करता है, अन्याय अनीति से दूर रहता है, गुणियों की सेवा करता है, दया और दान को जीवन मे विकसित करता है, उसका जीवन दिव्य बन जाता है, अनुकरणीय बन जाता है, वह सदैव दूसरो को देने की भावना रखता है । वह मानव के चोले मे देव है । वह दूसरो की वस्तु को तो कभी अपनी बनाना चाहता ही नही, परन्तु अपनी वस्तु को भी अपनी नहीं समझता । यह उत्तम भावना है । इस भावना से आसक्ति घटती है ।

4. ब्रह्म भावना-

इस भावना से मानव ब्रह्म बन जाता है । इस अवस्था मे अपने पराये का भेद समाप्त हो जाता है । जब मानव को स्व-पर का भेद-ज्ञान हो जाता है, वह समझ जाता है कि ससार की समस्त वस्तुएँ नाशवान हैं, आत्मा अजर-अमर है, पुद्गल नष्ट

है । पदार्थ न मेरे हैं न पराये है, अन्तर-ज्योति जागृत हो जाती है, तो वह आत्म तत्त्व को समझकर वीतराग अवस्था को प्राप्त कर लेता है । यह ब्रह्म भावना है ।

आचार्य अमितगति ने चार शुभ भावो का उल्लेख किया है-

सत्वेषु मैत्री, गुणिषु प्रमोदं,
क्लिष्टेषु जीवेषु कृपा परत्वम् ।
माध्यस्थ भावं, विपरीत वृत्तौ,
सदा ममात्मा विद्धातु देव ॥

अर्थात् 1 संसार के समस्त प्राणियो के प्रति मेरा मैत्री भाव हो, 2 गुणीजनो के प्रति प्रमोद-उल्लास भाव हो, 3 दुखियो के प्रति करुणा भाव हो तथा 4 प्रतिकूल वृत्ति वालो के प्रति मध्यस्थ-तटस्थ भाव रहे । कितनी उत्तम भावना है। कैसे सुन्दर विचार है । हम भी अपनी भावना शुभ बनाकर मोक्ष-मार्ग पर अग्रसर हो ।

भावना का प्रभाव-

भावना का प्रभाव बहुत प्रबल होता है । यदि कोई किसी का अशुभ चिन्तन करता है तो दूसरा भी उसके प्रति अशुभ चिन्तन करेगा । यदि आप दूसरे का भला चाहेगे तो वह भी आपका भला चिन्तन करेगा । एक दृष्टान्त से यह अधिक स्पष्ट हो सकेगा ।

एक बार एक सेठ पुत्र अपने कुछ मित्रो के साथ नगर के राजा के दर्शन करने गया । सेठ पुत्र ने राजा के दर्शन किये, कुछ देर ठहर कर वापस रवाना हो गया । राजा ने सेठ पुत्र को देखा और ज्योहि वह जाने लगा, अगरक्षक को आदेश किया- इस युवक (सेठ पुत्र) को देश निकाला दे दिया जाय । कल सूर्योदय से पूर्व यह मेरे राज्य को त्यागकर अन्यत्र चला जाय अन्यथा इसे मृत्युदण्ड दिया जायेगा । यह आदेश सुनते ही सभी स्तम्भित रह गये । सेठ पुत्र को आदेश सुना दिया गया । किसी को भी समझ मे नही आया

कि क्यो राजा ने ऐसा कठोर आदेश दिया है ? सभी अपने-अपने स्थान पर चले गये । सेठ पुत्र घर आया और विचार मग्न हो गया कि आज तो राजा के दर्शन बहुत महँगे पड गये । राजा ने केवल मेरे लिए ऐसा आदेश क्यो दिया ? सभी चिन्तित थे कि अब क्या होगा ?

विचार ही विचार मे सध्या हो गई । सेठ पुत्र अपने पलग पर सोया-सोया विचार कर रहा है । राजा के दण्ड से कैसे मुक्त होऊँ ? उसने विचार किया कि राजा ने मेरे लिए ऐसा आदेश क्यो दिया ? उसे याद आया कि जब वह राजकक्ष मे पहुँचा और ज्योहि उसने राजा के दर्शन किए उसके मन मे ऐसा विचार आया कि यदि यह राजा मृत्यु को प्राप्त हो जाये तो मेरे घर पर जो बहुमूल्य बावना चन्दन लम्बे समय से पडा है, उसका अच्छा पैसा प्राप्त हो जाये । उसने सोचा, सम्भव है इसी दुष्ट भावना ने राजा को उसे देश निकाले का आदेश देने को प्रेरित किया हो । इसलिए सेठ पुत्र ने अपने आप को धिक्कारा कि वह राज्य के स्वामी, सुयोग्य शासक की मृत्यु की भावना करता है । मन से मलिनता दूर हो गई । सेठ पुत्र ने विचार किया कि यह बावना चन्दन ही मेरे देश निकाले का कारण है, इसलिए इसे समाप्त कर दिया जावे । यह सोचकर वह रात्रि के अन्धकार मे अपने पलग से उठा और बावने चन्दन की लकडियो को बान्धकर नगर के बाहर दूर जगल मे फेक आया । उसके बाद घर आकर पुनः सो गया । थकान के कारण गहरी निद्रा आ गई ।

जब सेठ पुत्र के मन मे राजा के प्रति शुभ विचार आ रहे थे उसी समय रात्रि मे राजा भी सोये-सोये विचार कर रहा था कि अकारण ही सेठ पुत्र को ऐसा कठोर दण्ड क्यो दे दिया ? राजा को पश्चाताप हुआ । सेठ पुत्र को बिना अपराध के ऐसा कठोर दण्ड देकर न्याय की हत्या की है । प्रातःकाल जल्दी ही सेठ पुत्र की खोज कराने एवं उसे क्षमा कर देने का विचार राजा के मन मे आया ।

भावनाओं का कैसा तीव्र सम्बन्ध है ? इधर सेठ पुत्र के मन में जव राजा के प्रति अशुभ विचार आए तो राजा ने भी स्वतः सेठ पुत्र को कठोर दण्ड की आज्ञा दी। जव सेठ पुत्र के विचार बदल गए तो उसी समय राजा ने भी अपना निर्णय बदल दिया।

प्रातःकाल होते ही राजा ने सेवकों को बुलाकर सेठ पुत्र की खोज करने का आदेश दिया तथा क्षमा आदेश भी सुना दिया। उधर सेठ पुत्र सूर्योदय के बाद भी गहरी नीद में सोया रहा। उसे अनायास ही राजा के दण्ड का भय समाप्त हो गया। जब राजकीय सेवक सेठ पुत्र के घर आए तब भी वह गहरी नीद मे खुर्राटे भर रहा था। वह अब निश्चिन्त था। जब उसे राजकीय सेवको ने जगाया और पूछा कि क्या उसे मृत्युदण्ड का भय नही है ? तो उसने कहा कि दण्ड के मूल को उसने नष्ट कर दिया है इसलिए उसे अब कोई भय नही है। राजा ने उसे महलो मे बुलाकर क्षमा प्रदान कर दी।

कभी किसी का बुरा न चाहो-

इस उदाहरण से यह सकल्प करना चाहिए कि कभी किसी का अशुभ चिन्तन नही करे। किसी का अनिष्ट न सोचे। एक अंग्रेज विद्वान ने कहा है कि "Fancy May Kill or Cure" 'भावना नष्ट कर सकती है और बचा सकती है।'

शास्त्रो मे बारह भावनाओ का भी उल्लेख आता है। साधक को इन भावनाओ का चिन्तन करना चाहिए, जिससे मोक्ष मार्ग सुलभ हो जावे। सक्षेप में बारह भावनाओ का विवरण निम्न प्रकार से है-

1. अनित्य भावना

राजा राणा छत्रपति, हाथिन के असवार।
मरना सबको एक दिन, अपनी-अपनी बार॥

साधक यह चिन्तन करे कि ससार मे जो भी वस्तुएँ दृष्टिगत

होती है वे सब नाशवान है, अनित्य है । केवल आत्मा नित्य है । भौतिक पदार्थ नाशवान है, ऐसा चिन्तन करने से ससार के प्रति आसक्ति घटेगी । इस भावना का भरत चक्रवर्ती ने चितन किया था

2. अशरण भावना

दल बल देवी देवता, मात-पिता परिवार ।
मरती बिरियां जीव को, कोई न राखनहार ॥

ससार मे धर्म तथा परमात्मा के अलावा अन्य कोई शरण प्रदान करने वाले नही है । धन, कुटुम्ब, अधिकार आदि कोई भी शरण देने मे सक्षम नही है । एक धर्म ही तिराने वाला है ।

एकोहि धम्मो ताणं ।

इस अशरण भावना का चिन्तन अनाथी मुनि ने किया था।

3. संसार भावना

दाम बिना निर्धन दु:खी, तृष्णावश धनवान ।
कहुँ न सुख संसार में, सब जग देख्यो छान ॥

ससार के स्वरूप के चिन्तन करना संसार भावना है । ससार मे कहीं भी सुख नही है, ससार असार है, मुक्ति ही सच्चा एव शाश्वत सुख है । इस भावना का चिन्तन मल्लिजिन एव उनके छः मित्रो ने किया ।

4. एकत्व भावना

आप अकेला अवतरे, मरे अकेला होय ।
यो कबहूँ आ जीव को, साथी सगो न कोय ॥

जीव (आत्मा) अकेला आया है और अकेला ही जावेगा । संसार में कोई किसी का साथी नही है । इस भावना का चिन्तन मृगापुत्र ने किया था ।

5. अन्यत्व भावना

जहाँ देह अपनी नहीं, तहां न अपना कोय ।
घर सम्पत्ति पर प्रकटये, पर हैं परिजय लोय ॥

आत्मा को संसार के सभी पदार्थो से भिन्न मानना, आत्म-तत्व का चिन्तन करना, संसार मे सभी स्वार्थ के सम्बन्धी है, यह शरीर भी मेरा नहीं है, ऐसा चिन्तन करना अन्यत्व भावना है। राजर्षि नमिराज ने इसका चिन्तन किया। इन्द्र ब्राह्मण का रूप बनाकर आया और नमिराज से ग्यारह प्रश्न पूछे। राजर्षि ने अन्यत्व भावना पर आधारित समाधान दिया।

6. अशुचि भावना

दिपै चाम चादर मढी, सड़े पिंजरा देह ।
भीतर या सब जगत में, और नहीं छिन गेह ॥

शरीर की अशुद्धता, अपवित्रता का चितन करना, शरीर को अशुचि का भण्डार समझना अशुचि भावना है। शरीर मे रक्त, मास, मल, मूत्र, कफ, श्लेष्म आदि अपवित्र पदार्थ भरे पडे है, उनका चिन्तन कर शरीर से ममत्व हटाना, अभिमान का त्याग करना अशुचि भावना है। सनत्कुमार चक्रवर्ती ने यह भावना भायी थी।

7. आश्रव भावना

जगवासी घूमे सदा, मोह नींद के जोर ।
सब लूटे नहीं दीसता, कर्म चोर चहुं ओर ॥

ससार परिभ्रमण का मूल कारण आश्रव है। जब तक व्रत ग्रहण कर आश्रव का निरोध नही किया जाता, तब तक दु:खो से छुटकारा नहीं होता, कर्म बन्धन नही रुकता, ऐसा चिन्तन करना चाहिए। चोर को देखकर समुद्रपाल ने इस भावना का चिन्तन किया था।

8. संवर भावना

मोह नींद जब उपशमे, सतगुरु देय जगाय ।
कर्म चोर आवत रुके, तब कुछ बने उपाय ॥

आश्रव का रुकना, आश्रव द्वारो को बन्द करना, सवर है।

सवर के द्वारा पापो का बन्ध रोका जा सकता है, ऐसा चिन्तन करना सवर भावना है । सवर के स्वरूप का चिन्तन करना चाहिए। ऐसा चिन्तन हरिकेशी मुनि ने किया था ।

9. निर्जरा भावना

ज्ञान दीप तप तेल भर, घर शोधे भ्रम छोर ।
या विधि बिन निकसे नहीं, पैठे पूरव चोर ॥
पंच महाव्रत संचरण, समिति पंच प्रकार ।
प्रबल पंच इन्द्रिय विजय, धार निर्जरा सार ॥

अनशन आदि बारह प्रकार के तप के महत्व को समझकर उन्हे कर्म क्षय मे सहायक समझना, निर्जरा के स्वरूप का चिन्तन करना, निर्जरा भावना है । अर्जुनमाली अणगार ने इस भावना का चिन्तन किया था ।

10. लोक भावना

चौदह राजु उत्तंग नभ, लोक पुरुष संठान ।
ता में जीव अनादि तें, भरमत है बिन ज्ञान ॥

लोक के आकार का चिन्तन करना लोक भावना है । यह लोक चौदह राजु प्रमाण है, इसका आकार नाचते भोपे के समान है, अथवा तीन दीपक एक दूसरे पर उल्टे रखे हुए के समान है । अज्ञान दशा के कारण अनादि काल से यह आत्मा इस विस्तृत लोक मे परिभ्रमण कर रहा है । ऐसी भावना शिवराजर्षि ने भायी थी ।

11. बोधि दुर्लभ भावना

तन-धन-कंचन-राजसुख, सबहि सुलभ कर जान।
दुर्लभ है संसार में, एक पदारथ ज्ञान ॥

बोधि बीज - सम्यक्त्व के स्वरूप का, उसके महत्व का चिन्तन करना, सम्यक्त्व मोक्ष का प्रथम सौपान है, ऐसा चिन्तन करना बोधि दुर्लभ भावना है । सम्यक्त्व के अभाव मे मुक्ति असम्भव

है, सम्यक्त्व मुक्ति का प्रधान साधन है, ऐसा चिन्तन करना चाहिए । इस भावना का चिन्तन भगवान ऋषभदेव के 98 पुत्रो ने किया था ।

12. धर्म भावना

जाँचे सुरतरुदेय सुख, चिन्तन चिन्ता रैन ।
बिन जाँचे बिन चिन्तिये, धर्म सदा सुख दैन ॥

धर्म के महत्व, स्वरूप आदि का चिन्तन करना, धर्म भावना है । एकमात्र धर्म ही शरणदायी है, धर्म के स्वरूप को समझकर आचरण करने से जीव को मुक्ति प्राप्त हो सकती है । मानव जीवन की सार्थकता धर्माचरण से है, ऐसा सदैव चिन्तन करना चाहिए ।

बारह भावनाओ का स्वरूप सक्षेप मे समझाने का प्रयत्न किया है । इन भावनाओ का निरन्तर चिन्तन करना चाहिए ।

तीन मनोरथ-

ग्रहस्थो को श्रावक के तीन मनोरथ का भी चिन्तन करना चाहिए ।.इसी प्रकार सन्तो को भी साधु के तीन मनोरथो का चिन्तन करना चाहिए । श्रावक के तीन मनोरथ निम्न प्रकार है-

1 वह दिन धन्य होगा जब मै आरम्भ-परिग्रह से निवृत्त हो जाऊँगा ।

2 वह दिन धन्य होगा जब मै निर्ग्रन्थ मुनि बनूँगा ।

3 वह दिन धन्य होगा जब मैं सलेखना संथारा युक्त पण्डित मरण को प्राप्त करूँगा ।

दोहा- **आरम्भ परिग्रह तज करि, पंच महाव्रत धार ।**
अन्त समय आलोयणा, करूँ संथारा सार ॥

इस पावन प्रसग पर सभी अपनी भावना उत्तम बनावे एव कवि के भावो के साथ अपने भाव जोड देवे ।

कब होगा प्रभु ! कब होगा, वह दिवस हमारा कब होगा ॥

हम पतितों से अति प्रेम करें, दुश्मन जन पर भी रहम करें।
हम सब जीवों का क्षेम करें वह दिवस हमारा कब होगा ॥

कब ऊँच-नीच का भेद मिटे, धन जन खोने का खेद मिटे ।
मदमत्सर मिथ्या भेद मिटे, वह दिवस हमारा कब होगा ॥

प्राणी को निज सम पेखेंगे, स्त्री को माता सम देखेंगे ।
लक्ष्मी को मिट्टीवत् लेखेंगे, वह दिवस हमारा कब होगा ॥

जग व्यवहारों को छोड़ेंगे, तृष्णा के बन्धन तोड़ेंगे ।
जीवन प्रभु संग ही जोड़ेंगे, वह दिवस हमारा कब होगा ॥

सुख देकर के सुख मानेंगे, दुःख सहकर के सेवा देंगे ।
सेवामय जीवन कर लेंगे, वह दिवस हमारा कब होगा ॥

प्रार्थना की कडियो मे भी भक्त कवि विनयचन्दजी अपने आपको प्रभु को समर्पित कर, प्रभु मे ही समा जाने की भावना अभिव्यक्त करते है, समय मात्र के लिए भी प्रभु को विस्मृत करना नहीं चाहते । ज्ञानियो ने भावना पर अधिक बल दिया है इसलिए शुभ भावनाओ का चिन्तन कर मोक्ष मार्ग का अनुसरण करे ।

समता सर्वभूतेषु, संयमः शुभ भावना ।
आर्तरौद्र परित्यागस्तहि सामायिकं व्रतम् ॥

भावार्थ- समस्त जीवो पर समभाव रखना, पाच इन्द्रियो पर नियंत्रण करना, शुभ भाव रखना, आर्त-रौद्र दुर्ध्यानो का त्याग कर धर्म-ध्यान मे अनुरक्त रहना सामायिक व्रत है ।

सम्यग्-दर्शन-ज्ञान-चारित्राणि मोक्षमार्गः ।

भावार्थ- सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यग्चारित्र तीनो मोक्ष के उपाय है ।

स्वाध्याय बनाम आत्म-दर्शन

स्वाध्याय का अर्थ है-स्वयं का अध्ययन । अपनी आत्मा का अवलोकन करना, स्व-पर का ज्ञान करना, आत्मस्वरूप को समझना स्वाध्याय है । आत्मस्वरूप को समझने में सम्यग्ज्ञान की आवश्यकता रहती है । जिनवाणी का श्रवण अध्ययन, सद्साहित्य का वाचन-पठन सम्यग्ज्ञान में सहायक है । अतः यह भी स्वाध्याय है । स्वाध्याय से स्व-पर का भेद ज्ञान होता है । स्वाध्याय आत्म जागृति का उपाय है ।

श्रेयांस जिनन्द सुमर रे ।
चेतन जाण कल्याण करन को, आन मिल्यो अवसर रे ।
शास्त्र प्रमाण पिछाण प्रभु गुण, मन चंचल थिर कर रे ॥ श्रे
सास उसांस विलास भजन को, दृढ विश्वास पकर रे ।
अजपाभ्यास प्रकाश हिये बिच, सो सुमिरन जिनवर रे ॥ श्रे.

श्री श्रेयांसनाथ प्रभु की प्रार्थना की कडियो का उच्चारण किया गया है । भक्त कवि श्री विनयचदजी संसारी जीवो को प्रभु की प्रार्थना करने की प्रेरणा देते हैं । यद्यपि प्रार्थना मे ग्यारहवे तीर्थकर का नाम उच्चारित कर उन्हे स्मरण करने की प्रेरणा दी है, परन्तु भावों की दृष्टि से सभी तीर्थकर एक समान आत्मिक शक्ति से सम्पन्न होते है । इस अपेक्षा से श्रेयास प्रभु के नाम के माध्यम से सभी तीर्थकरों के स्मरण की प्रेरणा स्वतः हो जाती है । तात्पर्य यह है कि परमात्मा का स्मरण सदैव करते रहना चाहिए ।

प्रभु स्मरण कब करें?

आप कहेगे कि प्रभु का नाम स्मरण कब किया जावे ? ज्ञानी कहते है कि प्रभु का स्मरण प्रति समय, प्रति क्षण, निरन्तर किया जाना चाहिए । कवि भी यही कहता है कि प्रमाद त्याग कर, प्रभु भक्ति मे, प्रभु की प्रार्थना मे लग जाना चाहिए । आधुनिक कवि भारतेन्दु हरिशचन्द्र का कथन है कि-

सांस-सांस पर हरि भजो, वृथा सांस मत खोय ।
ना जाने या सांस को, आवन होय न होय ॥

कवि कहते है कि हमे ऐसा दृढ विश्वास करना चाहिए कि प्रत्येक सास प्रभु भजन मे लगे । हृदय मे आत्म प्रकाश को जागृत करे ।

अवसर को सफल बनावें-

विनयचंदजी कहते है कि प्रमाद का त्याग कर चच... को स्थिर कर प्रभु भजन करना चाहिए । हे मानव ! ...

उदय से यह अमूल्य अवसर, मानव भव तथा शास्त्र श्रवण का सुअवसर मिला है । यदि हाथ् से यह सुअवसर निकल गया तो फिर बार-बार ऐसा अवसर मिलने वाला नही है । यह आत्म कल्याण करने का अवसर है । इसलिए हे चेतन ! आत्म कल्याण के इस सुअवसर को पहिचान एवं भगवान की भक्ति कर । आत्म कल्याण के लिए चार गतियों मे मनुष्य गति श्रेष्ठ है । अन्य तीन गतियो मे यह संभव नही है । फिर हमको तो सभी प्रकार की सुविधा उपलब्ध है । भगवान महावीर ने कहा है-

'समयं गोयम ! मा पमायए'

अर्थात् हे गौतम ! समय मात्र का प्रमाद मत करो । गौतम चार ज्ञान एवं चौदह पूर्व के ज्ञाता थे; लेकिन भगवान ने उन्हे भी प्रमाद त्यागने का उपदेश दिया । भगवान ने श्री गौतम गणधर को संबोधित कर संसार के समस्त प्राणियो को प्रमाद त्यागने का उपदेश दिया है । कवि विनयचन्द्रजी भी कहते है कि शास्त्र प्रमाण हैं, उन्हें पहचान कर, मन को स्थिर कर प्रभु का स्मरण किया जावे ।

आज स्वाध्याय के विषय का प्रसंग आपके समक्ष है । सर्व प्रथम स्वाध्याय का अर्थ समझे । स्वाध्याय शब्द की व्युत्पत्ति दो शब्दो से हुई है- स्व+अध्याय । अर्थात् स्वय का अध्ययन करना ।

'स्वस्य अध्ययनं स्वाध्यायः'

अर्थात् स्वय का अध्ययन करना स्वाध्याय है । स्वय के अध्ययन से तात्पर्य है- अपने आपको देखो, स्वय को परखो, आत्म निरीक्षण करो । जिसने स्वय को देख लिया, स्वय को परख और समझ लिया उसने सब कुछ जान लिया। आचाराग सूत्र मे भगवान ने कहा है-

जे एगं जाणइ से सव्वं जाणइ ।
जे सव्वे जाणइ से एगं जाणइ ॥

अर्थात् जिसने एक अपनी आत्मा को जान लिया है, उसने सब (ससार) को जान लिया है तथा जिसने सव (ससार) को जान लिया उसने अपनी आत्मा को जान लिया है ।

स्व-पर का ज्ञान-

स्वाध्याय के द्वारा ही आत्म स्वरूप को जाना जा सकता है, जड और चेतन के भेद को समझा जा सकता है । स्वाध्याय के अभाव मे ही आज मानव अपने कर्तव्य को तथा स्वयं को भूल कर भौतिक जड पदार्थो के पीछे भाग रहा है । जो चेतन आत्मा ज्ञानानन्द स्वभावी है वह पुद्‌गलानन्दी बन रहा है । वास्तविक स्वाध्याय न होने से आज मानव स्व-पर के भेद-ज्ञान को नहीं समझ पा रहा है । इसलिए सामान्य मानव आज दु:खी लगता है । यदि स्वाध्याय हो, भेद-ज्ञान हो तो मानव सुख का अनुभव कर सकता है ।

सद्‌साहित्य का अध्ययन-

स्वाध्याय का दूसरा अर्थ- सु-अध्याय भी किया जाता है । 'सु' का अर्थ है- सम्यग् और 'अध्याय' का अर्थ है- अध्ययन ।

'सु आड् अध्ययन' सु-सुष्ठ रीत्या आड् उपसर्ग अध्ययनं अर्थात् सद्‌साहित्य का समीचीन पठन-पाठन । अध्याय शब्द के 'सु' विशेषण लगाया गया है । इसलिए यह आवश्यक है कि जिसका अध्ययन किया जावे वह सम्यग् हो, सद्‌साहित्य की श्रेणी मे हो, सुग्रन्थ हो । केवल पुस्तको का पठन-पाठन स्वाध्याय नही है । ऐसा साहित्य जो मोक्ष मार्ग का सहायक हो, आत्म ज्योति को जगाता हो, जीवन मे क्षमा, शान्ति, निर्लोभता, अहिसा, दया, प्रेम आदि आध्यात्मिक गुणो का विकास करे, वह सद् साहित्य है । इसलिए ऐसे साहित्य का अध्ययन, पठन-पाठन स्वाध्याय है । जासूसी उपन्यास या अन्य कुसाहित्य जिसमे कामवासना, विकार, अश्लीलता, क्रोध, असन्तोष, मद आदि की अभिवृद्धि है । वह

कुसाहित्य है तथा इनका पठन-पाठन स्वाध्याय नही है । कवि भी कहता है-

पढ़ा स्वयं को जाय जिससे, स्वाध्याय कहलाता है ।
कैसा है स्वाध्याय पता न, जिससे अपना पाता है ।
समकित ज्योति जगाकर जो सन्मार्ग दिखलाता है ।
ग्रन्थ वही स्वाध्याय के बस लायक माना जाता है ।
उल्टे राह चलावें जो क्या पढ़ना कथा कहानी का ॥

सम्यग् रीति से स्वाध्याय करें-

सद्साहित्य को पढना ही नही, पढाना भी स्वाध्याय कहलाता है। पठन-पाठन दोनों स्वाध्याय कहलाते है । आगम, धार्मिक ग्रन्थ, सद्साहित्य का समीचीन रीति से अध्ययन करना चाहिये । प्रत्येक कार्य को करने की विशेष रीति होती है । धर्म ग्रन्थो को पढने-पढाने के लिए विनय एव विवेक भी आवश्यक है । वीतराग वाणी के प्रति हमारा अत्यन्त विनय, बहुमान एव सम्मान होना आवश्यक है । इसलिए स्वाध्याय करते समय यतना, विवेक, विनय आवश्यक है । तात्पर्य यह है कि कुआसन का त्यागकर सुआसन से सामायिक या सवर की स्थिति मे बैठ कर पूर्ण बहुमान एव विनयपूर्वक धर्म ग्रन्थो का पठन-पाठन करे ।

स्वाध्याय क्यों ?

गौतम ने भगवान् महावीर से पूछा-

'सज्झाएणं भंते ! जीवे किं जणयइ !'

अर्थात् हे प्रभु ! स्वाध्याय से जीव को क्या लाभ है ? प्रभु का उत्तर था-

'सज्झाएणं जीवे नाणावरणिज्जं कम्मं खवेइ'

अर्थात् स्वाध्याय से ज्ञानावरणीय कर्म नष्ट होता है ।

स्वाध्याय मोक्षमार्ग का साधन-

यदि मोक्षमार्ग के प्रमुख अग सम्यग्ज्ञान की आराधना करनी है, ज्ञानावरणीय कर्म को नष्ट करना है, तो स्वाध्याय किया जावे । ज्ञान अनन्त प्रकाश है, अज्ञान अन्धकार है । कहा भी है-

'नाणस्स सव्वस पगासणाए'

लोकालोक को प्रकाशित करने वाला ज्ञान है । स्वाध्याय के द्वारा ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है । सम्यग्ज्ञान के वारे में मै आपको पूर्व मे काफी कुछ कह चुका हूँ । इसलिए स्वाध्याय के विषय मे कुछ कहने का प्रसंग है ।

आज अध्ययन तो बहुत होता है, परन्तु स्वाध्याय का वहुत अभाव है । भौतिक ज्ञान, सासारिक ज्ञान और बाह्य ज्ञान की तो बहुत अभिवृद्धि हुई है, परन्तु आध्यात्मिक ज्ञान स्वाध्याय का ह्रास हो रहा है । उपन्यास, नाटक या कथा साहित्य तो लोग खूब पढते है परन्तु उस साहित्य से आत्मा का क्या सम्बन्ध है ? शैक्षणिक योग्यताएँ बढी है, बडी-बडी डीग्रियॉ प्राप्त की जाती है परन्तु उसकी तुलना मे धर्म ग्रन्थो का अध्ययन नगण्य है । इसलिए मै तो कहता हूँ कि स्वाध्याय नितान्त आवश्यक है ।

शान्ति का मार्ग-स्वाध्याय-

आज विश्व मे भौतिक होड चल रही है, अर्थ की दौड हो रही है । प्रत्येक व्यक्ति भौतिक साधनो को जुटाने मे लगा है । विभिन्न देशो मे शक्ति परीक्षण की होड लग रही है । सम्पूर्ण विश्व आज विनाश के कगार पर खडा है । न जाने कब विनाश की चिनगारी सुलग जावे और कुछ ही क्षणो मे विश्व रसातल मे पहुँच जाए । क्या यही विकास है ? क्या यही ज्ञान की अभिवृद्धि है ? आप चिन्तन करे कि ऐसा क्यो हुआ ? मूल मे बात यह है कि स्वाध्याय का अभाव है, जिससे जीवन मे समता का प्रादुर्भाव नही हो पाया है । इसलिए आज मानव-मानव का व एक देश दूसरे देश

का शत्रु वन गया है । यदि स्वाध्याय का साम्राज्य हो तो फिर मानव दुष्चिन्तन क्यों करेगा ? सभी प्राणियो को अपने समान समझेगा । 'आत्मवत सर्व भूतेषु' की भावना की अभिवृद्धि होगी, 'वसुधैव कुटुम्बकं' की धारणा प्रवल होगी ।

स्वाध्याय से जीवन मे समता का संचार, सन्तोष की अभिवृद्धि, वास्तविक शान्ति की प्राप्ति तथा सच्चे सुख का अनुभव होगा । स्वाध्याय के अभाव में तृष्णा बढती जा रही है और तृष्णा तो अनन्त है । कहा है-

'इच्छा हु आगास समां अणंतिया'

इच्छा, तृष्णा आकाश के समान अनन्त है । जब तक तृष्णा का अन्त नही होता, शान्ति कैसे मिल सकती है ? स्वाध्याय के द्वारा ही तृष्णा पर विजय पाना सम्भव है । इसलिए यदि वास्तविक सच्चा सुख चाहते हों तो स्वाध्याय को जीवन का प्रमुख अंग बनाओ । कवि भी कहता है-

सुना आपने नहीं कभी क्या, वचन श्री गुरु ज्ञानी का ।
तिरने को संसार सदा, स्वाध्याय करो जिनवाणी का ॥
ज्ञान ग्रन्थ तो मानव जग में, जीवन व्यर्थ गॅवाता है ।
आत्मा का परमात्मा का न, पता उसे कुछ पाता है ॥
चौरासी के चक्कर मे फॅस, कष्ट अनेक उठाता है ।
अन्त कभी भी कष्टो का, न उसको फिर तो आता है ॥
दु:ख का ही बस बनता सागर, जीवन उस अज्ञानी का ।
तिरने को ससार सदा, स्वाध्याय करो जिनवाणी का ॥
जिनवाणी स्वाध्याय आपके, मन की कली खिलायेगा ।
जिनवाणी स्वाध्याय आपके, मन को शान्त बनायेगा ॥
जिनवाणी स्वाध्याय आपके, मन का तमस मिटायेगा ।
जिनवाणी स्वाध्याय आपके, सारे कष्ट भगायेगा ॥
जिनवाणी स्वाध्याय अत: कर्तव्य प्रथम है प्राणी का ।
तिरने को ससार सदा, स्वाध्याय करो जिनवाणी का ॥

स्वाध्याय तप है-

भगवान् ने तप के बाहर भेद कहे है, उनमे दसवॉ भेद स्वाध्याय है। स्वाध्याय तप का आभ्यन्तर भेद है। स्वाध्याय निर्जरा का प्रबल कारण है। भगवान् ने साधुओ को दिन-रात के आठ प्रहर मे पॉच प्रहर स्वाध्याय मे लगाने का निर्देश किया है। रात्रि चार प्रहर मे से भी दो प्रहर स्वाध्याय के लिए निश्चित किये हैं-

पढमं पोरसि सज्झायं, बीयं झाणं झियायइ।
तइमाए निद्धमोक्खं तु, चउत्थी भुज्जो वि सज्झायं ॥

(उत्तराध्ययन सूत्र- अ 26/18)

अर्थात् साधु प्रथम प्रहर में स्वाध्याय, दूसरे मे ध्यान, तीसरे मे निद्रा एव चौथे मे फिर स्वाध्याय करे।

दशवैकालिक सूत्र मे कहा है- साधु निद्रा, हॅसी-मजाक, विकथा आदि का त्याग कर सदा स्वाध्याय मे रत रहे।

'सज्झायम्मि रओ सया' (दशवैकालिक 8/42)

स्वाध्याय एक ऐसा तप है जिससे ज्ञान की अभिवृद्धि होती है और कर्मो की निर्जरा भी होती है। यह केवल साधुओ के लिए ही आवश्यक नहीं है, गृहस्थो के लिए भी परम आवश्यक है। जैसा कि पहले ही कहा गया है कि स्वाध्याय से ज्ञानावरणीय कर्म नष्ट होता है।

स्वाध्याय के भेद-

उववाई सूत्र और भगवती सूत्र मे स्वाध्याय के पॉच भेद बताए गये है।

'से किं तं सज्झाय ? पंचविहे पण्णत्ते तंजहा-

1. वायणा 2. पतिपुच्छणा 3. परियट्टणा 4. अणुप्पेहा 5. धम्मकहा।

(भगवती सूत्र 25/7)

1 वाचना 2 प्रति पृच्छा 3 परिवर्तना 4. अनुप्रेक्षा 5. धर्मकथा ।

1. वाचना

वाचना स्वाध्याय का प्रथम अंग है । सद्साहित्य का पठन-पाठन, गुरुदेव से शास्त्र पढना, सुनना या पाठ लेना 'वाचना' है । शास्त्र आगम साहित्य या उससे सम्वन्धित सद्साहित्य को पढना स्वाध्याय है । आजकल साहित्य प्रकाशन तो बहुत हो रहा है, परन्तु देखना यह है कि हम कौनसा साहित्य पढे । जिस साहित्य मे मोक्षमार्ग का उपदेश हो ! आत्मा-परमात्मा की अनुभूति का जिस साहित्य से ज्ञान हो वह सद्साहित्य है । युगदृष्टा, युग प्रवर्तक स्वर्गीय आचार्य श्री जवाहरलालजी म. सा. के व्याख्यान शास्त्र सम्मत एवं आत्म ज्योति को प्रज्ज्वलित करने वाले थे । उनके व्याख्यानों को जवाहर किरणावलियो मे सकलित करने का प्रयत्न किया गया । ये पुस्तके सरल भाषा मे है तथा आगमो का बोध कराने वाली है । इसलिए ऐसे साहित्य का वाचन स्वाध्याय है । इसी प्रकार अन्य साहित्य भी उपलब्ध है, जिससे जैन आगमो का ज्ञान होता है, जैन तत्वों को समझा जा सकता है । ऐसे साहित्य का वाचन करना चाहिये । इससे दोहरा लाभ होगा । प्रथम ज्ञान का विकास होगा तथा दूसरा समय का सदुपयोग हो सकेगा। जीवन मे आनन्द की अनुभूति होगी ।

(श्री अ भा साधुमार्गी जैन सघ, बीकानेर द्वारा प्रकाशित 'जिणधम्मो' मे जैन सिद्धान्त सम्बन्धी विशाल ज्ञान समाहित है । यह ग्रन्थ सिद्धान्त प्रेमियो के लिए अवश्य पठनीय है ।)

2. प्रति पृच्छा

जब हम सद्साहित्य का वाचन करेगे तो कई जिज्ञासाएँ उत्पन्न होगी; शकाएँ उठेगी । इन शकाओ का समाधान आवश्यक है । समाधान के लिए गुरुओ के समक्ष प्रश्न कर उनका उत्तर प्राप्त करना चाहिये । शका का निवारण शीघ्र करना आवश्यक है,

अन्यथा उसका बडा भयकर परिणाम होता है । इसलिए प्रश्न पूछकर शका समाधान करना चाहिये । यह प्रति पृच्छा नाम का स्वाध्याय है । प्रति पृच्छा से शका दूर होने के साथ-साथ ज्ञान मे भी अभिवृद्धि होती है ।

3. परिवर्तना

सीखे हुए ज्ञान को पुनः पुनः दोहराना, पुनरावृत्ति करना, परिवर्तना नामक स्वाध्याय है । परिवर्तना भी अत्यन्त आवश्यक है । अन्यथा सीखे हुए ज्ञान के भूल जाने की सम्भावना है । यथा अवसर समय-समय पर ज्ञान का पुनरावर्तन करते रहना चाहिये ताकि ज्ञान मे स्थिरता आवे एवं वह आत्मसात् हो जावे । रात्रि मे प्रकाश के अभाव मे भी यह स्वाध्याय सम्भव है । फालतू समय का सदुपयोग भी परिवर्तना द्वारा किया जा सकता है ।

4. अनुप्रेक्षा

वाचनादि उपरोक्त तीन प्रकार से सीखे हुए ज्ञान का बार-बार चिन्तन-मनन करना, गहराई से विचार करना, अवसर आने पर उपयोग लगाना अनुप्रेक्षा स्वाध्याय है । जैसे किसी ने पच्चीस बोल का श्लोक कण्ठस्थ कर लिया, फिर प्रत्येक बोल का चिन्तन-मनन करे, उपयोग पूर्वक उसके भाव को समझे तो वह अनुप्रेक्षा कहलायेगा।

5. धर्म कथा

उपरोक्त चार प्रकार के सीखे हुए ज्ञान को अन्य श्रोताओ को सुनाना, धर्म कथा है । धर्म कथा से श्रुत ज्ञान की अभिवृद्धि होती है । धर्म कथा जिनवाणी के अनुकूल होनी चाहिये । जिनवाणी के अतिरिक्त अन्य बाते, मनोरजन, मान-पूजा आदि के लिए दिये गये उपदेश धर्म कथा नही है। धर्म कथा तो वह है जिससे सुनने वाले का ज्ञान बढता है, निर्मल होता है तथा श्रोता को जिनवाणी का लाभ मिलता है ।

प्रवचन सुनना भी स्वाध्याय है । प्रवचन सुनने से वहुत लाभ है ।

एक समय की वात है । एक नगर मे जिनवाणी का जिज्ञासु एक श्रावक रहता था । वहॉ पर सन्त-सतियों के प्रवचन का लाभ कई वार मिल जाया करता था । श्रावकजी को जव भी प्रवचन सुनने का अवसर मिलता, वे सुनने के लिए धर्म स्थान पर पहुँच जाते । आयु के वढने से तथा अशुभ कर्मो के उदय से श्रावकजी के सुनने की शक्ति क्षीण हो गई, फिर भी व्याख्यान में जाना बन्द नही किया । एक वार शहर मे मुनिराज पधारे और प्रवचन भी हुआ । किसी व्यक्ति ने मुनिराज को उक्त श्रोता की जानकारी देते हुए बताया कि इन्हे बहुत जोर से बोलने पर ही सुनाई देता है फिर भी व्याख्यान मे बराबर आते है । सन्त को कुछ आश्चर्य हुआ इसलिए एक दिन पूछ ही लिया-

'आपको व्याख्यान सुनाई देता है या नहीं ?'

श्रावक- 'नहीं महाराज, मुझे व्याख्यान बहुत कम सुनाई देता है ।'

'फिर भी आप प्रतिदिन व्याख्यान मे आते है, इसका क्या कारण है ?'

'महाराज ! मुझे यद्यपि सुनाई नहीं देता है, फिर भी व्याख्यान मे आने से मुझे बहुत लाभ है । प्रथम तो यह धर्म स्थान है, यहॉ के पुद्‌गल अच्छे होते है इसलिए बाहर की अपेक्षा यहॉ मेरे विचार शुभ रहते हैं । दूसरा, जब मै व्याख्यान मे आता हूँ तो मेरा अनुकरण मेरे परिवार के सदस्य भी करते है, जिससे उनको भी व्याख्यान सुनने का अभ्यास बनता है और व्याख्यान के प्रति आदर भाव जागृत होता है । फिर आपके दर्शन हो जाते है, जिनवाणी के प्रति मेरी श्रद्धा बनी रहती है । कभी-कभी कोई उत्तम शब्द मेरे कानो मे भी पड जाता है ।

महाराज को उत्तर सुनकर बहुत सन्तोष हुआ ।

तात्पर्य यह है कि व्याख्यान श्रवण करना भी स्वाध्याय है । इसलिए अभी मेरे को भी स्वाध्याय हो रहा है और आपको भी ।

स्वाध्याय के लाभ-

स्थानांग सूत्र के पॉचवे ठाणे में उल्लेख है कि पॉच कारणो से सूत्र वाचन किया जावे ।

'पंचाहि ठाणेहिं सुत्तं वाएज्जा तंजहा- 1. संगहट्ठयाए 2. उवग्गहणट्ठयाए 3. णिज्जरणट्ठयाए 4. सुत्ते वा मे पज्जवयाए भविस्सई 5. सत्तस्स वा अवोच्छित्तिणयट्ठायाए'

(स्थानाग 5/468)

1 सूत्र का ज्ञान कराने के लिए 2 उपकार करने के लिए 3 निर्जरा के लिए 4. सूत्र ज्ञान को दृढ करने के लिए 5. सूत्र का विच्छेद न होने देने के लिए ।

इसका अर्थ यह हुआ कि सूत्र वाचन से- 1 ज्ञान की अभिवृद्धि होती है, 2 परोपकार होता है, 3. स्वय के कर्मो की निर्जरा होती है, 4 आध्यात्मिक ज्ञान निर्मल होकर अधिक दृढ बनता है तथा 5. आगम ज्ञान सुरक्षित रहता है ।

स्वाध्याय प्रकाश पुंज है-

'तमसो मा ज्योतिर्गमय' यह अन्धकार क्या है ? वास्तव मे अज्ञान अन्धकार है और ज्ञान ज्योति है । स्वाध्याय जीवन मे अज्ञान रूपी अन्धकार को नष्ट कर, ज्ञान रूपी प्रकाश फैलाता है । किसी कवि ने कहा है-

स्वाध्याय का आनन्द लेने दो,
मोहे ज्ञान की ज्योति जगाने दो ॥

स्वाध्याय है अन्तर तप भारी, महिमा जिसकी अपरम्पारी ।
मोहे अन्तर तप को करने दो ॥ स्वाध्याय

स्वाध्याय ज्ञान का साधन है । धारेगा वह ज्ञानी जन है ।
अन्धकार को दूर हटाने दो ॥ स्वाध्याय

स्वाध्याय आत्म-ज्योति जगाने का साधन है ।

सामायिक में स्वाध्याय-

आप मे से अधिकांश महानुभाव प्रतिदिन सामायिक करते हैं, परन्तु स्वाध्याय वहुत कम व्यक्ति करते है । यह ठीक नही है । सामायिक मे स्वाध्याय करना चाहिये । सामान्यतया सामायिक करने वाले भाई-वहिन माला फिरा कर, अनानुपूर्वी पढकर, स्तवन-भजन वोलकर या कथा कहानियों में समय पूरा कर देते हैं । कई तो ऐसे भी होगे जो सामायिक मे इधर-उधर की चर्चाएँ एवं विकथाएँ करते हैं । यह अनुचित तथा सामायिक के महत्व को घटाना है ।

सामायिक मे स्वाध्याय करना आवश्यक है । कई बार भाई-बहिन कहते है कि हमारा सामायिक में मन स्थिर नही रहता । मैं उनसे स्वाध्याय करने की राय देता हूँ । आप लोगो ने स्वयं यह अनुभव किया होगा कि माला फिराते समय या अनानुपूर्वी पढते समय मन इधर-उधर घूमता है लेकिन स्वाध्याय करते समय मन स्थिर रहता है । इसलिए मै आप सभी को आग्रह पूर्वक कहता हूँ कि आप सभी सामायिक मे व अन्य समय मे आवश्यक रूप से नियमित स्वाध्याय करें । शास्त्रो में कहा गया है-

'पढमं नाणं तओ दया'

अर्थात् दया से ज्ञान आवश्यक है । ज्ञान के अभाव मे जीव व अजीव का भेद करना कैसे सम्भव है ? इसलिए ज्ञानाभ्यास आवश्यक है । शास्त्रो के स्वाध्याय से ही हिताहित का बोध सम्भव है । कहा भी है-

सोच्चा जाणइ कल्लाणं, सोच्चा जाणइ पावग्गं ।
उभयं वि जाणइ सोच्चा, जं सेमं तं समायरे ॥

अर्थात् यह आत्मा सुनने से कल्याण एव पाप मार्ग को जान पाता है । इसलिए जो श्रेयस्कर है, उसका आचरण करो ।

स्वाध्याय स्व-पर कल्याणक है-

स्वाध्याय मे स्वय का तो कल्याण है ही, दूसरो को भी लाभ होता है । मै व्याख्यान के माध्यम से स्वाध्याय कर रहा हूँ, तो आप लोगो को हिताहित की बात सुनने को मिल रही है । इसलिए स्वाध्याय से स्वय के कल्याण के साथ-साथ दूसरो का भी हित होता है ।

स्वाध्याय से समाज सुधार-

आज समाज मे जो विषमता फैल रही है, उसका एक प्रमुख कारण यह भी है कि स्वाध्याय का अभाव है । इसलिए यदि स्वाध्याय की अभिवृद्धि हुई तो समाज में सुधार होगा । जैन समाज मे दहेज-प्रथा ने भयंकर रूप धारण कर लिया है । इस घिनौनी प्रथा से यदि यो कहें कि मानव समाज कलंकित हो रहा है तो कोई अतिशयोक्ति नही होगी । आए दिन विचित्र एव अप्रिय घटनाएँ मेरे कर्णपटल पर भी पहुॅच जाती है । यद्यपि इस समय इस विषय पर अधिक कहने का अवसर नही है, फिर भी इतना अवश्य समझे कि जैन समाज को इस अभिशाप से मुक्त होने का पूर्ण प्रयत्न करना चाहिये ।

स्वाध्याय के द्वारा समाज का सुधार सम्भव है । यदि समाज के अधिकांश व्यक्ति, भाई-बहिन नियमित स्वाध्याय करे, तो वे दहेज की बुराइयो का अनुभव कर सकेगे, अनीति और अन्याय से बचने का प्रयत्न करेगे, विवाह को व्यापार नही समझेगे एवं सौदेबाजी व मांगने की वृत्ति का त्याग करेंगे । हम श्रेष्ठी कहलाते है, महाजन कहलाते हैं फिर यह विवाह के प्रसंग पर दहेज की सौदेबाजी करना, लेन-देन का तय करना, अपने ही निकट सम्बन्धी से भिखारी की तरह माग करना, क्या हमारे लिए २।
है ? कदापि नही ! इसलिए मै कहता हूँ कि स्वाध्याय
हम अपने आपको पहचाने और समता रस मे २

स्वाध्यायी सदस्य है चाहे वे किसी भी संघ के हो, उन्हें तो इस घिनौने अपराध का त्याग करना ही चाहिये ।

स्वाध्याय प्रवृत्ति का विकास हो-

1. सन्तों का दायित्व-

स्वाध्याय की प्रवृत्ति को जन-जन तक पहुँचाई जावे । प्रत्येक नगर एवं गॉव मे स्वाध्यायी बनाये जावे । इस कार्य के लिए सन्त-सती समुदाय को भी आगे आना चाहिये, उन्हें भी अपनी मर्यादा मे रहते हुए इस उत्तम प्रवृत्ति की अभिवृद्धि का प्रयत्न करना चाहिये । जहॉ भी विचरण करें, चातुर्मास करें, अच्छे योग्य स्वाध्यायी तैयार करें । गृहस्थों को नियमित स्वाध्याय करने की प्रेरणा देवें । इसे अपना दायित्व समझें । परन्तु अपनी मर्यादा मे रहकर ही सारा कार्य करे । स्वर्गीय पूज्य जवाहराचार्य ने इस बात पर बहुत बल दिया था । स्वर्गीय पन्नालालजी म. सा ने गुलाबपुरा में स्वाध्याय सघ की स्थापना की प्रेरणा दी थी । उसके बाद आचार्यश्री हस्तीमलजी म. सा. ने भी स्वाध्याय प्रवृत्ति पर बहुत बल दिया । अन्य भी कई सन्त-सतियॉ इसमें रूचि ले रहे है ।

2. स्वाध्याय संघों का दायित्व

स्वाध्याय सघो का भी यह परम कर्तव्य है कि वे योग्य स्वाध्यायी तैयार करें । केवल नाम मात्र के स्वाध्यायी सख्या की अभिवृद्धि की दृष्टि से बनाए गये या पर्युषण पर्व मे बाहर जाकर सेवा देने वाले हो तो लक्ष्य की प्राप्ति सम्भव नही है । स्वाध्याय संघ नियमित स्वाध्याय करने वाले स्वाध्यायी तैयार करे । साधुओं की अपनी मर्यादाएँ होती है, लेकिन हम लोग स्वतन्त्र है, इसलिए सन्तो के विचारो को मूर्त्त रूप दे सकते हैं ।

आज भारतवर्ष मे कुछ स्वाध्याय सघ बने है । गुलाबपुरा स्वाध्याय सघ, जोधपुर स्वाध्याय सघ, समता प्रचार संघ, सुधर्म प्रचार मण्डल आदि तो राजस्थान मे ही है । महाराष्ट्र और दक्षिण

भारत मे भी स्वाध्याय सघो ने कार्य करना आरम्भ किया है । इनका और विकास होना चाहिए । स्वाध्याय सघ चाहे जितने प्रारम्भ हो लेकिन उनमे आपस मे प्रेम सम्बन्ध हो, ईर्ष्या एव द्वेष की भावना न हो । यदि स्वाध्याय को विकसित करने वाली सस्थाओ मे भी आपस मे फूट होगी, द्वेष होगा तो वे भला क्या कर सकेगी ? यहाँ एक बात आवश्यक है कि स्वाध्याय संघ यदि पर्युषण पर्व मे स्वाध्यायियो को बाहर भेजकर व्याख्यान की व्यावस्था तक ही अपने कर्तव्य को सीमित कर देते है तो यह उचित नही है । इसके आगे भी इनका दायित्व है । वे विभिन्न स्थानो पर योग्य स्वाध्यायी तैयार करें, गॉव-गॉव व नगर-नगर मे नियमित स्वाध्याय की प्रवृत्ति को प्रोत्साहित करे ।

3. स्वाध्यायी सदस्य का दायित्व

विभिन्न स्वाध्याय सघ के सदस्यो को भी अपने कर्तव्य को समझना चाहिये तथा उसे पालना चाहिये । स्वाध्याय संघ की सदस्यता का फार्म भर देने मात्र से कार्य नही चलेगा । कभी-कभी ऐसा भी सुनने मे आता है कि कुछ स्वाध्यायी केवल पर्युषण पर्व के दिनो मे बाहर जाकर सेवा दे देते है, लेकिन अन्य समय मे स्वाध्याय नही करते, सामायिक नही करते । यदि ऐसा है तो उचित नही है । स्वाध्यायी सदस्य सामान्य गृहस्थ से उच्च श्रेणी का होना चाहिए । उसका जीवन सामान्य गृहस्थ से अधिक अच्छा बनना ही चाहिए । स्वाध्यायी सदस्यो का कर्त्तव्य है कि वे प्रतिदिन नियमित रूप से स्वाध्याय, सामायिक आदि करे । दुकानदार वही कहलाता है जो अवकाश के दिन के अलावा सामान्यतया प्रतिदिन दुकान पर जाता है । कर्मचारी वही कहलाता है जो अवकाश के अलावा सामान्यतया नियमित कार्यालय मे अपना कार्य करता है । फिर जो स्वाध्यायी है उन्हे तो नियमित स्वाध्याय आवश्यक है । जैसे हम भोजन करना शरीर के लिए आवश्यक समझते है वैसे ही आत्मा के लिए स्वाध्याय करना आवश्यक है ।

स्वाध्यायी का जीवन बोले-

स्वाध्यायी को यह प्रयत्न करना चाहिए कि उसका जीवन प्रामाणिक एव धर्म प्रधान तथा आचरण सम्यक् हो । हॉ, यह कार्य एक दिन में नही हो सकता, फिर भी हमारा कर्त्तव्य है कि शनैः शनैः जीवन में परिवर्तन लावें, जीवन को उन्नत वनावे । हमारा जीवन ऐसा हो जिसे देखकर यह कहा जा सके कि ये स्वाध्यायी हैं । स्वाध्यायी का जीवन अपने आप वोले तो लक्ष्य की पूर्ण प्राप्ति सम्भव है । स्वाध्यायी वनने के वाद भी जीवन मे छल-कपट, मायाचार वना रहे, अप्रमाणिकता वनी रहे तो फिर क्या स्वाध्याय किया ? ऐसा कभी संभव नही है कि भोजन करने पर भूख न मिटे । यदि भोजन करने पर भी भूख नहीं मिटे तो समझना चाहिए कि कोई भयंकर रोग है, मूल मे कही भूल है । इसी प्रकार स्वाध्याय करने से यदि जीवन नही बदला तो स्वयं का अनुसधान करना चाहिए कि जीवनमे सुधार क्यो नही हुआ ।

स्वाध्यायी का दायित्व महान है-

आप विचार करे कि आप कितना महान कार्य कर रहे हैं । स्वय के अध्ययन के साथ-साथ समाज की बहुत बडी सेवा का भार आपके जिम्मे है । यह बहुत उपकार का कार्य है । स्वाध्यायी सदस्य सुदूर क्षेत्रो मे जाकर, सन्तो की पहुँच से बाहर जाकर, धर्म का प्रचार करते हैं, यह एक महान कार्य है । सन्त-सतियों की सख्या बहुत कम है, तथा क्षेत्र बहुत अधिक है । इसलिए सभी स्थानो पर चातुर्मास नहीं हो सकते है । साथ ही ऐसे कई शहर, गॉव एवं क्षेत्र है जहॉ पर सन्त-सती अपनी मर्यादाओ का पालन करते हुए पहुँच नही सकते या वहॉ पर रह नहीं सकते । ऐसे सभी स्थानों पर ये स्वाध्यायी सदस्य पर्युषण पर्व के पावन दिनो मे अपनी अमूल्य सेवाएँ देते है, वहॉ के निवासियो को भगवान की वाणी सुनाते हैं, जिनवाणी का अमृत पिलाते है । उनके जाने से उन स्थानो पर धर्म की जागृति होती है, धर्म का प्रचार-प्रसार होता है,

भूले-भटके प्राणी पुनः जिन-मार्ग का अनुसरण करते हैं । इसलिए स्वाध्यायी सदस्यों का यह धर्म-दान है ।

मैं कहना चाहता हूँ कि स्वाध्यायियों पर बहुत बड़ा उत्तरदायित्व है, इसलिए आप उसे पूर्ण सजगता के साथ निभावें । स्वाध्याय के द्वारा आगमों के मर्म को समझें तथा जीवन को प्रामाणिक एवं उज्ज्वल बनाकर समाज में अपना आदर्श स्थापित करें । स्वाध्याय संघों द्वारा समय-समय पर प्रसारित नियमों का पालन करें । इससे आपका भी कल्याण है और समाज का भी ।

वीर संघ- जिन-जिन स्वाध्यायियों का जीवन निवृत्ति, स्वाध्याय-साधना एवं सेवा प्रधान है, वे वीर संघ के सदस्य बन सकते हैं । वीर संघ गृहस्थ जीवन में रहते हुए भी जीवन को त्यागमय बनाने की प्रेरणा देने वाली संस्था है । पूज्य जवाहराचार्यश्री युगपुरुष थे । उन्होंने अनुभव किया कि धर्म प्रचार का कार्य भार केवल सन्तों पर ही रह गया है तथा सन्तो की अपनी मर्यादाएँ हैं । इसलिए वे चाहते थे कि श्रावकों एव साधुओं के बीच एक कडी ऐसी हो जो समाज में धर्म-प्रचार का कार्य कर सके, जिनका जीवन उत्तम तथा निवृत्तिमय हो ताकि सन्त समुदाय निर्दोष सयम की पालना कर सके, उन्हें मर्यादा से स्खलित होने की आवश्यकता ही न रहे । यह कडी सद्गृहस्थो एवं सुश्रावको की हो । यद्यपि उस समय उनका यह सपना साकार नही हो सका । 'वीर सघ' योजना उसी का एक प्रयोग है । उस दिशा मे एक कदम है । समता प्रचार सघ भी उसी की एक कडी है ।

समता प्रचार सघ एव वीर संघ की ये योजनाएँ आप लोगों पर आधारित है । इसलिए आपको इन संघों की सदस्यता के रूप मे भगवान महावीर के सन्देश को घर-घर पहुँचाने का प्रयत्न करना चाहिए । भगवान महावीर की केवल जय बोलने से काम नही चलेगा । पूज्य जवाहराचार्यजी म. एक दृष्टान्त सुनाया करते थे ।

किसी गॉव मे सेठ मोतीलालजी रहते थे । उनके ए

और एक छोटी दो पत्नियॉ थी । बडी पत्नि सेठजी के नाम की माला फिराया करती थी ।

एक बार सेठ मोतीलालजी कही बाहर से आए । ज्येष्ठ का महिना था, भीषण गर्मी और दोपहर का समय था । मोतीलालजी गर्मी एवं यात्रा की थकान से हैरान हो गए थे । प्यास के मारे प्राण निकल रहे थे । घर के दरवाजे पर आते ही सेठजी ने आवाज लगाई- 'मेरा गला सूख रहा है, जल्दी पानी पिलाओ ।' ये शब्द दोनों पत्नियो ने सुने । बडी पत्नि हाथ मे बडे मनकों की एक माला लेकर सेठ मोतीलालजी के नाम की माला फिरा रही थी । सेठजी की आवाज सुनते ही उसने माला के शब्दो का उच्चारण तेज कर दिया । यद्यपि वह दरवाजे के पास ही बैठी थी । सेठजी को गर्मी से घबराते हुए भी देखा, लेकिन पानी लाने के लिए खडी नही हुई । सेठजी मुँह से बोलने की स्थिति में भी नही थे । इसलिए बडी पत्नि को हाथ से पानी पिलाने का इशारा भी किया ।

बडी पत्नि ने उत्तर दिया- 'आप विचार नही करते कि मै क्या कर रही हूँ ? मै आपके नाम की ही तो माला फिरा रही हूँ । आप मेरी माला मे क्यो बाधा उत्पन्न करते है ? अन्दर आकर पानी पी क्यो नही लेते ?' बडी पत्नि यह बात कह ही रही थी कि इतने में छोटी पत्नि ने तत्काल उठकर ठण्डे पानी का लोटा भरकर सेठजी के सामने प्रस्तुत कर दिया । सेठजी ने पानी पीकर अत्यन्त सुख एव शान्ति का अनुभव किया ।

हम सब चिन्तन करें कि सेठ मोतीलालजी दोनो पत्नियो मे से किस पर अधिक प्रसन्न होंगे ? स्पष्ट है कि छोटी पत्नी ही उन्हे अधिक प्रिय होगी । आपसे भी यही कहना है कि भगवान् महावीर की मात्र जय बोलने से कार्य चलने वाला नही है । उनके उपदेशों की पालना करना, उपदेशो को जन-जन तक पहुँचाने का प्रयत्न करना होगा, तब ही आप भगवान् महावीर के सच्चे भक्त कहलायेगे ।

अन्त में यही कहना है कि हम सभी अपनी-अपनी शक्ति एव अनुकूलता के अनुसार नियमित रूप से स्वाध्याय करे । कवि भी प्रार्थना की कडियों मे यही कहता है कि यह अपूर्व अवसर प्राप्त हुआ है जिसे सफल करें ।

नरत्वेऽपि पशुयंते, मिथ्यात्व ग्रस्तचेतस: ।
पशुत्वेपि नरायन्ते, सम्यक्त्व ग्रस्तचेतना: ॥

भावार्थ- मिथ्यादृष्टि जीव मनुष्य होकर भी पशु के समान है तथा सम्यक्त्व से विभूषित पशु भी मनुष्य के समान है ।

हस्ते पात्रं दधानाश्च, तुण्डे वस्त्रस्य धारका: ।
मलिनान्येव वासासि, धारयन्त्यल्पभाषिण: ॥

भावार्थ- हाथ मे पात्र, मुख पर वस्त्र धारण करने वाले, शरीर पर मलिन वस्त्र धारण करने वाले और थोडा बोलने वाले जैन मुनि होते हैं ।

दर्शन वर्त्म वीराणां, सुरासुरनमस्कृत: ।
नीति त्रय कर्ता यो, युगादौ प्रथमो जिन: ॥

भावार्थ- वीर पुरुषो को मार्ग बतलाने वाले, देवों और दानवो द्वारा नमस्कार किये हुए, युग की आदि मे तीन प्रकार की नीतिके स्थापन्नकर्ता पहले जिन (ऋषभदेव) हुए।

ॐ त्रैलोक्य प्रतिष्ठितानां, चतुर्विंशति तीर्थंकराणाम् ।
ऋषभादि वर्द्धमानान्तानां, सिद्धानां शरणं प्रपद्ये ॥

भावार्थ- ऋषभदेव से वर्द्धमान पर्यन्त जो चौबीस तीर्थंकर तीन लोक मे प्रतिष्ठित है ऐसे सिद्धो की मै शरण ग्रहण करता हूँ ।

कषाय-विजय

आत्मा का विभाव परिणाम, विपरीत परिणति कषाय है। कपाय से आत्मा विकृत होती है। क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, द्वेष ये कषाय हैं। इनसे आत्मा स्वरुप का त्यागकर पथभ्रष्ट होती है। कषाय से आत्मा का पतन होता है। अनादिकाल से आत्मा के संसार परिभ्रमण का मूल कारण कषाय है। अतः इसका त्याग कर मोक्ष मार्ग पर अग्रसर होना चाहिये।

सुज्ञानी जीवा भजले रे जिन इकवीसमो रे ॥
भजन किया भव-भावना दुष्कृत, दु:ख दुर्भाग्य मिट जावे ।
काम क्रोध मद मत्सर तृष्णा, दुर्गति निकट न आवे रे ॥ सु.

वर्तमान अवसर्पिणी काल के 21 वे तीर्थङ्कर भगवान् नेमिनाथ की प्रार्थना की कुछ कडियो का उच्चारण किया गया है । भक्त कवि विनयचन्दजी स्वय को सम्बोधित करते हुए ससारी जीवो को प्रभु भजन करने की प्रेरणा देते है । वे कहते है कि है सुज्ञानी जीव ! इक्कीसवे तीर्थङ्कर भगवान् नेमिनाथ का भजन कर ले । उन्होंने जीव के सुज्ञानी विशेषण लगाया है । वास्तव मे जो सुज्ञानी होगा, जिसका ज्ञान निर्मल होगा, वही वीतराग प्रभु की सच्ची प्रार्थना कर सकेगा । भगवान् के भजन में अपार शक्ति है । कवि कहता है कि प्रभु का भजन करने से भव-भवान्तर के कष्ट दूर हो जाते हैं, दुर्भाग्य सौभाग्य मे बदल जाता है । दु:ख के मूल कारण- क्रोध, मान, माया, लोभ, काम, मत्सर आदि है और प्रभु की भक्ति करने से ये दुर्गुण आत्मा से अलग हो जाते है, दूर हो जाते है ।

कषाय–

राग-द्वेष, कषाय आदि आत्मा के प्रमुख शत्रु है, मोक्ष मे बाधक है । इसलिए इस विषय को ध्यान से समझने का प्रसग है ।

रागो य दोसो वि य कम्म वीयं,
कम्म च मोहप्प भवं वयंति ।
कम्म च जाइ मरणस्स मूलं,
दुक्खं च जाइ मरणं दयंति ॥

(उत्तराध्ययन सूत्र अ 32 गा 7)

अर्थात् राग-द्वेष कर्म के मूल कारण है और कर्म मोह से उत्पन्न होता है । कर्म जन्म-मृत्यु का मूल हेतु है और जन्म-मृत्यु ही दु:ख है ।

कषाय का अर्थ-

कपाय का सामान्य अर्थ है, आत्मा की विभाव दशा, आत्मा की विपरीत परिणति । कप=संसार की, तथा आय=वृद्धि । अर्थात् जिससे संसार की अभिवृद्धि हो, जिससे आत्मा का पतन हो, आत्मा अपने स्वभाव को छोडकर विभाव की दशा में परिणमन करे, उसे कपाय कहते है । जिस प्रकार पीतल के पात्र में रखा हुआ दही विकृत हो जाता है, विपाक्त हो जाता है, अपना स्वभाव परिवर्तित कर देता है, उसी प्रकार जिनके संयोग से यह आत्मा अपने स्वभाव का त्याग कर विभाव दशा मे परिणमन करे, नरकादि चतुर्गति मे परिभ्रमण करे, आत्मा के निज गुण नष्ट हों तथा मुक्ति को न प्राप्त कर सके उसे कषाय कहते हैं । अनादिकाल से आत्मा को इन कषायों ने दबोच रखा है ।

कषाय के भेद-

कषाय के मुख्य चार भेद है- 1 क्रोध 2 मान 3 माया 4. लोभ । प्रकारान्तर से कषाय के 16 भेद है तथा 25 भेद भी है । उपरोक्त चारो कषायों के चार-चार भेद होने से 16 भेद भी कहे गये है ।

1 अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माय', लोभ ।

2. अप्रत्याख्यानी क्रोध, मान, माया, लोभ ।

3 प्रत्याख्यानी क्रोध, मान, माया, लोभ ।

4 सज्ज्वलन क्रोध, मान, माया, लोभ ।

इस प्रकार 16 भेद हुए । नव प्रकार के नौ कषायो को जोडने पर 25 भेद हो जाते है । नौ कषाय निम्न है-

1 हास्य 2 भय 3 शौक 4 जुगुप्सा 5 रति 6 अरति 7 स्त्री वेद 8 पुरुष वेद 9 नपुसक वेद । ये कषाय की अभिवृद्धि मे सहायक है ।

क्रोध-

कषाय का प्रथम भेद क्रोध है । क्रोध के कारण आत्मा आवेश मे आ जाती है, अशान्त एवं तप्त हो जाती है तथा क्रूर स्वभाव वाली बन जाती है । क्रोधी व्यक्ति अपने हिताहित का भान भूल जाता है, विवेक खो बैठता है तथा स्व-पर का नाश करने को तैयार हो जाता है । क्रोध भयङ्कर अग्नि है । जिसमे क्रोधी स्वयं भी जलता है तथा दूसरों को भी जलाता है । कहा है-

'संपज्जलिया घोरा अग्गी चिट्ठई गोयमा ।'

(उत्तराध्ययन अ 23)

अर्थात् हे गौतम ! हृदय मे जलती हुई अग्नि विद्यमान है । यह अग्नि क्या है ? यह क्रोध रूपी अग्नि है । इस अग्नि के प्रभाव से आत्मा के सद्गुण- समता, क्षमा, दया, सन्तोष आदि जलकर नष्ट हो जाते है । क्रोध से प्रेम नष्ट हो जाता है । कहा भी गया है-

'कोहो पीयं पणासेह'

अर्थात् क्रोध प्रीति का नाश करता है ।

(दशवैकालिक सूत्र)

क्रोधी व्यक्ति विवेक खो देता है तथा क्रोध के आवेश मे अपनी प्रिय वस्तु को भी नष्ट कर देता है, यहाँ तक कि आत्महत्या भी कर डालता है । क्रोध में व्यक्ति अन्धा हो जाता है ।

क्रोध विष है-

क्रोध को विष की उपमा दी गई है । क्रोध के समय व्यक्ति अपना सन्तुलन खो बैठता है । पाश्चात्य विद्वान् सोल का कथन है कि-

Anger blows out the lamp of mind

अर्थात् क्रोध मस्तिष्क के दीपक को बुझा देता है । जब मन मस्तिष्क ही कार्य नही करता तो उसका स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पडता है । क्रोध के कारण मनःस्थिति विकृति हो जाती है, जिससे

भोजन की पाचन क्रिया ठीक नही होती, रस ठीक नही वनता और स्वास्थ्य गिर जाता है । कई प्रकार के रोग हो जाते है ।

क्रोध के समय ऑखें एवं मुँह लाल हो जाता ह। क्रोधी व्यक्ति का मुँह खुल जाता है और ऑखे वन्द हो जाती है । अग्रेजी मे कहा है- An angery man shuts his eyes and opens his mouth ये सब क्रोध के परिणाम है । कवि ने कहा है-

गुस्से से तन दुर्वल वनता, लोही विपमय बन जाता ।
तेज चला जाता ऑखो का, ज्ञान रहित मन बन जाता ॥
अकल न जाने कहॉ जाती है, ज्ञानी और गवार की ।
सुनलो जैनों कान लगाकर, वाणी तारणहार की ॥

इस प्रकार क्रोध का जीवन पर विष के समान भयङ्कर प्रभाव होता है । वैज्ञानिक परीक्षण से ज्ञात हुआ है कि यदि माता क्रोध के आवेश मे अपने बच्चे को स्तनपान कराती है तो बच्चे के स्वास्थ्य पर बुरा असर पडता है । क्योंकि शरीर मे विष व्याप्त होने की सम्भावना है ।

क्रोध चाण्डाल के रूप में-

ज्ञानियो ने क्रोध को चाण्डाल कहा है । क्रोध के आवेश मे मानव, दानव बन जाता है । कुलहीन, चाण्डाल की तरह व्यवहार करता है । किसी कवि ने भी कहा है-

क्रोधी महा चाण्डाल, ऑख्या करदे राती ।
क्रोधी महा चाण्डाल, थर-थर ध्रुजावे छाती ॥
क्रोधी महा चाण्डाल, थाली गणे न कुण्डो ।
क्रोधी महा चाण्डाल, जाय नरक मे उण्डो ॥

एक बार एक पण्डितजी नदी पर स्नान करके किनारे पर खडे-खडे प्रभु का ध्यान कर रहे थे । थोडी दूर पर एक चाण्डाल कुल का व्यक्ति भी नहा रहा था । असावधानी के कारण पानी के दो-चार छीटे पण्डितजी के लग गये । पण्डितजी का ध्यान भग हो

गया और उन्हे क्रोध आया । आव देखा न ताव, पण्डितजी ने चाण्डाल को पीटना आरम्भ कर दिया । पीटने के बाद पण्डितजी को ध्यान आया कि वे चाण्डाल के स्पर्श से अपवित्र हो गये है । इसलिए उन्होने पुनः नदी में स्नान किया ।

पण्डितजी के नहाने के बाद चाण्डाल ने भी पुनः स्नान किया । पण्डितजी ने चाण्डाल को ललकारा कि तूने पुनः स्नान क्यो किया । क्या मेरे स्पर्श से अपवित्र हो गया । चाण्डाल ने नम्रता से कहा- पण्डितजी ! क्षमा करे, आप तो पण्डित हैं, पवित्र है । लेकिन जब आपने मुझे पीटा तब क्रोध रूपी महा चाण्डाल आपमे प्रवेश कर गया जिससे मै अपवित्र हो गया, अतः पुनः स्नान किया ।

क्रोध बुद्धिमान को बुद्धिहीन बना देता है, कुलवान को कुलहीन बना देता है, भले को बुरा बना देता है । अतः क्रोध को चाण्डाल कहा है । क्रोध दुर्गति का कारण है ।

एक बार दो भाईयो मे झगडा हो गया । दोनो अलग-अलग रहने लगे । सयोग से बडे भाई की आर्थिक स्थिति गिर गई तथा छोटे भाई की स्थिति अच्छी हो गई । इनकी माता छोटे भाई के साथ रहती थी ।

बडे भाई की स्थिति ऐसी हो गई कि भोजन के भी लाले पडने लगे । परिवार मे पॉच सदस्य थे- दोनों पति-पत्नी एवं तीन बच्चे । बडी कठिनाई से जीवन यापन करते । पति-पत्नी को कभी-कभी भूखा ही सोना पडता । लेकिन छोटे भाई के मन में बडे भाई के प्रति सहानुभूति का अभाव था ।

एक दिन का प्रसंग था कि घर मे भोजन सामग्री बिल्कुल नही रही । पति-पत्नी ने रात को भी भोजन नही किया । प्रातः होते ही पति भोजन की सामग्री के लिए घर से निकल गया । सोचा- कही थोडा उधार लाकर बच्चो को तो खिलाया ही जावे । दिन

भोजन की पाचन क्रिया ठीक नही होती, रस ठीक नही बनता और स्वास्थ्य गिर जाता है । कई प्रकार के रोग हो जाते हैं ।

क्रोध के समय ऑखे एव मुँह लाल हो जाता ह। क्रोधी व्यक्ति का मुँह खुल जाता है और ऑखे बन्द हो जाती है । अंग्रेजी मे कहा है- An angery man shuts his eyes and opens his mouth ये सब क्रोध के परिणाम है । कवि ने कहा है-

गुस्से से तन दुर्बल बनता, लोही विषमय बन जाता ।
तेज चला जाता ऑखो का, ज्ञान रहित मन बन जाता ॥
अकल न जाने कहॉ जाती है, ज्ञानी और गवार की ।
सुनलो जैनो कान लगाकर, वाणी तारणहार की ॥

इस प्रकार क्रोध का जीवन पर विष के समान भयङ्कर प्रभाव होता है । वैज्ञानिक परीक्षण से ज्ञात हुआ है कि यदि माता क्रोध के आवेश में अपने बच्चे को स्तनपान कराती है तो बच्चे के स्वास्थ्य पर बुरा असर पडता है । क्योकि शरीर मे विष व्याप्त होने की सम्भावना है ।

क्रोध चाण्डाल के रूप में-

ज्ञानियो ने क्रोध को चाण्डाल कहा है । क्रोध के आवेश मे मानव, दानव बन जाता है । कुलहीन, चाण्डाल की तरह व्यवहार करता है । किसी कवि ने भी कहा है-

क्रोधी महा चाण्डाल, ऑख्या करदे राती ।
क्रोधी महा चाण्डाल, थर-थर ध्रुजावे छाती ॥
क्रोधी महा चाण्डाल, थाली गणे न कुण्डो ।
क्रोधी महा चाण्डाल, जाय नरक मे उण्डो ॥

एक बार एक पण्डितजी नदी पर स्नान करके किनारे पर खडे-खडे प्रभु का ध्यान कर रहे थे । थोडी दूर पर एक चाण्डाल कुल का व्यक्ति भी नहा रहा था । असावधानी के कारण पानी के दो-चार छीटे पण्डितजी के लग गये । पण्डितजी का ध्यान भग हो

गया और उन्हे क्रोध आया । आव देखा न ताव, पण्डितजी ने चाण्डाल को पीटना आरम्भ कर दिया । पीटने के बाद पण्डितजी को ध्यान आया कि वे चाण्डाल के स्पर्श से अपवित्र हो गये है । इसलिए उन्होने पुनः नदी मे स्नान किया ।

पण्डितजी के नहाने के बाद चाण्डाल ने भी पुन· स्नान किया । पण्डितजी ने चाण्डाल को ललकारा कि तूने पुनः स्नान क्यो किया । क्या मेरे स्पर्श से अपवित्र हो गया । चाण्डाल ने नम्रता से कहा- पण्डितजी ! क्षमा करे, आप तो पण्डित है, पवित्र है । लेकिन जब आपने मुझे पीटा तब क्रोध रूपी महा चाण्डाल आपमे प्रवेश कर गया जिससे मै अपवित्र हो गया, अतः पुनः स्नान किया ।

क्रोध बुद्धिमान को बुद्धिहीन बना देता है, कुलवान को कुलहीन बना देता है, भले को बुरा बना देता है । अतः क्रोध को चाण्डाल कहा है । क्रोध दुर्गति का कारण है ।

एक बार दो भाईयो मे झगडा हो गया । दोनो अलग-अलग रहने लगे । सयोग से बडे भाई की आर्थिक स्थिति गिर गई तथा छोटे भाई की स्थिति अच्छी हो गई । इनकी माता छोटे भाई के साथ रहती थी ।

बडे भाई की स्थिति ऐसी हो गई कि भोजन के भी लाले पडने लगे । परिवार मे पॉच सदस्य थे- दोनो पति-पत्नी एव तीन बच्चे । बडी कठिनाई से जीवन यापन करते । पति-पत्नी को कभी-कभी भूखा ही सोना पडता । लेकिन छोटे भाई के मन मे बडे भाई के प्रति सहानुभूति का अभाव था ।

एक दिन का प्रसंग था कि घर मे भोजन सामग्री बिल्कुल नही रही । पति-पत्नी ने रात को भी भोजन नही किया । प्रातः होते ही पति भोजन की सामग्री के लिए घर से निकल गया । सोचा- कही थोडा उधार लाकर बच्चो को तो खिलाया ही जावे । ।

चढता गया पर कही कुछ व्यवस्था नही बन पायी । उधर पति प्रयत्नशील था इधर पत्नी प्रतीक्षा में थी कि पतिदेव कुछ ले आवे तो भोजन बनाया जावे । लेकिन नन्हे-मुन्ने बच्चे भूख से रोते बिलखने लगे । माँ का हृदय पसीज गया और मन मार कर अपने देवर के घर पहुँच गई । देवर घर पर नहीं थे अतः सासूजी से सारी बात कह दी । सास को दया आ गई । उसने थोडा सा आटा बडे पुत्र की पत्नी को दे दिया । छोटी बहू को यह बात अच्छी नही लगी । आटा लेकर बडे भाई की पत्नी घर आयी तथा भोजन की तैयारी की । कुल चार-पाँच रोटी का आटा था अतः विचार किया बच्चो को तो कुछ दे दिया जाय । बच्चे निरन्तर रोटी की माग कर रहे थे ।

उधर थोडी देर बाद छोटा भाई जब घर पर आया तो उसकी पत्नी ने सासूजी द्वारा जेठानी को आटा देने की सारी बात सुनायी ।

छोटे भाई को बहुत क्रोध आया । उसने अपनी माँ को भी भला-बुरा कहा । माँ ने समझाया कि तेरा ही तो भाई है । क्रोध मे हित की बात भी बुरी लगती है, अतः माँ के समझाने पर उसका प्रभाव विपरीत हुआ और आवेश मे वह बडे भाई के घर पहुँच गया।

बडे भाई के घर पर दृश्य कुछ विचित्र ही था । बडे भाई की पत्नी रोटियाँ बना रही थी । एक रोटी सिक गई थी जिसे एक थाली मे लेकर तीनो बच्चे खाने के लिए ठण्डी कर रहे थे, दूसरी रोटी तवे में सिक रही थी, तीसरी चकले पर तैयार हो रही थी तथा एक-दो रोटी का गीला आटा परात में था । बच्चो को लम्बी प्रतीक्षा के बाद रोटी के दर्शन हुए तो वे प्रसन्न हुए ।

छोटे भाई ने आव देखा न ताव, घर मे घुस कर थाली की रोटी बच्चो के मुँह से छीन ली, तवे व चकले की रोटी भी उठा ली तथा परात का गीला आटा भी उठा लाया और घर के बाहर आकर कुत्तो को डाल दिया । बडे भाई की पत्नी अचानक यह

दृश्य देखकर सहम गई । छोटा भाई यह कहता हुआ चला गया कि इन रोटियो को कुत्ते खा सकते हैं परन्तु मेरे भाई का परिवार नही खा सकता । गालियाँ देता हुआ क्रोध मे वह वापस अपने घर पहुँचा ।

बच्चे मुँह का कोर छिन जाने से तथा भूख से व्याकुल होने से रो पडे । बच्चे कहने लगे कि- चाचाजी हमें जोरो से भूख लग रही है, हमें रोटी खाने दो । पर चाचाजी तो क्रोध रूपी चाण्डाल के वश अन्धे हो गये थे । बच्चे रोने-चिल्लाने लगे । माँ (बडे भाई की पत्नी) यह दृश्य देखकर फूट-फूट कर रोने लगी ।

थोडी देर मे बडे भाई की पत्नी को कुछ विचार उत्पन्न हुआ । उसने तीनों बच्चो को साथ लिया तथा उन्हें लेकर गाँव के बाहर चल दी । बच्चो के पूछने पर उसने कहा कि चलो रोटी खिलाती हूँ । तीनो बच्चो को लेकर यह अभागिन माता गाँव के बाहर, कुए पर गई । बच्चो को कुए पर बिठाया तथा उनसे कहा कि मै कुए मे से रोटी लाती हूँ तुम यही बैठना और वह कुए मे कूद जाती है ।

उधर काफी दौड धूप करने पर भी बडे भाई के कुछ हाथ न लगा तो वह निराश होकर घर लौटा । घर खुला पडा था और अन्दर कोई नही था । आस-पडौस मे पूछने पर छोटे भाई के दुर्व्यवहार की जानकारी हुई तथा पत्नी के तीनो बच्चो के साथ गाँव के बाहर जाने की जानकारी मिली । वह भी शीघ्रता से उनकी खोज मे उसी दिशा मे चल पडा । खोजते हुए कुए पर पहुँचा तो बाहर बच्चो को रोते हुए बैठे पाया । बच्चो को माँ के लिए पूछा । बडे बच्चे ने कहा कि माँ कुए मे से रोटी लेने गई है सो अभी तक आई नहीं है । बडा भाई सारी स्थिति समझ गया । उससे भी न रहा गया । वह भी अपने तीनो पुत्रो को लेकर कुए मे कूद गया । पाँचो प्राणियो ने प्राण ८ दिये ।

यह बहुत मार्मिक उदाहरण है । आप सबको इस उदाहरण के माध्यम से यह कहना है कि क्रोध के आवेश मे मानव, दानव बन जाता है । छोटे भाई के क्रोध के कारण ही यह स्थिति बनी । गॉव के सभी लोगो ने छोटे भाई को बहुत धिक्कारा । इस दुर्घटना से छोटे भाई का हृदय भी बदल (दहल) गया, उसे अत्यन्त दु:ख हुआ । यदि छोटा भाई क्रोध के आवेश मे न आता तो ऐसी स्थिति क्यो बनती ? शास्त्रो मे भी कहा है कि क्रोध प्रीति का नाश करता है ।

क्रोध क्यों आता है ?

क्या आपने कभी विचार किया है कि दूसरो पर क्रोध क्यो आता है ? कुछ और कारण भी हो सकता है, परन्तु मुख्य कारण यह है कि व्यक्ति दूसरो के दोष देखता है, उनकी त्रुटियॉ देखता, उससे क्रोध उत्पन्न होता है । यदि व्यक्ति अपने दोषो के देखना प्रारम्भ कर दे, क्रोध के प्रसंग पर क्षमा धारण करले, तो क्रोध रूक सकता है । समझ लीजिये- आपका नौकर खाना बना रहा है, रसोई घर मे तेल का डिब्बा नीचे फर्श पर एक ओर रखा हुआ है । आप किसी कार्य से शीघ्रता से रसोई घर में गये और असावधानी के कारण डिब्बे को ठोकर लग गई और तेल रसोई घर मे फैल गया । आपको नौकर पर क्रोध आ जावेगा । आप कहेगे- काम करना नही आता, डिब्बा यहॉ रख दिया । यह क्या डिब्बा रखने का स्थान है ? आदि । लेकिन कभी ऐसा अवसर आवे कि आपने पेन मे स्याही भरी और स्याही की दवात कमरे के बीचोबीच मार्ग में छोड दी । संयोग से वही नौकर कमरे में आपसे कुछ पूछने आवे और उसके पैर से दवात को ठोकर लग जावे, स्याही फर्श पर फैल जावे तो आप क्या करेगे ? मै सोचता हूँ कि आपको नौकर पर क्रोध आ जावेगा तथा आप कहेगे- अन्धो की तरह चलता है, दीखता नही है कि दवात पडी है, मूर्ख कही का । आदि ।

अपना दोष ढूँढें–

अब आप चिन्तन करे, विचार करे कि आपका उक्त व्यावहार उचित है । दोनो परिस्थितियो मे आपने अपना दोष नौकर पर मढने का प्रयत्न किया । पहली परिस्थिति मे आप स्वय बिना देखे असावधानी से चल रहे थे, फिर भी अपना दोष दिखाई नही दिया । दूसरी परिस्थिति मे आपने दवात मार्ग में रखी है जो अनुचित है । लेकिन आप सोचते है कि आप सेठ है और नौकर तो आपका बेचारा नौकर ही है । यदि नौकर के स्थान पर आपका पुत्र या परिवार का अन्य सदस्य होता तो आप दोषी उसी को बताते । हो सकता है, मोहवश क्रोध कम आवे ।

तात्पर्य यह है कि यदि व्यक्ति दूसरो के दोष देखने के बजाय स्वय के दोष देखे तो सम्भवत: क्रोध उत्पन्न ही न हो । क्रोध का प्रसग उपस्थित होने पर क्षमा धारण करे तो क्रोध से बचा जा सकता है । शान्ति क्रोध का अमोघ उपचार है । तेल के डिब्बे को ठोकर लगने पर यदि आप यह सोचते है कि देखकर चलना चाहिये, तो आपको क्रोध नहीं आयेगा ।

जैसी दृष्टि वैसी सृष्टि–

क्रोध से बचने के लिए दोष दृष्टि का त्याग कर गुण दृष्टि को अपनाया जावे । धर्मराज युधिष्ठिर और दुर्योधन मे सबसे बडा अन्तर दृष्टिकोण का था । धर्मराज सदैव स्वय की ओर देखते थे, अपने दोष ढूँढते थे, परन्तु दुर्योधन ठीक विपरीत प्रकृति का था ।

एक बार श्री कृष्ण ने युधिष्ठिर से नगर के बुरे लोगो की सूचि तैयार करने के लिए कहा और कुछ सप्ताह का समय दे दिया । दुर्योधन भी वहीं उपस्थित थे । उन्हे भले लोगो की सूचि तैयार करने को कहा गया ।

निश्चित अवधि की समाप्ति पर दोनो ही श्री कृष्ण के पास उपस्थित हुए । कृष्ण ने पहले दुर्योधन से भले व्यक्तियो की सूचि

प्रस्तुत करने को कहा तो दुर्योधन ने कहा- 'महाराज! आप कैसी बात करते है ? मैं तो बहुत फिरा, लेकिन मुझे तो ससार मे कही भी भले व्यक्ति नजर नहीं आये । जहाँ गया वहाँ गुण्डे, बदमाश, चोर, अत्याचारी ही दिखाई दिये । इसलिए मैंने यह सोचा कि दुनिया मे भले व्यक्ति नही है ।'

फिर कृष्ण ने युधिष्ठिर से अपनी सूचि प्रस्तुत करने को कहा । युधिष्ठिर ने कहा- 'महाराज ! दुनिया मे मुझ से बुरा व्यक्ति कोई नही है । मैंने आपके आदेशानुसार बुरे व्यक्ति खोजने का प्रयत्न किया और मुझसे उनकी तुलना की तो मुझे अनुभव हुआ कि ससार मे सभी भले व्यक्ति हैं । मुझसे सभी अधिक अच्छे हैं इसलिए मेरी सूचि रिक्त है ।

श्री कृष्ण ने कहा कि मुझे आप दोनो से ऐसी ही आशा थी । क्योकि जैसी दृष्टि वैसी सृष्टि । अच्छे व्यक्ति को सभी अच्छे ही दिखाई देते है । इसलिए अपने दोषों को और दूसरो के गुणो को देखना चाहिये । तात्पर्य यह है कि यदि क्रोध को छोडना है तो अपने दोष ढूँढे ।

क्रोध का वर्गीकरण-

क्रोध चार प्रकार का कहा गया है-

1. अनन्तानुबन्धी क्रोध

ऐसा भयङ्कर क्रोध, जो जीवन पर्यन्त बना रहे, वैर का रूप धारण कर लेवे, कभी समाप्त न हो । इससे अनन्त संसार की अभिवृद्धि होती है । यह आत्मा के सम्यक्त्व गुण को नष्ट कर देता है । जिस प्रकार पर्वत के फटने पर उसमे पडी हुई दरार कभी नही मिटती, उसी प्रकार यह क्रोध भी जीवन पर्यन्त समाप्त नही होता है ।

2. अप्रत्याख्यानी क्रोध

अनन्तानुबन्धी से यह क्रोध हल्का होता है । यह क्रोध एक

वर्ष तक रह सकता है । जिस प्रकार तालाब के सूख जाने पर उसमे पडी हुई दरार वर्षा होने पर मिट जाती है, उसी प्रकार महापुरुषो के उपदेश से, संवत्सरी महापर्व के आगमन पर ऐसा क्रोध नष्ट हो जाता है । इस क्रोध का स्वामी श्रावक-व्रत, त्याग प्रत्याख्यान आदि ग्रहण नही कर सकता ।

3. प्रत्याख्यानी क्रोध

यह क्रोध अप्रत्याख्यानी से भी हल्का होता है । जिस प्रकार बालू रेत मे खीची हुई लकीर हवा के तीव्र झोके से ही मिट जाती है, उसी प्रकार यह क्रोध भी साधारण प्रयास से नष्ट हो जाता है । यह क्रोध चार माह से अधिक नही ठहरता तथा साधुत्व गुण को प्रकट नही हाने देता ।

4. संज्ज्वलन क्रोध

यह सबसे मन्द क्रोध है । जिस प्रकार पानी मे खीची गई लकीर तत्काल मिट जाती है, वैसे ही यह क्रोध भी शीघ्र शान्त हो जाता है । यह क्रोध यथाख्यात् चारित्र, केवलज्ञान प्रकट होने मे बाधक है ।

क्रोध पर क्षमा से विजय प्राप्त की जा सकती है ।

'उवसमेण हणे कोहं'

(दशवैकालिक सूत्र 8/39)

अर्थात् उपशम- शान्त भाव यानि क्षमा से क्रोध नष्ट होता है । वैर से वैर नष्ट नही होता । खून का वस्त्र पानी मे धोने से स्वच्छ होता है, रक्त में धोने से नहीं ।

मान

कषाय का दूसरा भेद मान है । मान का अर्थ है- अहङ्कार, अभिमान, घमण्ड । मान करने वाला दूसरो को हीन समझता है । जाति, कुल, धर्म आदि का अभिमान करना, अपने आपको अधिक

श्रेष्ठ समझना मान है । मान व्यक्ति को मानवता से गिरा देता है । मान से विनय नष्ट हो जाता है । सूत्र मे कहा है-

'माणो विणय नासणो'

(दशवैकालिक सूत्र 8/39)

अर्थात् मान विनय का नाश करता है । विनय के अभाव मे आत्मा मे कोई सद्‌गुण प्रकट नहीं हो सकता ।

मान पतन का कारण है । जो अभिमान करता है वह गिरता है । सन्त कबीर ने मान को कुत्ते की उपमा दी है ।

मान बड़ाई जगत में, कूकर की पहचानि ।
प्रीत किये मुख चाटती, वैर किये तन हानि ॥

बाहुबलीजी का उदाहरण-

आज के इस युग मे प्रतिष्ठा की भूख बढ गई है । धन-दौलत, ज्ञान-चारित्र, जाति-कुल आदि का अभिमान किया जाता है । बाहुबलीजी ने अभिमान किया कि मै अपने छोटे भाईयो को वन्दन नमस्कार कैसे करूँ । तपस्या मे लीन हो गये । शरीर दुर्बल हो गया, कठोर साधना की, लेकिन मान के कारण मोह नष्ट नही हो रहा था, केवलज्ञान प्रकट नही हो रहा था । भगवान् ऋषभदेव ने केवलज्ञान से यह स्थिति जान ली और महासती ब्राह्मीजी एव सुन्दरीजी को बाहुबलीजी के पास समझाने के लिए भेजा । दोनो साध्वियॉ बाहुबलीजी की सांसारिक बहने थी । उन्होंने समझाया-

वीरा म्हारा, गज थकी नीचा उतरो रे ।
गज चढ्या केवल नही होसी, बन्धव म्हारा ॥
गज थकी हेठा उतरो रे ॥

उन्होने बाहुबली को सकेत दिया कि अभिमान रूपी हाथी की सवारी त्याग दो अन्यथा केवलज्ञान नही होगा । ज्योहि बाहुवली ने यह समझ लिया कि अभिमान त्याग कर मुझे अपने छोटे बन्धुओ

को, जो दीक्षा में मुझसे बडे है, वन्दन करने जाना है, उन्हे केवलज्ञान प्राप्त हो गया । अतः मान त्याग करना चाहिये । किसी कवि ने कहा है-

> मानी के सब शत्रु बनते, कोई मित्र नहीं बनता है ।
> कोई उसकी बात न माने, साथ न कोई देता है ॥
> फिर भी कहता हम चौडे, संकडी राह बाजार की ।
> छोड़ो क्रोध, मोह, मद, माया, गलियॉ नरक द्वार की ॥
>
> (हित की वात है)

मान के भेद-

क्रोध की तरह मान के भी चार भेद हैं ।

1. अनन्तानुबन्धी मान-

पत्थर के स्तम्भ की तरह कभी नहीं झुकने वाला अभिमान, जो टूट जावे पर झुके नहीं । यह भी जीवन पर्यन्त वना रहता है । ऐसे का सम्यक्त्व गुण प्रकट नहीं होता ।

2. अप्रत्याख्यानी मान-

हड्डी के स्तम्भ की तरह या हाथी दांत की तरह जो वहुत परिश्रम से एवं प्रयास द्वारा कुछ झुक सके, अभितान दूर हो सके वह अप्रत्याख्यानीमान ह । स्थिति, प्रभाव आदि अन्य वाते अप्रत्याख्यानी क्रोध के समान हैं ।

3. प्रत्याख्यानी मान-

वेत की लकडी के समान । थोडा सा प्रयास करने पर जो मान दूर हो जावे । अन्य वातें अप्रत्याख्यानी क्रोध के समान हैं ।

4. संज्वलन मान-

तिनके के समान जो वहुत आसानी से झुकाया अन्य वाते संज्वलन क्रोध के समान हैं ।

आठ प्रकार के मद–

मद या अभिमान निम्न आठ बातों का किया जाता है- 1. जाति मद 2. कुल मद 3. लाभ मद 4.ऐश्वर्य मद 5 बल मद 6 रूप मद 7. तप मद और 8. ज्ञान मद ।

उपरोक्त आठ प्रकार के मद में से जो व्यक्ति जिसका अभिमान करता है उसको आगामी भव मे उसकी ही कमी रहती है, हीनता प्राप्त होती है । जैसे जाति का मद करने से नीच जाति में जन्म होता है, यावत् ज्ञान का मद करने से ज्ञान की कमी रहती है ।

अतएव बुद्धिमान व्यक्ति मान का त्याग कर मुक्ति के मार्ग पर अग्रसर होता है । अभिमान पर विजय पाने के लिए जीवन मे मृदुता को अपनाएँ ।

'माणं मद्दवया जिणे'

(दशवैकालिक अ 8)

अर्थात् मान को मृदुता से जीते । दूसरे शब्दो मे यो कह सकते है कि मान त्यागने से जीवन मे सरलता प्राप्त होती है । गौतम स्वामी ने भगवान महावीर से पूछा-

'माण विजएणं भंते ! जीवे किं जणयइ ?'

अर्थात् हे भगवन् ! मान विजय से जीव को क्या लाभ है ?

भगवान महावीर ने कहा-

'माणं विजएणं मद्दवं जणयइ, माण वेयणिज्जं कम्मं न बंधई, पुव्व बद्धं च निज्जरेई ।'

अर्थात् मान पर विजय प्राप्त करने से मृदुता प्राप्त होती है, नवीन कर्मो का बन्ध नही होता तथा पूर्व वद्ध कर्मो की निर्जरा होती है ।

माया-

तीसरा कषाय माया है । छल, कपट, प्रपंच, धोखा आदि माया के अन्तर्गत आते हैं । माया से मित्रता नष्ट होती है ।

'माया मित्ताणि नासेई'

(दशवैकालिक अ 8)

माया करने वाले व्यक्ति का कोई विश्वास नही करता, सभी उसकी निन्दा करते है । कहा भी है- 'माया वशेन मनुजो जन निन्दनीयः' अर्थात् माया करने वाला व्यक्ति जन साधारण के लिए निन्दा का पात्र बनता है ।

माया करने वाले व्यक्ति के कथनी और करनी मे बहुत अन्तर होता है । वह कहता कुछ है और आचरण भिन्न होता है एव मन में भिन्न प्रकार के विचार होते है । इस प्रकार जीवन में वक्रता होती है । जहाॅ वक्रता है वहाॅ सम्यक्त्व गुण नही पाया जाता है । इसलिए मायावी मिथ्यादृष्टि होता है । शास्त्रकार का भी कहना है-

'माई मिच्छादिट्ठी अमाई समदिट्ठि'

अर्थात् मायावी मिथ्यादृष्टि होता है और माया रहित सम्यग्दृष्टि होता है । इस प्रकार माया दुर्गति का कारण है । मायावी व्यक्ति सदैव दूसरो को अपने माया जाल मे उलझाना चाहता है, दुसरो का अहित करता है, अपने स्वार्थ के कारण दूसरों को हानि पहुंचाना चाहता है; परन्तु वह स्वय का ही अहित करता है । मकडी जाल बुनकर अन्य जीवो को उसमे उलझाना चाहती है, परन्तु स्वय ही उसमे उलझकर प्राण दे देती है । कवि ने कहा है-

औरो के लिए जाल विछाता, मगर वही उसमे फॅसता ।
औरो के लिए खड्डा खोदे, मगर वही उसमे गिरता ।

सच कहता हूँ जग में माया, जननी दु:ख अपार की ।
सुनलो जैनो कान लगाकर, वाणी तारनहार की ।
छोडो क्रोध, मोह, मद, माया, गलियॉ नरक द्वार की ।

अत: माया दु:ख एवं दुर्गति का कारण है ।

माया के भेद-

क्रोध एव मान की तरह माया के भी चार भेद है-

1. अनन्तानुबन्धी माया-

बांस की जडो का टेढापन जिस प्रकार कभी भी समाप्त नही होता उसी प्रकार ऐसी माया कभी समाप्त नही होती । अन्य बाते क्रोध के समान है ।

2. अप्रत्याख्यानी माया-

गेडे की सींग की तरह जो बहुत परिश्रम से समाप्त हो अथवा जो अनन्तानुबन्धी से कम कपट युक्त हो, कम टेढी-मेढी हो लेकिन फिर भी बहुत मायामय हो ।

3. प्रत्याख्यानी माया-

चलते हुए बैल के मूत्रधारा से बनी रेखा की तरह जो कम टेढी-मेढी हो, अल्प कपट युक्त हो, आसानी से दूर हो जाती हो ।

4. संज्ज्वलन माया-

बास की छाल की तरह जो केवल गाठ के अलावा सीधी होती है, ऐसी अत्यन्त सूक्ष्म एव सरलता से दूर होने वाली हो । अन्य बाते क्रोध एव मान की तरह समझ ले ।

आजकल माया का भी अधिक प्रसार हो रहा है । लोग माया करके अपने आपको अधिक चतुर समझते है । एक असत्य को छिपाने के लिए कई असत्य बोल देते है । परन्तु यह अच्छी बात नही है । ऐसे व्यक्ति समाज के लिए घातक है, तथा उनका समाज मे कोई विश्वास नही करता । माया को सरलता के द्वारा जीता जा सकता है-

'नायं अज्जव भावेण'

(दशवैकालिक अ. ८/३९)

सरलता से उच्च नाम कर्म का बन्ध होता है तथा माया से तिर्यञ्च, स्त्री, नपुंसक आदि का बन्ध होता है ।

लोभ-

अन्तिम और सबसे प्रबल कषाय लोभ है । जहाँ क्रोध प्रीति का, मान विनय का और माया मित्रता का नाश करते हैं, वहाँ लोभ सभी सद्गुणों को नष्ट कर देता है ।

'लोहो सव्व विणासणो'

(दशवैकालिक ८/३८)

अर्थात् लोभ सभी गुणों का नाश करता है । लोभी व्यक्ति अपने स्वार्थ के वश दूसरों का बडा से बडा अहित करने को तत्पर हो जाता है । ऐसा व्यक्ति महान अत्याचारी होता है । उसमें सभी अवगुण आ जाते है । वह अपने कर्तव्य का, आत्म सम्मान का तथा दया एवं प्रेम का परित्याग कर देता है । किसी कवि ने कहा है-

पूज्य पिता से लडता लोभी, भाई की हत्या करता ।
केवल नश्वर धन के खातिर, दुनिया मे दगा करता ।
लोभ पाप का बाप, न करता परवाह अत्याचार की ।
सुनलो जैनो कान लगाकर, वाणी तारणहार की ।
छोडो क्रोध, लोभ, मद, माया, गलियाँ नरक द्वार की ।

(हित की बात है-2)

अतः लोभ सबसे भयङ्कर पाप है, तीव्र कषाय है । ज्ञानियों ने लोभ को पाप का बाप कहा है ।

लोभ पाप का बाप-

एक बार एक व्यक्ति विद्याभ्यास हेतु काशी (
गया । बडे-बडे विद्वानो के पास रहकर शास्त्रो का अ·

ज्ञान अर्जन किया एवं अनेक विषयों का अभ्यास किया । कई वर्षो तक कठोर परिश्रम कर पण्डित बन जाने के बाद वह अपने घर आया । उसे अपने पाण्डित्य पर बडा गर्व था । घर आने पर पण्डितजी को पत्नी ने कहा कि आप काशी से पण्डित बनकर आ गये, पर मुझे यह बताओ कि पाप का बाप कौन है ?

पण्डितजी विचार मे पड गये । उन्होने यह तो कभी नही पढा था । सभी पौथियो के पन्ने पलट लिये, धर्म ग्रन्थो को खोज लिया परन्तु उन्हें पाप का बाप कहीं नही मिला । पण्डितजी हैरान थे, विचार किया कि अध्ययन में कमी रह गई । अतः एक बार पुनः अध्ययन हेतु काशी जाने की तैयारी की । आवश्यक सामग्री बान्धकर घर से चल दिये ।

मार्ग में एक शहर से गुजर रहे थे । वैश्याओ के मोहल्ले से होकर जा रहे थे । एक वैश्या की दृष्टि पण्डितजी पर पडी । वैश्या ने सोचा पण्डितजी नवयुवक है तथा सामान भी साथ मे बन्धा हुआ है, इसलिए इन्हें जाल में फॅसाया जाय । वैश्या ने अपनी दासी को समझा-बुझाकर भेजा । दासी ने अत्यन्त विनय पूर्वक अपने घर चलने का निमन्त्रण दिया । पण्डितजी की बहुत प्रशंसा की तथा कहा कि आपके पधारने से हमारा मकान पवित्र हो जायेगा । अतः कृपा करे। पण्डितजी को जब यह मालूम हुआ कि वह वैश्या की दासी है तो कहा- 'छीः, छीः, मै वैश्या के घर नही आ सकता । मेरा धर्म भ्रष्ट हो जायेगा ।' दासी भी बुद्धिमान थी । उसने कहा- 'यदि आप मेरे घर पधारकर ही लौट जायेगे तो मेरा घर पवित्र हो जायेगा और भेट मे पॉच स्वर्ण मुद्राएँ दूँगी ।' यह कहकर दासी ने पॉच स्वर्ण मुद्राएँ पण्डितजी के सामने रखी। मुद्राएँ देखकर पण्डितजी की ऑखे चौधिया गई, मुॅह मे पानी आ गया । चुपचाप स्वर्ण मुद्राएँ ग्रहण कर ली और बिना किसी नू-नच के दासी के पीछे हो गए और वैश्या के घर जा पहुॅचे ।

वैश्या को सारी बात दासी ने इशारे में समझा दी । वैश्या ने बहुत आदर-सत्कार किया तथा पण्डितजी से पूछा कि वे कहाँ जा रहे है ? पण्डितजी ने सारी बात सच्ची-सच्ची कह दी तथा यह भी बता दिया कि वे पाप के बाप को जानने के लिए जा रहे हैं । वैश्या ने विश्वास दिलाया कि आपके प्रश्न का हल इसी शहर में मिल जाएगा । उसने विनय पूर्वक कहा- 'आप मेरे भवन में ऊपर पधार कर इसे पवित्र करने की कृपा करें, भेट स्वरूप ये पॉच मोहरे ।' यह कहकर पॉच स्वर्ण मुद्राएँ पण्डितजी के सामने रख दीं । स्वर्ण मुद्राएँ देख कर पण्डितजी का मन पिघल गया तथा ऊपर भवन मे चले गए । वैश्या ने ऊपर जाने के बाद पण्डितजी से फिर कहा कि यदि वे उसके घर पर भोजन ग्रहण करेगे तो पॉच मोहरे और दे दूँगी ।

पण्डितजी ने कहा- 'वैश्या के घर का भोजन मैं कैसे ग्रहण कर सकता हू । वैश्या को तो मैं छूता भी नही हूँ । ' वैश्या ने कहा- 'आपको भूख लगी होगी ? आप मेरे घर का भोजन ग्रहण नही करे तो कोई बात नही, मैं सारा सामान बाजार से मॅगवा देती हूँ । आप स्वय अपने हाथ से बनाकर भोजन ग्रहण करे और मुझे कृतार्थ करे । मैं भोजन के साथ दस मोहरे भेट करूँगी ।' दस मोहरो की बात सुनकर तथा भोजन सामग्री की बात सुनकर पण्डितजी का मन बदल गया । भूख भी सता रही थी । पण्डितजी ने स्वीकृति प्रदान कर दी ।

पण्डितजी ने स्वयं चूरमा-बाटी तैयार किया और थाल मे लेकर भोजन करने लगे । पण्डितजी को भोजन करने के पूर्व वैश्या ने दस स्वर्ण मुद्राएँ भेट मे दी । पण्डितजी भोजन कर ही रहे थे कि वैश्या ने पुनः पण्डितजी से कहा- 'आप महान् पण्डित है, भगवान के भक्त है और मैं तो पामर वैश्या हूँ । आपकी कृपा से आज मेरा घर भी पवित्र हो गया । बस, अब मेरे मन मे तो केवल एक इच्छा और बाकी रही है । यदि आप उसे पूरी कर दे तो मेरा कल्याण हो जाएगा । मेरी इच्छा है कि केवल एक कौर भोजन का मै अपने

से आपको करा दू । भोजन आपने स्वय बनाया है । मैने तो उसे छुआ भी नहीं है । मै चम्मच से थोडा भोजन लेकर दूर से ही आपके मुँह मे डाल दूँगी, आपका स्पर्श भी नही करूँगी । फिर यहाँ कोई देखने वाला भी नही है । इसके लिए दस स्वर्ण मुद्राएँ और भेंट में दूँगी । आप मुझ पर कृपा करें और एक कौर मेरे हाथ से खाने की स्वीकृति प्रदान करें ।'

पण्डितजी ने दस स्वर्ण मुद्राओ की बात सुनी और मन मे विचार किया कि इसमें क्या हर्ज है ? यहाँ कौन देख रहा है ? फिर वैश्या तो चम्मच के द्वारा दूर से मुँह मे डाल रही है । उन्होने वैश्या को स्वीकृति प्रदान कर दी । वैश्या ने चम्मच मे थोडा सा चूरमा लिया और पण्डितजी ने मुँह खोला । वैश्या ने पण्डितजी के मुँह मे चूरमे का एक कौर डाला और दूसरे हाथ से पण्डितजी के गाल पर एक चपत लगाई तथा कहा कि- 'मिला पाप का बाप या नही पण्डितजी ? यह लोभ ही तो पाप का बाप है जिसने आपको वैश्या के हाथ से भोजन करने को तत्पर कर दिया ।' पण्डितजी बहुत शर्मिन्दा हुए और अपने प्रश्न का उत्तर पाकर वापस अपने घर चले गए ।

इस कथानक से यह बताना है कि लोभी व्यक्ति विवेक रहित हो जाता है । कवि ने भी कहा है कि-

काई लोभ वश अकृत्य कर-कर, मन मांही सुख पावे रे ।
लोभ पाप का बाप साफ यों, सब जग गावे रे ॥

लोभ के वशीभूत होकर आज मानव हिसा और अत्याचार का ताण्डव नृत्य कर रहा है । भयंकर से भयकर अत्याचारो से भी नही डरता है । इसलिए लोभ को सर्व विनाशक कहा है ।

लाभ से लोभ बढ़ता है-

ज्ञानियो ने कहा है कि ज्यो-ज्यों लाभ मे अभिवृद्धि होती है, त्यो-त्यो लोभ भी बढता जाता है । शास्त्रकार का कथन है कि-

णरस्स लुद्धस्स ण तेहिं किंचि,

इच्छा हु आगाससमा अणंतिया ॥

(उत्तराध्ययन सूत्र अ 9 गा 48)

अर्थात् कैलाश पर्वत के समान सोने-चॉदी के असख्यात पर्वतों से भी लोभी का मन नहीं भर सकता । इच्छा भी आकाश के समान अन्त रहित है । अंग्रेजी विद्वान ने कहा है-

Avarice increases with the increasing pile of gold

'स्वर्ण की वृद्धि के साथ लोभ भी बढता है ।'

लोभ का अन्त तो नहीं होता है, लेकिन आयु सीमित है । अतः इच्छा पूर्ति नही होने से जीव दुःखी होता है । पाप का मूल लोभ है अतः इस पर नियन्त्रण आवश्यक है । सिकन्दर ने भी विश्व का धन एकत्रित करने का स्वप्न पूरा करने का विचार किया, परन्तु अन्त मे समझ गया कि उसका विचार निराधार है । अपने किये पर पश्चाताप किया ।

पाश्चात्य साहित्य मे राजा मिदास का उदाहरण दृष्टव्य है । उसे सोने के प्रति बहुत अनुराग था । किसी देव ने उसे शिक्षा देने के लिए वरदान दिया कि जिसे वह छू लेगा वही स्वर्ण का बन जायेगा । फिर क्या था ? सारा महल स्वर्ण का, फर्नीचर सोने का, प्रत्येक वस्तु सोने की बन गई । नाश्ता, भोजन, पानी, वस्त्र भी स्वर्ण मे बदल गये । राजा भूख और प्यास से व्याकुल हो गया । खाए-पीए क्या ? भोजन को छूते ही वह स्वर्ण का बन जाता । उसकी इकलौती कन्या को उठाया लेकिन वह भी स्वर्ण की बन गई । अब तो उसके दुःख का पारावार नही रहा । उसने पुनः चिल्ला-चिल्लाकर देव को याद किया । देव प्रकट हुआ और राजा मिदास ने वरदान वापस लेने की प्रार्थना की । उसकी पुत्री पुनः जीवित हो गई । वह भोजन-पानी भी ग्रहण कर सका ।

लोभ के चार भेद-

1. अनन्तानुबन्धी लोभ

ऐसा भयङ्कर लोभ जो कभी न छूटे जैसे किरमिची का रंग। कपडा फट जाता है परन्तु किरमिची का रंग नहीं मिटता। कई लोभी व्यक्ति ऐसे विचारो के होते हैं कि चमडी जावे पर दमडी न जावे। मम्मण सेठ नगर का अत्यन्त धनी व्यक्ति था, पर था महान लोभी। उसने स्वर्ण का एक सुन्दर बैल बनाया और उस पर बहुमूल्य हीरे, रत्न, जवाहरात लगवाये एव तलघर में सुरक्षित स्थान पर रख दिया। विचार किया कि बैल तो जोडी से होते है, अतः ऐसा ही एक बैल और तैयार कराने की चिन्ता लग गई। रात-दिन परिश्रम करता, छल-प्रपंच करता और धन एकत्रित करता।

बरसात का मौसम, श्रावण मास की अंधियारी रात्रि थी। चारो ओर घोर अन्धकार छाया हुआ था। मूसलाधार वर्षा हुई और नदियो मे पानी वेग से बहने लगा। मम्मण सेठ की नींद खुल गई। सोए-सोए विचार किया, समय नष्ट करने से क्या लाभ ? नदी मे पानी के साथ जंगल से लकडियाँ बहकर जा रही है क्यो न उन्हें एकत्रित की जावे ? ऐसा सोचकर वर्षा का वेग कम होने पर मध्यरात्रि मे घर से निकल गया। कपडे भी उतार दिये और केवल लज्जा ढकने के लिए थोडा सा वस्त्र लपेट लिया। सेठ नदी पर पहुँचा और नदी मे कूद गया। पानी मे से लकडियाँ बाहर निकालने लगा। जब काफी लकडियाँ हो गई तो गट्ठर बान्धकर उठा लिया और घर की ओर रवाना हुआ। रास्ता राजमहल के समीप से गुजरता था। बादल गरज रहे थे, बिजली चमक रही थी, हल्की वर्षा हो रही थी। मम्मण सेठ महलो के पास से गुजर रहा था। सयोग से महारानी की नीद खुल गई। बिजली के प्रकाश मे महारानी ने मम्मण सेठ को देखा और विचार किया- अहो! इस राज्य मे ऐसे दुःखी व्यक्ति भी है जो इस समय मे अपने

बाजी लगाकर आजीविका कमाने मे लगे है । राजा को जगाया और अन्तरमन का दु:ख कह दिया । राजा को भी खेद हुआ कि उसके राज्य में ऐसे दु:खी व्यक्ति भी रहते हैं, यह उसके लिए शर्म की बात थी । विचार किया कि ऐसे व्यक्तियो के दु:ख तो दूर करना ही चाहिये । तत्काल सेवक को बुलाकर लकडहारे के वेश मे मम्मण को बुला लाने व प्रातः राज्य सभा मे प्रस्तुत करने का आदेश दे दिया । ऐसा ही किया गया । मम्मण को समुचित व्यवस्था प्रदान की गई । दूसरे दिन राज्य सभा में मम्मण को प्रस्तुत किया गया ।

यह पूछने पर कि जीवन को संकट मे डालकर भी वह रात्रि को लकडियाँ एकत्रित क्यों कर रहा था ? मम्मण ने बताया कि उसके पास एक बैल तो है लेकिन बैल की जोड़ी के लिए वैसा ही एक बैल और चाहिये । राजा ने आदेश दिया कि गौशाला मे जाकर जैसा बैल चाहिये उसको दे दिया जावे । उसका कष्ट दूर किया जावे । मम्मण को बैल दिखाए गए परन्तु राजकी गौशाला का एक भी बैल मम्मण को पसन्द नहीं आया । जब यह सूचना राजा को दी गई तो राजा भी विस्मित हो गया । राजा ने मम्मण से उसका बैल दिखाने के लिए कहा । सेठ, राजा को अपने भवन पर ले गया । सेठ का विशाल भवन था । भवन के कमरो को पार कर अन्धकार के मार्ग से राजा सेठ के साथ एक तलघर मे पहुँचा । तलघर में नैत्रों को चकाचौंध कर देने वाला प्रकाश राजा ने देखा और विस्मित हो गया । इस तलघर में एक रत्न जडित बैल को दिखाते हुए सेठ ने राजा को कहा-राजन् ! इस बैल की जोडी का एक ऐसा ही बैल चाहिये । राजा विचार में पड़ गया । महारानी भी दंग रह गई । साथ में आए प्रधानमन्त्री ने कहा- राजन् ! सेठ को सुखी करने की शक्ति आपमें तो क्या, देवराज इन्द्र में भी नहीं है । यदि आप अपने सम्पूर्ण राज्य-कोष को देकर एक ऐसा बैल बनवा भी देंगे तो इसे तीसरे, चौथे और क्रमशः आगे बैलों की इच्छा बनी रहेगी । अतः इसे अपना कार्य करने देवें । राजा वापस महलो में चला गया ।

ऐसा लोभ जिसका कभी अन्त न आए वह अनन्तानुबन्धी लोभ है । अन्य बातें अनन्तानुबन्धी क्रोध की भाँति ही है ।

2. अप्रत्याख्यानी लोभ

बैलगाडी के ओगन (कीट) के दाग की तरह जो अत्यन्त परिश्रम करने पर छूट सके ऐसे लोभ को अप्रत्याख्यानी लोभ कहते है । अन्य बाते क्रोध मान की तरह है ।

3. प्रत्याख्यानी लोभ

काजल के दाग की तरह जो थोडे प्रयत्न से छूट सके । अन्य बाते प्रत्याख्यानी क्रोध की तरह है ।

4. संज्ज्वलन लोभ

हल्दी के रंग की तरह जो सहज ही छुट जावे वह संज्ज्वलन लोभ है । अन्य बाते संज्ज्वलन क्रोध की तरह है।

इस प्रकार लोभ पाप का मूल है, मोक्षाभिलाषियों को इसका त्याग करना चाहिये । लोभ पर विजय पाने के लिए जीवन मे सन्तोष ग्रहण करना चाहिये । सन्तोष के द्वारा लोभ पर नियन्त्रण किया जाता है । किसी कवि ने कहा है-

गौधन, गजधन, वाजिधन, और रतनधन खान ।
जब आवे सन्तोषधन, सब धन धूल समान ॥

दशवैकालिक सूत्र में भी कहा गया है-

'लोभं संतोषओ जिणे'

अर्थात् लोभ को सन्तोष से जीतना चाहिये ।

क्रोध, मान, माया एवं लोभ ये चारो कषाय आत्मा के पतन के कारण हैं, संसार परिभ्रमण के कारण है ।

'चत्तारि ए ए कसिणा कसाया,
सिंचित मूलाइं पुणब्भवस्स ।'

(दशवैकालिक सूत्र 8/40)

अर्थात् ये चारो कषाय जन्म-मरण की जड का सिचन करते हैं । ये अनन्त संसार वृद्धि का कारण हैं । महाकवि तुलसीदासजी ने कहा है-

काम क्रोध मद लोभ की, जब लो मन में खान ।
तब लो पण्डित मूरखा, तुलसी एक समान ॥

कषाय विद्वान व्यक्ति को भी मूर्ख बना देता है । कषाय मुक्ति के बिना संसार मुक्ति सम्भव नही है । अतः इसका त्याग करना चाहिये ।

'चत्तरि वमे सया कसाए'

(दशवैकालिक सूत्र 8/40)

अर्थात् सदैव चारों कषायों का- क्रोध, मान, माया एवं लोभ का परित्याग करना चाहिये ।

कवि ने भी प्रार्थना की कडियों में प्रभु की प्रार्थना करते हुए कहा है कि भगवान् की सच्चे हृदय से प्रार्थना करने पर ये कषाय-क्रोध, मान, माया, लोभ आत्मा से दूर हो जाते हैं । कवि कहता है-

समतामय जीवन हो सबका, समता हो जीवन का कर्म ।
रम जावे अन्तर, बाहर में, समता का शुभ मंगल मर्म ॥
समता से दिग्भ्रान्त विश्व में, आओ समता पाठ पढ़ें ।
सहज सुमति से समता दर्शन पर, आओ हम सब साथ पढ़ें ॥

नाहं रामो न मे वांछा, भावेषु च न मे मनः ।
शान्तिमास्थातुमिच्छमि, स्वात्मन्येव जिनो यथा॥

भावार्थ- (श्रीरामचन्द्रजी ने श्रीवसिष्ठ ऋषि से कहा) मैं राम नही हूं, मेरी कोई अन्य इच्छा नही है, मै तो जिनदेव की तरह आत्मशान्ति प्राप्त करने की इच्छा करता हू ।

अन्तगडदसा सुत्तं विवेचन

'अन्तगडदसा सुत्त' वर्तमान काल में उपलब्ध ग्यारह अंग सूत्रो मे आठवां अंग सूत्र है । अतः यह तीर्थंकर प्रभु महावीर की मूल वाणी है । तीर्थंकरो की अर्थरूप वाणी को गणधर ग्रहण कर सूत्रबद्ध करते है । श्वेताम्बर स्थानकवासी परंपरा में पर्युषण पर्व के पावन आठ दिवसो मे अन्तगडदसा सुत्त या अन्तकृतदशा सूत्र के वाचन की परंपरा है ।

इस सूत्र मे आठ वर्ग हैं जिनमे कुल 90 अध्याय हैं । प्रत्येक अध्याय मे एक महापुरुष का वर्णन है । इस सूत्र में उन 90 महापुरुषो का जीवन वृतान्त है जिन्होने अनादि काल से चली आ रही ससार अवस्था को, जन्म-मरण की परम्परा को उसी भव में अन्त कर दिया एव सिद्ध-बुद्ध-मुक्त हो गए । सदा-सदा के लिए संसार का अन्त करने वाले अन्तकृत आत्माओ की साधना दशा का वर्णन होने से इसे अन्तकृतदशा सूत्र कहा गया है । यह एक ऐसा कल्याणकारी कथा साहित्य है जिसके पठन-पाठन-मनन से जीवो को ससार का अन्त कर मुक्ति की ओर अग्रसर होनेकी प्रेरणा मिलती है । इसलिए पर्युषण पर्व के पावन अवसर पर इसे पढा जाता है ।

इस सूत्र के प्रथम पाच वर्गो मे बाइसवें तीर्थंकर भगवान अरिष्टनेमी के काल का वर्णन है तथा शेष तीन वर्ग मे चरम तीर्थंकर भगवान महावीर के समय का वर्णन है । प्रथम वर्ग मे दस, द्वितीय वर्ग मे आठ, तृतीय वर्ग मे तेरह, चतुर्थ वर्ग मे दस, पचम वर्ग मे दस, षष्टम वर्ग मे सौलह, सप्तम वर्ग मे तेरह तथा अष्टम वर्ग मे दस यो कुल 90 अध्याय है, जिनमे 90 महान आत्माओ का अत्यन्त रोचक एवं प्रेरणास्पद साधना वृत्तान्त है ।

भगवान अरिष्टनेमी के शासन के 51 तथा भगवान महावीर के शासन के 39 महान साधको का वर्णन इस सूत्र में है । दोनो शासनकाल के 57 पुरुष एवं 33 महिला साधक है

उनमे भगवान अरिष्टनेमी के शासनवर्ती 41 पुरुष एवं 10 स्त्रियां तथा भगवान महावीर के शासनकाल के 16 पुरुष एवं 23 स्त्रियो का वर्णन है ।

तीसरे वर्ग के आठवे अध्याय मे वर्णित श्री गजसुकुमाल मुनि जिस दिन दीक्षित हुए उसी दिन भिक्षु की बारहवी प्रतिमा धारण कर रात्रि के प्रथम प्रहर मे मोक्ष पधार गए । छठे वर्ग के तीसरे अध्याय मे वर्णित श्री अर्जुन अनगार छः माह मुनि धर्म का पालन कर 15 दिन की संलेखना अंगीकार कर सिद्ध-बुद्ध--मुक्त हो गए । शेष सभी 88 साधक 30 दिन का सथारा-संलेखना कर मुक्त हुए । 90 साधकों में से 12 साधकों ने 12 अंगों का अध्ययन किया, 66 साधको 11 अंगों का अध्ययन किया, 10 साधक 14 पूर्वधारी बने एवं 2 साधक श्री गजसुकमाल मुनि एवं श्री अर्जुन मुनि अष्ट प्रवचन माता का अध्ययन करके सर्वज्ञ सर्वदर्शी बन कर मुक्त हो गए ।

सबसे अल्प आयु में श्री एवन्ताकुमार ने दीक्षा ग्रहण की तथा दीर्घ काल तक सयम की आराधना की । श्री गजसुकुमाल अणगार सबसे अल्प काल मे आत्मोत्थान कर मुक्त हो गए । श्री गजसुकुमाल मुनि ने अद्वितीय सहनशीलता, क्षमा एवं धैर्य धारण किया एव श्री अर्जुन अणगार ने भी क्षमा का उच्च आदर्श प्रस्तुत किया । इन दोनों साधकों के अलावा शेष 88 साधको ने गुणरत्न संवत्सर तप एवं भिक्षु प्रतिमाओ की आराधना की ।

सुदर्शन श्रावक की धर्म के प्रति दृढता एवं शुद्ध श्रद्धा एक अनुकरणीय प्रसग है । अर्जुनमाली के हाथ मे मुद्गर देखकर, साक्षात् काल को सामने पाकर भी सुदर्शन श्रावक का अविचल रहना, मृत्यु से भयभीत न होना एवं सागारी सथारा ग्रहण करना अपने आप में अद्वितीय उदाहरण है ।

महाराजा श्रेणिक की महारानियाँ एव कोणिक की छोटी माताओं में काली-सुकाली आदि 10 महारानियो के सयम मार्ग पर

आरूढ होकर घोर तपस्याए की । आठवे वर्ग मे इनका वृत्तांत आदर्श त्याग एव तप का परिचायक है ।

तीन खण्ड के अधिपति वासुदेव श्री कृष्ण का प्रतिदिन अपनी माताओ को पद-वंदन करना एवं अपनी माता देवकी की चिन्ता को दूर करने के लिए पूर्ण प्रयत्न करना महापुरुषो की मातृ-भक्ति, विनय एव आदर्श जीवन का द्योतक है । इसी प्रकार श्रीकृष्ण वासुदेव का एक साधारण वृद्ध नागरिक पर करुणा लाकर ईटो के ढेर मे से एक ईट उठाकर उसके घर में रखने का कार्य उत्तम पुरुषों के हृदय में करुणा एवं सेवा की भावना का आदर्श उदाहरण है ।

अन्तगड सुत्तं मे राजकुमारों का वर्णन है तो महारानियों का वर्णन भी है । अर्जुनमाली जैसे हत्या मे प्रवृत्त होकर भी मुक्ति के मार्ग पर लगने का वर्णन्र है तो गजसुकमाल जैसे क्षमावान का भी वर्णन भी है । एवन्ताकुमार जैसे बालक के सयम पथ पर आरूढ होने का भी उल्लेख है । इस प्रकार इस सूत्र में विभिन्न श्रेणी के साधकों का रोचक एवं प्रेरणास्पद वर्णन सकलित है । इससे यह स्पष्ट है कि साधना के क्षेत्र में वैभव, जाति, आयु, पूर्व का जीवन आदि बाधक नहीं है । जहा एक ओर राजकुमार, महारानियां, गाथापति आदि साधना पथ पर अग्रसर हुए है वही दूसरी ओर मनुष्यो की हिसा करने वाले और उपेक्षित वर्ग के व्यक्ति भी उसी पथ पर चल कर मुक्ति का साम्राज्य प्राप्त करते है । इसलिए कहा है कि घृणा पाप से हो न कि पापी से । पापी तो परिवर्तित होकर धर्मी बन सकता है, अतः स्वीकार्य योग्य है । पाप तो हेय है ही ।

इस प्रकार त्रिखण्डाधिपति श्री कृष्ण वासुदेव की मातृ-भक्ति एव असहाय पर अनुकम्पा भाव से सेवा, श्री गजसुकमाल मुनि की क्षमा, सुदर्शन श्रावक की धर्म दृढता, गौतम कुमार आदि की ज्ञान आराधना, काली-सुकाली आदि महारानियो की विशिष्ट तपाराधना इस सूत्र के आदर्श प्रेरणास्पद प्रसंग है ।

अन्तकृतदशा सूत्र का वांचन क्यों ?

कई वार यह प्रश्न उपस्थित होता है कि प्रति वर्ष पर्युषण में अन्तकृतदशा सूत्र का ही वाचन क्यों किया जाता है ? अन्य सूत्र का क्यों नहीं ? यों तो सभी शास्त्र तीर्थकरों द्वारा उपदिष्ट हैं लेकिन 'अन्तगडदसा सुत्त' का किसी अपेक्षा से विशिष्ट स्थान है ।

1. पर्युषण पर्व हमारे लिए सर्वोत्कृष्ट लोकोत्तर पर्व है । सभी जैन मतावलम्बियो के लिए पर्युषण पर्व का विशेष महत्व है । जो लोग अल्पतम धार्मिक रुचि के हैं वे भी पर्युषण पर्व में तो व्याख्यान श्रवण की भावना रखते हैं । अतः ऐसे अवसर पर ऐसे शास्त्र का वाचन होना चाहिए जिससे त्याग-वैराग्य की विशेष प्रेरणा मिल सके । अन्तकृतदशा सूत्र एक ऐसा ही सूत्र है जिसके श्रवण से आत्मा जागृत हो सकती है । इस सूत्र मे ऐसे महापुरुषो का साधना वृत्तान्त है जिन्होंने अपनी आत्मा को जागृत कर ज्ञान-दर्शन-तप की शुद्ध आराधना द्वारा कर्मो की श्रृखला को समाप्त कर उसी भव में मुक्ति को वरण किया है । अन्तिम अष्टम वर्ग में तो तप आराधना का उत्कृष्ट उदाहरण है । उनका अपार वैभव, समृद्धि, परिवार उनके त्याग वैराग्यपूर्ण साधना मे कही बाधक नही हुआ, इन सबको ठोकर मार कर साधना पथ पर अग्रसर हो गए । अतः पर्युषण पर्व के पावन दिवसों मे 'अन्तगडदसा सुत्तं' का पठन-पाठन विशेष प्रेरणादायी सिद्ध होता है ।

2. 'अन्तगडदसा सुत्तं' एक ऐसा सूत्र है जिसका वाचन आठ दिन मे पूर्ण किया जा सकता है । प्रतिदिन लगभग 45 मिनिट तक वाचन करने से अन्तकृतदसा सूत्र को आठ दिवस मे अर्थ सहित वाचन पूर्ण किया जाता है । ऐसा आत्म साधना प्रेरक अन्य कोई अंग सूत्र नही है जो इतने अल्प समय मे पूर्ण किया जा सके। अतः पर्वाधिराज पर्युषण पर्व के पावन प्रसग पर वाचन के लिए अन्तकृतदशा सूत्र सर्वोत्तम सिद्ध होता है ।

3. पर्युषण पर्व के दिवस भी आठ हैं, आत्मा के मूल गुण भी आठ हैं, संसारी प्राणियो के कर्म भी आठ हैं तथा अन्तकृतदशा सूत्र के वर्ग भी आठ है । यह आठ का संयोग भी अन्तकृतदशा सूत्र की उपादेयता की ओर सकेत करता है ।

4 कभी-कभी यह भी जिज्ञासा प्रस्तुत होती है कि प्रातः अन्तगडदसा के बजाय कल्पसूत्र क्यो नहीं पढा जाता है ? मै सुझाव रूप मे यह निवेदन कर दिया करता हूं कि प्रातः तो अन्तगड का ही वाचन किया जावे, यदि कल्पसूत्र के श्रवण की इच्छा हो तो दोपहर मे पठन-पाठन करना उपयुक्त है । इसके समाधान के निम्न कारण मेरे ध्यान में है ।

(क) अन्तकृतदशा सूत्र अग सूत्रो में आठवां अंग सूत्र है जबकि कल्पसूत्र न तो अंग सूत्र है और न उपांग सूत्र है ।

(ख) अग सूत्र तीर्थकरो द्वारा उपदिष्ट होने से वीतराग वचन हैं । अतः अन्तकृतदसा सुत्त वीतराग वाणी है और कल्पसूत्र आचार्यो की कृति है । तुलनात्मक दृष्टि से अंग सूत्र का अधिक महत्व है । यो कल्प सूत्र भी जैन साहित्य है, श्रुतबाहु केवली आचार्य श्री भद्रबाहु की अनमोल कृति है ।

(ग) कथानक की दृष्टि से भी अन्तगडदसा सुत्त की उपयोगिता कल्प सूत्र की अपेक्षा अधिक है । क्योकि कल्प सूत्र मे दस कल्पो का विवरण है, 24 वे तीर्थकर भगवान महावीर के पूर्व भवो सहित पच कल्याणक का विस्तार से वर्णन है तथा उसके साथ ही शेष तेईस तीर्थकरो का संक्षेप मे वर्णन है । इस प्रकार कल्प सूत्र जैन तीर्थकरो का सक्षिप्त इतिहास है । बाद मे पट्टावलियां भी जोड दी गई हैं । परन्तु अन्तगडदसा सुत्त मे तो ऐसी महान् आत्माओ के जीवन वृतांत है जिनके पठन-पाठन से सुसुप्त आत्मा भी जागृत होकर मोक्ष मार्ग पर अग्रसर होने की प्रेरणा प्राप्त कर सके ।

अतः तुलनात्मक दृष्टि से अन्तकृत सूत्र अधिक उपयोगी सिद्ध होता है ।

पर्युषण पर्व मे कई बार स्वाध्यायियों के समक्ष यह प्रश्न भी उपस्थित होता है कि सूत्र की भाषा प्राकृत (अर्धमागधी) है जिसे जन साधारण नही समझता, फिर उसे पढने से क्या लाभ है ? इसका समाधान यह है कि-

(1) जिस प्रकार सर्प दंस पर मंत्रवादी मंत्रों का उच्चारण करता है । जिसको सर्प ने काटा है वो मंत्र की भाषा नहीं समझता है फिर भी मंत्रवादी द्वारा मंत्रोच्चारण से सर्प का विष दूर हो जाता है । इसी प्रकार हम भी कषाय रूपी सर्प के विष से प्रभावित है, कर्म रूपी सर्प के विष से प्रभावित हैं । अतः सूत्रों के पठन-पाठन से कर्मो की निर्जरा कर सकते हैं, कषाय रूपी सर्प के विष से मुक्त हो सकते हैं ।

(2) अर्थ नही समझते हुए भी शास्त्रो का पठन-पाठन स्वाध्याय है जो कि एक आभ्यान्तर तप है । स्वाध्याय से कर्मो की निर्जरा होती है ।

(3) पर्युषण पर्व में अन्तकृत सूत्र का पठन वर्तमान युग मे अर्थ सहित किया जाता है । जिससे सूत्र आसानी से समझा जा सकता है ।

(4) सूत्रों के बार-बार पठन-पाठन से भाषा भिन्न होने पर भी सूत्र के रहस्य को समझने की क्षमता प्राप्त हो सकती है ।

अतः अर्धमागधी भाषा में होने पर भी सूत्रो का पठन-पाठन लाभप्रद है ।

लघु प्रार्थना-स्तवन

(1)

अर्हन्तो भगवन्त इन्द्र महिताः, सिद्धाश्च सिद्धि स्थिताः ।
आचार्या जिनशासनोन्नतिकराः, पूज्या उपाध्यायकाः ॥
श्री सिद्धान्तसुपाठका मुनिवरा, रत्नत्रयाराधकाः ।
पंचैते परमेष्ठिनः प्रतिदिनं, कुर्वन्तु नो मंगलम् ॥

(2)

मगलं भगवान वीरो, मंगल गौतम प्रभुः ।
मंगल स्थूलिभद्राद्याः, जैन धर्मोऽस्तु मंगलम् ॥

(3)

सर्व मगल-मांगल्य, सर्व कल्याणकारणम् ।
प्रधान सर्व धर्माणा, जैनं जयतु शासनम् ॥

(4)

जो देवाण वि देवो, जं देवा पजलि नम सति ।
तं देव-देव महिय, सिरसा वदे महावीरम् ॥

(5)

एगो वि नमुक्कारो जिणवर व सहस्स वद्धमाणस्स ।
ससार-सागराओ तारेइ, नरं व नारि वा ॥

(6)

धम्मो मंगलमुक्किट्ठ, अहिंसा सजमो तवो ।
देवा वि त नम सति, जस्स धम्मे सया मणो ॥

(7)

तुभ्यं नमस्त्रि भुवनार्तिहराय नाथ ।
तुभ्यं नमः क्षितितलामल-भूपणाय ॥
तुभ्य नमस्त्रि जगतः परमेश्वराय ।
तुभ्य नमो जिन भवोदधिशोषणाय ॥

(8)

वीरः सर्व-सुरासुरेन्द्रमहितो, वीर बुधाः संश्रिताः ।
वीरेणामिहतः स्वकर्म-निचयो, वीराय नित्य नमः ॥
वीरा-तीर्थ मिदं प्रवृत्तमतुलं-वीरस्य घोरं तपो ।
वीरे श्रीधृति-कान्ति-कीर्ति-निचयो, हे वीर ! भद्रं दिश॥

(9)

अविनाशी अविकारी, परम-रस धाम है ।
समाधान सर्वज्ञ, सहज अभिराम है ॥
शुद्ध बुद्ध अविरूद्ध, अनादि अनंत है ।
जगत शिरोमणि सिद्ध, सदा जयवंत है ॥

(10)

दया सुखानी वेलडी, दया सुखांनी खान ।
अनता जीव मुक्ते गया, दया तणा फल जान ॥1॥
हिंसा दुखनी वेलडी, हिंसा दुखानी खान ।
अनंता जीव नरके गया, हिसा तणां फल जान ॥2॥
जिम सुणो तिम ही करो, तो पहुचे निर्वाण ।
कई एक ह्रदय राखजो, थांने सुण्यारो परमाण ॥4॥

(11)

अरिहन्त जय-जय, सिद्ध प्रभु जय-जय ।
साधु जीवन जय-जय, जिन धर्म जय-जय ॥1॥
अरिहन्त मगल, सिद्ध प्रभु मगल ।
साधु जीवन मगल, जिन धर्म मगल ॥2॥
अरिहन्त उत्तम, सिद्ध प्रभु उत्तम ।
साधु जीवन उत्तम, जिन धर्म उत्तम ॥3॥
अरिहन्त शरण, सिद्ध प्रभु शरण ।
साधु जीवन शरण, जिन धर्म शरण ॥4॥
चार शरण दुख हरण जगत मे, और न शरणा कोई होगा ।
जो भव्य प्राणी करे आराधन, उसका अजर-अमर पद होगा ॥

(12)

सत्वेषु मैत्री, गुणिषु प्रमोद, क्लिष्टेषु जीवेषु कृपा परत्वं ।
माध्यस्थ भावं विपरीत वृत्तौ, सदा ममात्मा विद् धातु देव ॥

(13)

नानेशाचार्य महान हैं, तप संयम गुण खान ।
ऐसे सुज्ञानी आचार्य को, मेरे अनेको प्रणाम ॥

(14)

तुभ्यं नमो निरति चार चरित्र राशे ।
तुभ्यं नमो विगत दोष विशिष्ट योगीन् ॥
तुभ्यं नमो मुनि गणेषु गणि प्रवीर ।
तुभ्य नमोऽवनि तले विदुषां वरेण्य ॥

卐 卐 卐

ये पर्व पर्युषण आया

(तर्ज- वीरा रमक झमक हुई आईजो....)

ये पर्व पर्युषण आया, सब जग में आनन्द छाया रे ॥टेर॥
यह विषय कषाय घटाने, यह आतम गुण विकसाने ।
जिनवाणी का बल लाया रे ॥ये पर्व. ..॥1॥
ये जीव रूले चहुँ गति मे, ये पाप करण की रति में ।
निज गुण सम्पद को खोया रे ॥ये पर्व . ॥2॥
तुम छोड प्रमाद मनाओ, नित धर्म ध्यान में रम जाओ ।
लो भव-भव दुःख मिटाया रे ॥ये पर्व.... ॥3॥
तप जप से कर्म खपाओ, दे दान द्रव्य फल पाओ ।
ममता त्यागी सुख पाओ रे ॥ये पर्व . ॥4॥
मूरख नर जन्म गमावे, निन्दा विकथा मन भावे ।
इनसे ही गोता खावे रे ॥ये पर्व... ॥5॥
जो दान शील आराधे, तप द्वादश भेदे साधे ।
शुद्ध मन जीवन सरसाया रे ॥ये पर्व .. ॥6॥

वेला तेला और अठायां, संवर पौषध करो भाया ।
शुद्ध पालो शील सवाया रे ॥ये पर्व ॥7॥
तुम विषय कषाय घटाओ, मन मलिन भाव मत लाओ ।
निन्दा विकथा तज माया रे ॥ये पर्व ..॥8॥
केई आलस मे दिन खोवे, शतरंज तास या सोवे ।
पिक्चर में समय गमावे रे ॥ये पर्व. .॥9॥
संयम की शिक्षा लेना, जीवों की जयणा करना ।
जो जैन धर्म थे पाया रे ॥ये पर्व. .॥10॥
जन-जन का मन हर्षाया, बालकगण भी हुलसाया ।
आत्म शुद्धि हित आया रे ॥ये पर्व. ..॥11॥
समता से मन को जोडो, ममता का बन्धन तोडो ।
है सार ज्ञान का पाया रे ॥ये पर्व....॥12॥
सुरपति भी स्वर्ग से आवे, हर्षित हो जिन गुण गावे ।
जन-जन को अभय दिलाया रे ॥ये पर्व....॥13॥
'गजमुनि' निज मन समझावे, यह सोई शक्ति जगावे ।
अनुभव रस पान कराया रे ॥ये पर्व....॥14॥

卐 卐 卐

एवन्ता मुनिवर नाव तिराई

एवन्ता मुनिवर नाव तिराई बहता नीर में ॥टेर॥
पोल्लासपुरी नगरी के राजा, विजयसेन भूपाल ।
श्री देवी के अग ऊपना, एवन्ता कुमार रे ॥1॥
बेले-बेले करे पारणा, गणधर-पदवी पाया ।
महावीरजी की आज्ञा लेकर, गौतम गोचरी आया ॥2॥
खेल रहा था खेल कॅवरजी, देख्या गौतम आता ।
घर-घर मांहि फिरो हिंडता, पूछे दूसरी बातां जी ॥3॥
असनादिक लेने के काजे, निर्दोषन हम बहरां ।
ऊँगली पकड कुँवर एवन्ता, लायो गौतम लार जी ॥4॥

माता देखी कहे पुण्यवन्ता, भली जहाज घर आणी ।
हर्ष भाव धर निज हाथन से, वहराया अन्न पाणी जी ॥5॥
लारे-लारे चल्या कुँवरजी, भेट्या मोटा भाग ।
भगवन्ता री वाणी सुनने, उपना मन वैराग जी ॥6॥
घर आवी माता सूँ बोले, अनुमति की अरदास ।
बात सुनी माता पुत्र की, मन में आई हांस जी ॥7॥
तु क्या जाने साधूपना में, बाल अवस्था थारी ।
ऐसो उत्तर दियो कॅवरजी, मात कहे बलिहारी जी ॥8॥
मोछव करीने संजम लीनो, हुआ बाल अणगार ।
भगवन्ता चरण भेटिया, धन ज्यारा अवतार जी ॥9॥
वरसाकाल बरस्या पीछे, मुनिवर थण्डिले जावे ।
पाल बान्ध पानी में पातरा, नाव जान तिरावे जी ॥10॥
नाव तिरे म्हारी नाव तिरे यों, मुख से शब्द उचारे ।
साधा के मन शंका उपनी, किरिया लागे थांरे जी ॥11॥
भगवन्त भाखे सब साधा से, भक्ति करो तेह दिल ।
हिलना निन्दा मति करो कोई, चरम शरीरी जीव जी ॥12॥
शासनपति का वचन सुनी ने, सब ही शीष चढाया ।
एवन्ता की हुण्डी सिकरी, आगम मांहि गाया जी ॥13॥
सवत् उन्नीसे साल छेयालिस, भिल्लाडा शेखे काल ।
'रतनचन्द्रजी' गुरु प्रसादे, गाई हीरालाल जी ॥14॥

卐 卐 卐

काली ओ राणी सफल कियो

काली ओ राणी सफल कियो अवतार ।
थे तो पाम्या हो भवोदधि पार ॥टेर॥
कोणिक रायनी छोटी माता, श्रेणिक नृप की नार ।
वीर जिनन्द की वाणी सुन ने, लीनो है संयम धार ॥1॥
चन्दनबाला जैसा मिल्या गुराणी, नित-नित नमी चरणार ।
विनय करीने भणी अंग इग्यारे, तेनी निर्मल बुद्धि अपार ॥2॥

सुमति गुप्ति शुद्ध संयम पाल्यो, चढी परणामो की धार ।
आज्ञा लेईने सती निज गुरुणी की, माण्डी तपस्या अपार ॥3॥
शरीर शक्ति जाणी सती ने, आराध्यो रत्नावली तपनो हार ।
चार लडी सम्पूर्ण कीनी, तेनो आठवें अंग अधिकार ॥4॥
पॉच वरस तीन मास दो दिन कम, लागो इतनो काल ।
धन्य महासती तप आराध्यो, तेने वन्दना छे बारम्बार ॥5॥
आठ वर्ष सुध संयम पाल्यो, कर्म किया सब छार ।
जन्म जरा और मरण मिटायो, पहुँची मोक्ष मझार ॥6॥
गुरु नन्दलालजी तणा शिष्य गायो, शहर भीलाडा मझार ।
ऐसी सती का सुमिरन से ही, वरत्या हो मंगलाचार ॥7॥

卐 卐 卐

जय जय जय जयकार पर्युषण

जय जय जय जयकार पर्युषण, जय जय जय जयकार ॥टेर॥
स्वागत स्वागत पर्व तुम्हारा लो अभिनन्दन आज हमारा ।
वन्दन सौ-सौ बार . ॥1॥
सब पर्वो का तू है राजा, तुझसे उन्नत जैन समाजा ।
हम तुझ पर बलिहार . ॥2॥
तीर्थंकर भी तुम्हे मनाते, सुर, नर, किन्नर सब गुण गाते ।
महिमा अपरम्पार . . ॥3॥
सकल सघ की सेवा पल-पल, बहे शान्ति का झरना निर्मल ।
पालें शुद्धाचार . ॥4॥
चाहे त्रस या स्थावर प्राणी, चाहे मित्र हो दुश्मन जानी ।
आतम सम व्यवहार ॥5॥
मैत्री का सदेश सुहाना, भूलो अपना और बेगाना ।
सबसे प्रीति अपार ॥6॥
आओ हम सब मिल आराधे, मैत्री भावना दृढतर साधे ।
सफल करे त्यौहार. . ॥7॥

卐 卐 卐

पापो के सव वन्धन तोडो, मोह और ममता को छोडो ।
विषयों से मन अपना मोडो, सच्चा प्रभु से नाता जोडो ।
'चन्द्रभूषण' जियो जीने दो, यही वीर फरमान ॥
संवत्सरी आया पर्व महान् ॥3॥

卐 卐 卐

स्वाध्याय करो

जीवन को उच्च बनाना हो, स्वाध्याय करो, स्वाध्याय करो ।
मानवता को विकसाना हो, स्वाध्याय करो, स्वाध्याय करो ॥टे॥
व्यवहारिक शिक्षण खूब लिया दुनिया ।
यदि धर्म मे चित्त लगाना हो, स्वाध्याय करो-2 ॥1॥
अज्ञान दशा की करणी को करते हुए काल अनन्त हुआ ।
यदि ज्ञान की ज्योति जगाना हो, स्वाध्याय करो-2 ॥2॥
सद्ज्ञान बिना ऐ भ्राताओ सामायिक सफल नहीं होगी ।
मन मे समता रस लाना हो, स्वाध्याय करो-2 ॥3॥
तन-धन का गर्व नही करना, ये तो सब जाने वाले है ।
इस भव-परभव सुख पाना हो, स्वाध्याय करो-2 ॥4॥
यदि धर्म की दशा करना है, केवल सन्तो से नहीं होगी ।
सिद्धान्त पढो, विद्वान बनो, स्वाध्याय करो-2 ॥5॥

卐 卐 卐

सामायिक सन्देश

जीवन उन्नत करना चाहो तो, सामायिक साधन करलो ।
आकुलता से बचना चाहो तो सामायिक साधन करलो ॥टेर॥
तन धन परिजन सब सपने है, नश्वर जग मे नही अपने है ।
अविनाशी सद्गुण पाना हो तो सामायिक साधन करलो ॥1॥
चेतन निज घर को भूल रहा, पर घर माया मे झूल रहा ।
सद्चिद् आनन्द को पाना हो तो सामायिक साधन करलो ॥2॥

विषयो मे निज गुण मत भूलो, अब काम क्रोध मे मत झूलो ।
समता के सर मे नहाना हो तो सामायिक साधन करलो ॥3॥
तन पुष्टि हित व्यायाम चला, मन पोषण को शुभ ध्यान भला ।
आध्यात्मिक बल पाना हो तो सामायिक साधन करलो ॥4॥
सब जग जीवो मे बन्धु भाव, अपनालो तज के वैर भाव ।
सब जन के हित मे सुख मानो तो सामायिक साधन करलो॥5॥
निर्व्यसनी हो, प्रमाणिक हो, धोखा न किसी जन के संग हो ।
ससांर में पूजा पाना हो तो सामायिक साधन करलो ॥6॥
साधक सामायिक संघ बने, सब जन सुनीति के भक्त बने ।
नरलोक मे स्वर्ग बसाना हो तो सामायिक साधन करलो ॥7॥

卐 卐 卐

दान की महिमा है महान

अरे मुसाफिर जग मे आकर, कर जाना कुछ दान ।
दान की महिमा बडी महान-2 ॥
तीन लोक मे होते रहते, दानी के गुण गान ।
दान की महिमा बडी महान ॥टेर॥

दान शील तप भाव बताया, नाम दान का पहले आया ।
जिसने जो कुछ वैभव पाया, पूर्व दान की है सब माया ।
ऊँची गतियो मे जाने का प्रथम यही सोपान ॥
॥दान की महिमा बडी महान॥1॥

नदियॉ सागर को दे देवे, सागर से बादल पा लेवे ।
फिर बादल जग पर बरसावे, वही पुन· नदियॉ मे आवे ।
कमी नही होने देते है दानी के भगवान् ॥
॥दान की महिमा बडी महान॥2॥

क्षण भगुर ये कच्ची काया, उससे भी यह चञ्चल माया ।
खाली हाथ यहॉ था आया, पूर्व दान फल से कुछ पाया ।
यही छूट जाये सब वैभव, दो दिन का मेहमान ॥
॥दान की महिमा बडी महान॥3॥

खुद का पेट सभी भरते हैं, खुद के लिए सभी पचते हैं ।
धन से परहित जो करते हैं, जग में नाम अमर करते है ।
जनम-जनम का हो जाता है, दानी का एहसान ॥
॥दान की महिमा बडी महान॥4॥

करण महान कहाया कैसे, नाम दधिचि ने पाया कैसे ।
भामाशाह पूजाया कैसे, नाम चमकते मोती जैसे ।
तन की शोभा शील धर्म है, धन की शोभा दान ॥
॥दान की महिमा बडी महान॥5॥

卐 卐 卐

इम झूरे देवकी राणी

इम झूरे देवकी राणी, या तो पुत्र बिना विलखाणी रे ॥टेर॥
मैं तो सातों नन्दन जाया, पिण एक न गोद खिलायो रे ॥1॥
घर पालणो नहीं बन्धायो, नही मधुर हालरियो गायो रे ॥2॥
घुघरा चुखनी ना बसाई, झमर पिण नाहिं बन्धाई रे ॥3॥
नहीं गदणा कपडा पहिराया, नहीं झगल्या टोपी सिवाया रे ॥4॥
नहीं काजल ऑख लगायो, नहीं स्नान करी ने जीमायो रे ॥5॥
नहीं गले दामण दीधा, वली चान्द सूरज नही कीधा रे ॥6॥
नहीं स्तन पान करायो, रूठा ने नहीं मनायो रे ॥7॥
मैं तो कडिया नाहि उठायो, नहीं अंगुली पकड चलायो रे ॥8॥
घू घू कही नाहिं डरायो, नहीं गुदगल्या से हॅसायो रे ॥9॥
नही मुख पे चुम्मा दीधा, नहीं हरष वारणा लीधा रे ॥10॥
नहीं चक्री भॅवरा मगाया, नही गुलिया गेन्द बसाया रे ॥11॥
मै जन्म तणा दुःख देख्या, गया निष्फल जन्म अलेख्या रे ॥12॥
मै पूरा पुण्य नहीं कीधा, तिणथी सुत बिछडा लीधा रे ॥13॥
गले बे हाथ नजर है धरती, ऑखे ऑसू भर झरती रे ॥14॥
पग वन्दन कृष्ण पधारे, माजी ने उदास निहारे रे ॥15॥
कहे अमीरख किम दुख पावो, माताजी मुझ फरमावो रे ॥16॥

卐 卐 卐

प्रत्याख्यान सूत्र

१. नवकारसी

उग्गए सूरे ननोक्कारसहियं पच्चक्खामि चउव्विहं पि आहारं असणं, पाणं, खाइमं, साइमं, अन्नत्थणाभोगेणं, सहसागारेणं वोसिरामि ।

२. पौरुषी

उग्गए सूरे पोरसियं पच्चक्खामि, चउव्विहं पि आहारं, असणं, पाणं, खाइमं, साइमं, अन्नत्थणाभोगेणं, सहसागारेणं, पच्छन्नकालेणं, दिसामोहेणं, साहुवयणेणं, सव्वसमाहिवत्तियागारेणं वोसिरामि ।

३. दो पोरसी

उग्गए सूरे पुरिमड्ढं पच्चक्खामि चउव्विहं पि आहारं-असणं, पाणं, खाइमं, साइमं, अन्नत्थणाभोगेणं, सहसागारेणं, पच्छन्नकालेणं, दिसामोहेणं, साहुवयणेणं, महत्तरागारेणं, सव्वसमाहिवत्तियागारेणं वोसिरामि ।

४. एकासन

एगासणं पच्चक्खामि, तिविहं[1] पि आहारं-असणं, खाइमं, साइम, अन्नत्थणाभोगेण, सहसागारेणं, सागारियागारेणं, आउंटण पसारेण, गुरु अब्भुट्ठाणेण पारिट्ठावणियागारेणं[2] महत्तरागारेण, सव्व समाहिवत्तियागारेणं वोसिरामि ।

---

1 यदि चौविहार करना हो तो 'तिविहं' के [illegible] पाणं भी बोले ।

2 'पारिट्ठावणियागारेणं' [illegible] ।

५. एकस्थान (एगलठाणा)

एगलट्ठाणं पच्चक्खामि तिविह पि चउव्विहं पि आहार-असण, पाण, खाइमं, साइमं, अन्नत्थणाभोगेणं, सहसागारेण, सागारियागारेणं गुरु अब्भुट्ठाणेणं, परिट्ठावणियागारेणं, महत्तरागारेण, सव्वसमाहिवत्तियागारेणं वोसिरामि ।

६. आयम्बिल

आयम्बिल पच्चक्खामि, अन्नत्थणाभोगेणं, सहसागारेण, लेवालेवेणं, उक्खित्तविवेगेणं, गिहिससट्ठेण, परिट्ठावणियागारेणं, महत्तरागारेण, सव्वसमाहिवत्तियागारेणं वोसिरामि ।

७. उपवास-बेला आदि

उग्गए सूरे, अभत्तट्ठं[1] पच्चक्खामि, चउव्विह[2] पि आहारं, असण, पाणं, खाइमं, साइमं, अन्नत्थणाभोगेण, सहसागारेण, परिट्ठावणियागारेणं, महत्तरागारेण, सव्वसमाहिवत्तियागारेणं वोसिरामि ।

८. नीवी

निविगइय पच्चक्खामि अन्नत्थणाभोगेणं सहसागारेण, लेवालेवेण, गिहत्थसंसिट्ठेणं, उक्खित्तविवेगेणं, परिट्ठावणियागारेण, महत्तरागारेण, सव्वसमाहिवत्तियागारेण वोसिरामि ।

९. दया-संवर

द्रव्य से हिसादि पाच आश्रव के, क्षेत्र से लोक प्रमाण, काल

---

1 वेले के लिए 'छट्ठ भत्त', तेले के लिए 'अट्ठ भत्त' इसी प्रकार आगे की तपस्या के लिए 2-2 भत्तं बढाते जावे । जितने दिन की तपस्या करनी हो उस सख्या को दुगुना करके दो जोड देवे ।

2 तिविहार तपस्या के लिए 'चउव्विह' के स्थान पर 'तिविह' बोल तथा 'पाण' न बोले ।

से सूर्योदय तक [illegible] न करेमि [illegible] वोसिरामि।

१०.अभिग्रह

अभिग्गहं पच्चक्खाइ चउव्विहं पि आहारं-असणं, पाणं, खाइमं, साइमं, अन्नत्थणाभोगेणं, सहसागारेणं, महत्तरागारेणं सव्वसमाहिवत्तियागारेणं वोसिरामि।

विवेकेन बिना यच्च, तत्तपस्तनु तापकृत्।
अज्ञान कष्टमेवेदं, न भूरिफलदायकम्॥

भावार्थ- विवेक के बिना किया गया तप केवल शारीरिक संताप है - अज्ञान तप है। उससे विशेष फल नहीं मिलता।

❑ ❑ ❑

दानं प्रियवाक्सहित, ज्ञानमगर्व क्षमान्वित शौर्यम्।
वित्त त्यागनियुक्तं, दुर्लभमेतच्चतुष्टयं लोके॥

भावार्थ- लोक मे ये चार बातें मिलना दुर्लभ है - 1. प्रिय वचनों के साथ दान 2 गर्व रहित ज्ञान 3. क्षमायुक्त शूरवीरता और 4. त्याग सहित दान।

(विष्णुश्रम)

1 जितने करण एव योग से [illegible]

प्राकृत खण्ड

उपयोगी गाथाएँ

चत्तारि मंगलं पाठ

चत्तारि मंगलं, अरिहंता मंगलं, सिद्धा मंगलं, साहू मंगलं, केवलि पण्णत्तो धम्मो मंगलं ।

चत्तारि लोगुत्तमा, अरिहंता लोगुत्तमा, सिद्धा लोगुत्तमा, साहू लोगुत्तमा, केवली पण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमा ।

चत्तारि सरणं पव्वज्जामि, अरिहंते सरण पव्वज्जामि, सिद्धे सरणं पव्वज्जामि, साहू सरणं पव्वज्जामि, केवली पण्णत्तं धम्मं सरण पव्वज्जामि ।

चार शरणा दु:ख हरणा, और न शरणा कोय ।
जो भवि प्राणी आदरे, तो अक्षय अमर पद होय ॥

धर्म–

धम्मो मंगल मुक्किकट्टं, अहिंसा संजमो तवो ।
देवावि तं नमंसंति, जस्स धम्मे सया मणो ॥

भावार्थ- अहिंसा, सयम और तप रूप धर्म सर्वश्रेष्ठ मंगल है । जिसके चित्त मे सदा धर्म रहता है उसे देवता भी नमस्कार करते हैं ।

(दशवैकालिक 1/1)

जरा जाव न पीडेइ, वाही जाव न वड्ढइ ।
जाविंदिया न हायंति, ताव धम्मं समायरे ॥

भावार्थ- जब तक बुढापा नही सतावे, जब तक रोग, व्याधिया नही बढे, तब तक धर्म का आचरण कर लेना चाहिए ।

(दशवेकालिक 8/36)

एवं धम्म पि काऊणं, जो गच्छइ परं भवं ।
बच्छंतो सो सुही होइ, अप्प कम्मे अवेयणे ॥

भावार्थ- पाथेय साथ लेकर जाने वाले पथिक की तरह जो मनुष्य धर्म की आराधना कर परलोक मे जाता है, वह वहा अल्प कर्म वाला होकर परम सुखी होता है । (उत्तराध्ययन 19/21)

धम्मो ताणं, धम्मो सरणं, धम्मो गइ पइट्ठा य ।
धम्मेण सुचरिएण य गम्मइ अजरामरं ठाणं ॥2॥

भावार्थ- धर्म तिराने वाला है, धर्म शरण रूप है, धर्म ही गति है तथा धर्म ही आधार है । धर्म की सम्यग् आराधना करने से आत्मा को अजर-अमर पद मोक्ष की प्राप्ति होती है ।

(तंदुलवेयालिया गाथा 33)

सम्यग्दर्शन

अरिहंतो महदेवो जावज्जीवाय सुसाहुणो गुरुणो ।
जिणपण्णत्तं तत्तं इअ सम्मत्तं मए गहियं ॥

भावार्थ-जीवन पर्यन्त अरिहत भगवान मेरे देव हैं, सुसाधु (निर्ग्रन्थ मुनिराज) मेरे गुरु है तथा जिन (वीतराग) प्ररूपित तत्त्व ही धर्म है ऐसा सम्यक्त्व मैंने ग्रहण किया है । (आवश्यक सूत्र)

तमेव सच्चं णीसंकं जं जिणेहिं पवेइयं ।

भावार्थ- वीतराग-जिन परमात्मा ने जो कहा है वही सत्य एव शका रहित है । (आचाराग 5)

संमत्त दंसी न करेइ पावं ।

भावार्थ- सम्यग् दृष्टि पाप नही करता । योग प्रवृत्ति होने पर भी वः पाप से मुक्त रहता है । (आचाराग 3)

दंसण संपन्नपाए, भव मिच्छत्त छेयणं करेइ ।

भावार्थ- सम्यग् दर्शन से मिथ्यात्व का नाश होता है, संसार परिभ्रमण घटता है । (उत्तराध्ययन 29)

नादंसणिस्स नाणं नाणेण विणा न होंति चरण गुणा ।
अगुणिस्स नत्थि मोक्खो नत्थि अमुक्करस निव्वाणं ॥

भावार्थ- सम्यग्दर्शन के बिना ज्ञान सम्यग् नही होता और सम्यग्ज्ञान के बिना चारित्र गुण प्रकट नही होता । चारित्र गुण के अभाव मे मुक्ति नही होती और सिद्ध पद की प्राप्ति नही होती ।

(उत्तराध्ययन 28/30)

नाणेण जाणइ भावे, दंसणेण य सद्दहे ।
चारित्तेण निगिण्हाइं, तवेण परिसुज्झइ ॥

भावार्थ- सम्यग्ज्ञान से आत्मा जीवादि पदार्थो को जानता है, सम्यग्दर्शन से उन पर श्रद्धा करता है, चारित्र द्वारा आत्मा नवीन कर्मो को आने से रोकता है तथा तप द्वारा पुराने कर्मो को नष्ट करता है । (उत्तराध्ययन 28/35)

नाणं च दंसणं चेव, चरित्तं च तवो तहा ।
एयं मग्गमणुप्पत्ता, जीवा गच्छंति सुग्गइं ॥

भावार्थ- सम्यग्ज्ञान-दर्शन-चारित्र एव तप ये चारो मोक्ष के मार्ग है जिससे जीव को सुगति की प्राप्ति होती है ।

(उत्तराध्ययन 28/3)

ज्ञान

सवणे नाणे य विन्नाणे पच्चक्खाणे य संजमे ।
अणासवे तवे चेव, बोदाणे अकिरिय सिद्धि ॥

भावार्थ- सुनने से ज्ञान होता है, ज्ञान से विज्ञान (विशिष्ट ज्ञान) होता है । विज्ञान होने से आत्मा प्रत्याख्यान करता है,

जिससे संयम की आराधना होती है । सयम से नवीन कर्मो का आना रुकता है, तप की आराधना होती है, जिससे पुराने कर्म क्षय होते है । कर्मो के क्षय होने से जीव क्रिया रहित होता है तथा सिद्धि को प्राप्त करता है । (भगवती सूत्र श 2, उ 5)

पढमं नाणं तओ दया, एवं चिट्ठइ सव्व संजए ।
अन्नाणी किं काही, किं वा नाही सेय पावगं ॥

भावार्थ- दया अर्थात् चारित्र - क्रिया से पूर्व ज्ञान होना चाहिए । ज्ञान होगा तो ही सयमी अपने आचार का पालन कर सकेगा । अज्ञानी क्या कर सकता है ? वह अपने हित-अहित को कैसे समझ सकता है ? (दशवैकालिक 4/10)

सोच्चा जाणइ कल्लाणं, सोच्चा जाणइ पावगं ।
उभयं पि जाणइ सोच्चा, जं सेयं तं समायरे ॥

भावार्थ- सुनकर आत्मा कल्याण एवं पाप दोनो मार्ग को जान सकता है । अतः जो उचित हो उसका अनुसरण करना चाहिए । (दशवैकालिक 4/11)

सव्वे जीवा वि इच्छंति, जीविउं न मरिज्जिउं ।
तम्हापाणवहं घोरं, निग्गंथा वज्जयंति णं ॥

भावार्थ- सभी जीव जीना चाहते है, मरना कोई नही चाहता । अतः निर्ग्रन्थ मुनिराज हिसा का सर्वथा त्याग करते है ।
(दशवेकालिक 6/10)

ब्रह्मचर्य

तवेसु वा उत्तम बंभचेरं ।

भावार्थ- ब्रह्मचर्य सभी प्रकार के तपो मे श्रेष्ठ हे ।

(सूयगडांग सूत्र 6/23

देव-दाणव गंधव्वा, जक्ख रक्खस किन्नरा ।
बंभयारी नमंसंति, दुक्करं जे करंति तं ॥

भावार्थ- दुष्कर ब्रह्मचर्य का पालन करने वाले ब्रह्मचारी पुरुष को देव, दानव, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, किन्नर आदि सभी नमस्कार करते है । (उत्तराध्ययन सूत्र 16/16)

एस धम्मे धुवे निच्चे, सासए जिण देसिए ।
सिद्धा सिज्झन्ति चाणेणं, सिज्झिस्सन्ति तहावरे ॥

भावार्थ- यह ब्रह्मचर्य धर्म ध्रुव है, नित्य है, शाश्वत है तथा जिनोपदिष्ट है । इसका आचरण कर भूतकाल मे कई जीव सिद्ध हुए हैं, वर्तमान मे हो रहे है तथा भविष्य में भी होंगे ।

(उत्तराध्ययन सूत्र 16/17)

मुच्छा परिग्गहो वुत्तो ।

भावार्थ- मुर्च्छा (ममत्व भाव अर्थात् आसक्ति) ही परिग्रह है । (दशवैकालिक 6/20)

विवेक

कहं चरे कहं चिट्ठे, कहं मासे कहं सए ।
कहं भुंजंतो भासंतो, पाव कम्मं न बंधइ ॥

भावार्थ- प्रश्न - कैसे चले ? कैसे खडा हो ? कैसे बैठे ? और कैसे सोये ? किस प्रकार भोजन करे ? और कैसे बोले कि पाप कर्म का बध न हो ? (दशवैकालिक 4/7)

जयं चरे, जयं चिट्ठे, जयं मासे, जयं सए ।
जयं भुंजंतो भासंतो, पावं कम्मं न बंधइ ॥

भावार्थ- यतना से (विवेकपूर्वक) चले, यतना से खडा हो, यतना से वैठे, यतना से सोए, यतना से भोजन करे, यतना से

भाषण करे अर्थात् सभी कार्य यतना से करे तो पाप का बन्ध नही होता । (दशवैकालिक 4/8)

दान

दाणाण सेट्ठं अभयप्पयाणं ।

(सूयगडाग 6/23)

भावार्थ- सभी दानो मे अभयदान श्रेष्ठ है ।

तप

तवेणं भंते जीवे किं जगेइ ? तवेणं वोदाणं जणेइ ।

भावार्थ- शिष्य भगवान से प्रश्न करता है कि हे भगवन् ! तप करने से आत्मा को क्या लाभ है ? भगवान उत्तर देते है कि तप करने से पूर्वबद्ध कर्मों का नाश होता है । (उत्तराध्ययन 29/27)

एवं तु संजयस्सावि पाव कम्म निरासवे ।
भव कोड़ी संचियं कम्मं, तवसा निज्जरिज्जई ॥

भावार्थ- इस प्रकार नवीन पाप कर्म रोक देने पर संयमियो के करोडो भवो के संचित कर्म तप द्वारा नष्ट हो जाते है ।

(उत्तराध्ययन 5/6)

तवो जोई जीवो जोइ ठाणं ।

भावार्थ- तप ज्योति है और जीव उस ज्योति का स्थान है ।

(उत्तराध्ययन 12/44)

आत्म-विजय

अप्पा चेव दमेयव्वो, अप्पा हु खलु दुद्दमो ।
अप्पा दंतो सुही होइं, अस्सिं लोए परत्थ य ॥

भावार्थ- आत्मा को दमन (वश मे) करना अत्यन्त दुष्कर है। अत: आत्मा को वश मे करना चाहिए। जिन्होने आत्मा को वश मे किया है वे इस लोक और परलोक मे सुखी होते है।

(उत्तराध्ययन 1/15)

पुरिसा! उत्ताणमेव अभिणिगिज्झ एवं दुक्खा पमोक्खसि।

भावार्थ- हे पुरुषो ! दु:खो से छुटकारा पाने के लिए आत्मा को विषयों मे जाने से रोको। (आचाराग 3/3/119)

जे आया से विण्णाया। जे विण्णाया से आया।

भावार्थ- जो आत्मा है वह विज्ञाता है, जो विज्ञाता है, ज्ञान वाला है वह आत्मा है। (आचाराग 5/5/116)

नाणं च दसंणं चेव, चरित्तं च तवो तहा।
वीरियं उवओगो य, एयं जीवस्स लक्खणं॥

भावार्थ- ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप, वीर्य और उपयोग ये जीव के लक्षण है। (उत्तराध्ययन 28/11)

समयं गोयम ! मा पमायए।

भावार्थ- हे गौतम ! एक समय मात्र भी प्रमाद मत करो।

(उत्तराध्ययन 10)

अप्पा नइ वेयरणी, अप्पा में कूडसामली।
अप्पा काम दुहाधेणू, अप्पा में णंदणं वणं॥
अप्पा कत्ता विकत्ता य, सुहाण य दुहाण य।
अप्पा मित्तंममित्तं च, दुपट्ठिय सुप्पट्ठिओ॥

भावार्थ- आत्मा ही नरक की वैतरणी नदी तथा कूट शाल्मली वृक्ष है। आत्मा ही स्वर्ग की कामधेनु (गाय) और नन्दनवन है। सुख एव दु:ख का कर्ता आत्मा है, यही शत्रु और मित्र है।

(उत्तराध्ययन 20/36-37)

जह किंपागफलाणं, परिणामो न सुंदरो ।
एवं भुत्ताण भोगाणं, परिणामो न सुंदरो ॥

भावार्थ- जिस प्रकार किपाक फलो के उपयोग का परिणाम सुन्दर नही होता, उसी प्रकार भुक्त भोगो का परिणाम भी सुन्दर नही होता है ।

(उत्तराध्ययन 19/17)

खणमित्त सुक्खा, बहुकाल दुक्खा, पगाम दुक्खा, अनिगाम सुक्खा ।
संसार मुक्खस्स विपक्ख भूया, खाणी अणत्थाण उ काम भोग ॥

भावार्थ- काम-भोग मोक्ष सुख का शत्रु है, अनर्थो की खान है । ये काम-भोग क्षणिक सुख देने वाले है और बहुत काल तक दुःख देने वाले है । (उत्तराध्ययन 14/13)

नाणस्स सव्वस्स पगासणाए, अन्नाण मोहस्स य विवज्जणाए । रागस्स दोसस्स य संखएणं, एगंत सोक्खं समुवेइ मोक्खं ॥

भावार्थ- सत्य ज्ञान का प्रकाश करने से, अज्ञान एव मोह का त्याग करने से, राग और द्वेष का क्षय करने से, आत्मा को शाश्वत-एकान्त सुखमय मोक्ष की प्राप्ति होती है ।

(उत्तराध्ययन 32/2)

कषाय

रागो य दोसो वि य कम्म बीयं, कम्मं च मोहप्प भवं वयंति ।
कम्मं च जाइमरणस्स मूलं, दुक्खं च जाइमरणं दयंति ॥

भावार्थ- राग और द्वेष कर्म के मूल कारण है और कर्म मोह से उत्पन्न होता है । जन्म-मरण ही दुःख है तथा जन्म-मरण का मूल कारण कर्म है ।

(उत्तराध्ययन 20/7)

कोहो य माणो य अणिरगहीया, माया य लोभो य पवड्ढमाणा । चत्तारि एए कसिणा कसाया, सिंचंति मूलाइं पुणब्भवस्स॥

भावार्थ- अनियंत्रित क्रोध एवं मान तथा बढते हुए माया व लोभ - ये चारों कषाय पुनर्जन्म रूपी वृक्ष को सिंचते हैं - संसार की अभिवृद्धि करते हैं । (दशवैकालिक 8/40)

कसाया अग्गिणो वुत्ता, सुय सील तवो जलं ।
सयुधाराभिहया सन्ता, भिन्ना हु न डहन्ति में ॥

भावार्थ- कषाय अग्नि है तथा श्रुत, शील एवं तप उसे शान्त करने वाला जल है । इस जल की धारा से शान्त किये जाने पर कषाय मुझे नही जला सकते, ऐसा तीर्थकर भगवान ने कहा है । (उत्तराध्ययन 23/53)

कोहं च माणं च तहेव मायं, लोभं चउत्थं अज्झत्थ दोसा । ए आणि वंता अरहा महेसी, ण कुव्वइ पाव ण कारवेइ ॥

भावार्थ- क्रोध, मान, माया और लोभ ये चारो आत्मा को दूषित करते है । इनका पूर्ण रूप से त्यागी अर्हन्त महिषि न स्वयं पाप करते है न दूसरो से करवाते है । (सूयगड़ाग 6/26)

कोहो पीइं पणासेइ, माणो विणय नासणो ।
माया मित्ताणि नासेइ, लोभो सव्व विणासणो ॥

भावार्थ- क्रोध प्रीति का नाश करता है, मान विनय का नाश करता है, माया मित्रता का नाश करती है और लोभ समस्त गुणो का नाश करता है । (दशवैकालिक 8/38)

उवसमेण हणे कोहं, माणं मद्दवया जिणे ।
मायं अज्जव भावेणं, लोभं संतो सओ जिणे ॥

भावार्थ- क्रोध को उपशम द्वारा नष्ट करो, मृदुता से मान को जीतो, सरलता से माया पर विजय प्राप्त करो और लोभ को सतोष से जीतो । (दशवैकालिक 8/39)

जहा लाहा तहा लोहा, लाहा लोहो पवड्ढइ ।

भावार्थ- ज्यो-ज्यों लाभ होता है त्यों-त्यों लोभ बढता जाता है । लाभ से लोभ की अभिवृद्धि होती है । (उत्तराध्ययन 8/17)

सामायिक

दिवसे-दिवसे लक्खं देइ सुवण्णस्स खंडियं एगो ।
एगो (इयरो) पुण सामाइयं करेइ ण पहुप्पए तस्स ॥

भावार्थ- कोई दानी व्यक्ति प्रतिदिन लाख-लाख खण्डी सोने का दान करे और दूसरा कोई व्यक्ति सामायिक करता है तो भी दान सामायिक से बढकर नहीं होता । (सवोध प्रकरण 113)

सामाइयम्मि उ कए, समणो इव सावओ हवइ जम्हा ।
एएण कारणेणं, बहुसो सामाइयं कुज्जा ॥

भावार्थ- सामायिक करने पर श्रावक साधु के समान हो जाता है, अतः श्रावको को अधिक से अधिक सामायिक करनी चाहिए । (विशेषावश्यक भाष्य गाथा-2690)

विविध

चत्तारि परमंगणि दुल्लहाणीय जंतुणो ।
माणुस्सत्तं सुई सद्धा, संजमम्मि य वीरियं ॥

भावार्थ- मनुष्यत्व, शास्त्र श्रवण, धर्म पर श्रद्धा और संयम मे पराक्रम - ये चार साधन जीव को प्राप्त होना अत्यन्त कठिन है ।

(उत्त [illegible])

तवसा धुणइ पुराण पावगं ।

भावार्थ- तप पुराने पापो को नष्ट करता है ।

जे एगं जाणइ से सव्वं जाणइ,
जे सव्वं जाणइ से एगं जाणइ ।

भावार्थ- जिसने एक अर्थात् अपनी आत्मा को जान लिया, उसने संपूर्ण संसार को जान लिया और जो सबको जानता है वह एक (आत्मा) को भी जानता है । (आचाराग 3/123)

सज्झाये मि रओ सया ।

भावार्थ- सदैव स्वाध्याय मे रत रहो । (दशवैकालिक 8/42)

नाणेण विना न हुन्ति चरण गुणा ।

भावार्थ- सम्यग्ज्ञान के बिना सम्यग् चारित्र नहीं होता ।
(उत्तराध्ययन 28/30)

धम्मस्स विणओ मूलं ।

भावार्थ- विनय धर्म का मूल है । (दशवैकालिक 9/2)

जे आसवा ते परिस्सवा, जे परिस्सवा ते आसवा ।

भावार्थ- भावो की उच्चता से आश्रव के स्थान भी संवर-निर्जरा के स्थान हो जाते हैं, तथा जो संवर निर्जरा के स्थान है वे भावो की नीचता से आश्रव के स्थान हो जाते है ।

(आचाराग4/131)

जे गुणे से आवट्टे, जे आवट्टे से गुणे ।

भावार्थ- जो गुण अर्थात् शब्दादि विषय वासना है वही आवर्त अर्थात् संसार है और जो संसार है वही शब्दादि विषय हैं ।
(आचाराग 1/5/41)

अंग्रेजी खण्ड

1 Religion what treasures untold,
Reside in that heavenly world
More precious than silver and gold,
Or all this earth can afford

भावार्थ- धर्म में अकथनीय खजाना भरा हुआ है । सोना, चांदी और पृथ्वी की समस्त मूल्यवान वस्तुओ से भी धर्म अतिशय मूल्यवान है ।

2 Self trust is the first secret of success

भावार्थ- आत्म-विश्वास सफलता का मुख्य रहस्य है ।

3 Most powerful is he who has himself in his power

भावार्थ- वह सबसे शक्तिशाली व्यक्ति है जो स्वयं को अनुशासन में रखता है ।

4 An hour to suffer a life time to enjoy

भावार्थ- थोडा कष्ट सहने पर जीवन भर आनन्द मिलता है ।

5 In idleness alone there is perpetual despair.

भावार्थ- अकेले प्रमाद मे भयंकर निराशा है, पाप है ।

6 An empty mind is devil's workshop

भावार्थ- खाली दिमाग शैतान का घर है ।

7 Anger blows out the lamp of mind

भावार्थ- क्रोध मस्तिष्क के दीप को बुझा देता है ।

8 We rise in glory as we sink in pride.

भावार्थ- अभिमान ज्यो-ज्यो घटता है कीर्ति वढती है ।

9. Avarice increases with the increasing pile of gold

भावार्थ- धन की वृद्धि के साथ-साथ लालच बढता है ।

10. Fancy may kill or care.

भावार्थ- भावना मार भी सकती है और बचा भी सकती है।

11. Every thing that glitters is not gold

भावार्थ- प्रत्येक वस्तु जो चमकती है वह स्वर्ण नही है ।

12 By unily we stand by dividing we fall

भावार्थ- संघठन में हमारा अस्तित्व है और विभाजन मे पतन है ।

13. Unity is strength

भावार्थ- संगठन में शक्ति है ।

14. Forgiveness is better then revenge, forgiveness is the sign of gentle nature

भावार्थ- क्षमा सभ्य प्रकृति का लक्षण है, बदला लेने की अपेक्षा क्षमा श्रेष्ठ है ।

15 Trust no future, however pleasant, let the dead past bury its dead, Act in the living present, heart with in and God over head

भावार्थ- भविष्य के भरोसे मत रहो चाहे वह कितना ही सुन्दर क्यो न हो । भूतकाल की भी चिन्ता छोडो । जोभी करना है उसे अपने पर एव ईश्वर पर विश्वास रखकर वर्तमान मे ही करो।

16 Only the actions of the just smell sweet and blossom in the dust

भावार्थ- सच्चे मानव के कर्म ही मधुर सुगंध देते है और धूल में भी खिलते है ।

25. Action speaks louder than words.

भावार्थ- वचनो की अपेक्षा क्रिया अधिक प्रभावशाली होती है ।

26 Truth is immortal.

भावार्थ- सत्य अमर है ।

27. There is no religion higher than truth

भावार्थ- सत्य से उच्च कोई धर्म नही ।

28 Think before you speak, and look before you leap

भावार्थ- बोलने के पहले सोचो अर्थात् सोचकर बोलो और देखकर चलो ।

29 Silence is more eloquent than words

भावार्थ- मौन में शब्दो की अपेक्षा अधिक शक्ति है ।

30 The pleasure of giving is more than the pleasure of receiving

भावार्थ- पाने की अपेक्षा देने मे अधिक आनन्द है ।

31 As you food, so is your mood

भावार्थ- जैसा खावे अन्न वैसा होवे मन ।

32 A word to the wise

भावार्थ- बुद्धिमान को सकेत पर्याप्त है ।

33 As you think so shall you act As you sow so shall you reap

भावार्थ- जैसा सोचोगे वैसा कार्य करोगे और जैसा बोओगे वैसा काटोगे ।

34 Humility is the solid foundation of all the virtues

भावार्थ- विनय सभी सद्‌गुणो की नींव है ।

35 Mercy is twice blessed, it blessed him that gives and him that takes

भावार्थ- दया का दोहरा लाभ है । यह दाता एवं पात्र दोनो को लाभदायक है ।

36 Life has no blessing like a prudent friend.

भावार्थ- ज्ञानी मित्र के समान जीवन मे कोई वरदान नही।

37 Charity begins at home, but should not end there

भावार्थ- दान घर से प्रारभ होता है किन्तु उसे वही समाप्त मत करो ।

38 Mercy is an attribute to God himself

भावार्थ- दया परमात्मा का निजि गुण है ।

39 Live not to eat, but eat to live

भावार्थ- खाने के लिए मत जीओ, जीने के लिए खाओ ।

40. Misfortunes never come alone

भावार्थ- विपदाएँ अकेली नही आती ।

41 Voilence is the weapon of the week.

भावार्थ- हिसा कमजोर का शस्त्र है ।

42 Where there is will there is way

भावार्थ- जहां चाह वहा राह ।

43 Time and fiall wait for none.

भावार्थ- समय और ज्वार किसी की प्रती

---

44. Oh, God ! thee g. pray increas knowledge day by day.

भावार्थ- हे प्रभु मेरी प्रार्थना है कि मेरे ज्ञान का विव

45. No pains no gains

भावार्थ- कष्ट नहीं तो लाभ नही ।

46. Man like it is to fall into sim, Frien it is to dwell there in, Christ like it is for s grieve, God like it is all to leave

भावार्थ- मानव का स्वभाव पाप में गिरना है, उर रहना शैतान का स्वभाव है, उस पर दुखित होना संत-स्व और सब पापों से मुक्त होना ईश्वरत्व है ।

47 An angry man shuts his eyes and c his mouth

भावार्थ- क्रोधी व्यक्ति की आंखे बंद हो जाती है औ खुल जाता है ।

48 Love your enemies

भावार्थ- अपने शत्रुओ से प्यार करो ।

प्रिय वाक्य प्रदानेन सर्वे तुष्यन्ति जन्तवः ।
तस्मात्देव वक्तव्यं, वचने का दरिद्रता ?

भावार्थ- प्रिय वचनं बोलने से सभी प्राणी प्रसन्न हो जाते है, अतः प्रिय वचन बोलना चाहिये । बोलने मे कजूसी क्यों की जाय ?

सत्यं ब्रूयात प्रियं ब्रयान्न, ब्रूयात सत्यप्रियम् ।

सत्य बोलो, प्रिय बोलो परन्तु अप्रिय सत्य मत बोलो ।